साहित्य में अदिवासी और पर्यावरण विमर्श

'ज्ञान, विज्ञान आणि सुसंस्कार यांसाठी शिक्षणप्रसार'
-शिक्षणमहर्षी डॉ. बापूजी साळुंखे

विवेकानंद कॉलेज
कोल्हापूर
NAAC Reaccredited 'A'
with CGPA -3.24 (in 3rd cycle)

ISSN : 2281-8848

VIVEK
RESEARCH JOURNAL

A Biannual Peer Reviewed National Journal of Multi-Disciplinary Research Articles

A Special Issue on

साहित्य में अदिवासी और पर्यावरण विमर्श

March, 2023

VIVEK RESEARCH JOURNAL

A Biannual Peer Reviewed National Journal of Multi-Disciplinary Research Articles

Editor in Chief & Published
Dr. R. R. Kumbhar
Principal-Vivekanand College, Kolhapur (Autonomous)
E-mail : editorvivekresearchjournal@gmail.com

Executive Editor
Dr. Kailas Patil
Vivekanand College, Kolhapur (Autonomous)
E-mail: kailaspatil@vivekanandcollege.ac.in

Editorial Board

Dr. S. S. Latthe
Asst. Professor,
Department of Physics,
Vivekanand College, Kolhapur (Autotnomous)

Dr. S. M. Joshi
Asst. Professor
Dept. of English
Vivekanand College, Kolhapur (Autonomous)

Dr. A. S. Kumbhar
Professor,
Department of Chemistry,
Vivekanand College, Kolhapur (Autotnomous)

Dr. T. C. Gaupale
Asst. Professor
Dept. of Zoology
Vivekanand College, Kolhapur (Autonomous)

Dr. V. B. Waghmare
Asst. Professor & Head
Dept. of Computer Science
Vivekanand College, Kolhapur (Autonomous)

Dr. S. R. Kattimani
Asst. Professor
Dept. of History
Vivekanand College, Kolhapur (Autonomous)

Dr. A. S. Mahat
Asst. Professor & Head
Dept. of Hindi
Vivekanand College, Kolhapur (Autonomous)

Dr. R. Y. Patil
Asst. Professor
Dept. of Computer Science
Vivekanand College, Kolhapur (Autonomous)

Dr. Pradip Patil
Asst. Professor
Dept. of Marathi
Vivekanand College, Kolhapur (Autonomous)

Dr. S. G. Bhosale
Asst. Professor,
Department of Geography,
Vivekanand College, Kolhapur (Autotnomous)

Dr. Neeta Patil
Librarian
Vivekanand College, Kolhapur (Autonomous)

Advisory Board

Prin. Abhaykumar Salunkhe
Executive Chairman
Shri Swami Vivekanand Shikshan Sanstha,
Kolhapur.

Prin. Mrs. Shubhangi Gavade
Secretary,
Shri Swami Vivekanand Shikshan Sanstha,
Kolhapur.

Prin. Dr. Ashok Karande
Former Jt. Secretary (Administration)
Shri Swami Vivekanand Shikshan Sanstha,
Kolhapur.

Dr. Rajan Gavas
Former Head, Dept. of Marathi,
Shivaji University, Kolhapur.

Dr. D. A. Desai
Former Head,
Dept. of Marathi,
Vivekanand College, Kolhapur (Autonomous)

Dr. M. S. Jadhav
Former Head,
Dept. of Hindi
Vivekanand College, Kolhapur (Autonomous)

Dr. Namita Khot
Director, Barr. Balasaheb Khardekar
Knowledge Resource Centre, Kolhapur

VIVEK RESEARCH E-JOURNAL, Vol. VII, SPECIAL ISSUE NO. 1, MARCH, 2023 ISSN : 2581-8848

VIVEK RESEARCH JOURNAL

VIVEK RESEARCH JOURNAL is a Multi-Disciplinary research journal, published biannually in English, Hindi & Marathi languages. All research papers submitted to the journal will be double bind peer reviewed, referred by the members of the review committee and editorial board. The articles recommended by the peer review committee shall only be published.

Disciplines Covered :

- Arts, Humanities and Social Sciences.
- Commerce/Management/Accountancy/Finance/Business/Administration.
- Physical Education & Education.
- Computer Application/Information Technology
- Physics, Chemistry, Botany, Zoology, Microbiology, Agriculture, Biotechnology
- Library Science
- Law

Guidelines for Contributors

- Articles submitted for the journal should be original research contributions and should not be under consideration for any other publication at the same time. A declaration is to be made by the author in the covering letter for that, along with full contact details with e-mail and mobile number.
- The desired length of the research paper should be of maximum 4000 words in English/Marathi/Hindi with an abstract of not more than 75 to 100 words. At least 5 key words and bibliography must be provided for indexing and information retrieval services.
- All the manuscripts should be typed in a single space with 12 point font for English & 14 point for Marathi & Hindi, on crown size paper with 1 inch margin on all sides.
- A hard copy of the Marathi/Hindi Articles in **ISMDVB_TT Dhruv Font or Shree Lipi Devratna Font** & a hard copy of the English articles in Times New Roman font in Word format (MS Word) should be sent to the editor. Please send the font in which you have typed the article in the soft copy. The contributors can e-mail their articles to **editorvivekresearch@gmail.com.**

विशेष अंक

मार्च, 2023

साहित्य में अदिवासी और पर्यावरण विमर्श

अतिथि संपादक

डॉ. आरिफ महात

संपादक मंडल सदस्य

डॉ. दीपक तुपे

डॉ. प्रदीप पाटील

डॉ. स्वप्निल बुचडे

संपादकीय

साहित्य का दायरा असीम है। वह जीवन और जीवनेतर से संबंधित सबकुछ को अपने में समाहित कर लेता है। हर दौर में साहित्य की भूमिका बदलते रहती है। वर्तमान समय में साहित्य में अस्मिता मुलक विमर्श के अंतर्गत मनुष्य की अस्मिता से जुड़े सवालों को तरजीह दी जा रही है। साथ ही मुख्यधारा से परे हाशिए पर सिमटते जा रहे भाषा, धर्म, लिंग, वर्ण, जाति, समुदाय आदि विषयों को मुख्यधारा में वापस लाने की कवायद चल रही है। इसी की एक कड़ी आदिवासी एवं पर्यावरण विमर्श है।

वैश्वीकरण ने पूरे समुचित विश्व को बदल दिया है। दुनिया ने विश्वग्राम की जो संकल्पना देखी वह साकार हो गई। भूमंडलीकरण के चलते बदलाव की धारा पूरे विश्व भर में प्रवाहित हुई, जिसने विकास के नाम पर विश्वभर में पैर फैलाए। सन् 1991 के बाद विकास की यह धारा भारत तक पहुँची। विकास के नाम पर उदारीकरण एवं मुक्त व्यापार की चपेट में भारत के मूल निवासी या कहें आदिवासी आ गए। आदिवासीयों ने आदिम काल से जंगल को अपना घर समज उसे सहज कर रखा था। औद्योगिक विकास के नाम पर अहिस्ता-अहिस्ता आदिवासियों का दोहन की कहानी शुरू हो गई। औद्योगिक विकास से संबंधित सारे संसाधन इन्हीं आदिवासियों के जल, जमीन, जंगल में मौजूद थे जिसके चलते आदिवासियों की जमीन को अधिग्रहित कर उन्हें हासिल करने का सिलसिला शुरू हो गया। आदिवासियों की जल, जमीन, जंगल को अधिग्रहित करना वास्तविकता में उनके मूल अधिकारों के हनन तक पहुँचा जिसके चलते संघर्ष की चिंगारी ने जन्म लिया। अपनी ही मस्ती में जीने वाले इन आदिम जनजातियों के जीवन में नव नवीन समस्याओं ने दस्तक दी। इस संघर्ष ने ही उनकी अस्मिता को चकनाचूर करने के साथ उनकी आदिवासियत को खतरे में डाला।

भारत में पर्यावरण संरक्षण दो स्तरों पर ज्यादातर क्रियाशील दिखाई देता है। एक सरकारी प्रयास एवं सामाजिक संस्थानों के द्वारा किया जाने वाला कार्य और दूसरा आदिवासियों के संघर्ष में, जिनके लिए प्रकृति सब कुछ है आदिवासी समुदाय को उनके जल, जंगल और जमीन से परे सोचा ही नहीं जा सकता। यह समुदाय सदियों से प्रकृति का रक्षक रहा है पर्यावरण संरक्षण, जलवायु की नियमितता, संधारणीय विकास आदि पर्यावरण से जुड़े सभी चीजों में आदिवासी का मुख्य योगदान रहा है। यह समुदाय प्रकृति की और उसमें पलने वाले को अपने परिवार का सदस्य मानता है। विकास के इस दौर में इन दोनों के अस्तित्व पर खतरा मंडरा रहा। विकास के रास्ते पर अग्रसित रहते हुए इनकी अस्मिता को कैसे बचाया जाए इसी पर विचार मंथन प्रस्तुत विशेषांक में किया गया है। प्रस्तुत अंक में व्यक्त विचार शोधकर्ता के अपने हैं संपादक इससे सहमत हो ये जरूरी नहीं।

-

अतिथि संपादक
डॉ. आरिफ महात

अनुक्रम

Sr. No.	Title of Article	Author Name	Page No.
1	हिंदी आदिवासी साहित्य का स्वरूप, चुनौतियां और संभावनाएं	डॉ. अशोक मोहन मरळे	1-3
2	आदिवासी कविता में व्यक्त प्रकृति चिंतन	डॉ. आरिफ शौकत महात	4-7
3	संजीव की कहानी 'अपराध': अपराध के सांचों में कैद बेगुनाही की दास्तां	डॉ. दिपक जाधव 'अक्षर'	8-13
4	संजीव के कथा साहित्य में आदिवासी चेतना	डॉ. माधव राजप्पा मुंडकर	14-16
5	आदिवासी अधिकार हनन की दूब: पाँव तले की दूब	डॉ. दीपक रामा तुपे	17-19
6	आदिवासियों की दमित दासताँ : 'आदिवासी नहीं नाचेंगे'	डॉ.प्रवीणकुमार न. चौगुले	20-24
7	हिंदी में अनुदित कविताओं में अभिव्यक्त आदिवासी जीवन	डॉ. विनायक बापू कुरणे	25-28
8	आदिवासी नारी के जीवन को तबाह करती अंधविश्वास की 'डायन'	डॉ. सरिता बाबासाहेब बिडकर	29-31
9	डॉ. अनूप वशिष्ठ के गजलों में पर्यावरण विमर्श	डॉ. अलका निकम-वागदरे	32-35
10	हिंदी साहित्य में पर्यावरण विमर्श	1. प्रा. डॉ. नाजिम इसाक शेख 2. अश्विनी जगदीप थोरात	36-39
11	''मरंग गोडा नीलकंठ हुआ'' उपन्यास में विस्थापन तथा प्रदुषण विमर्श	प्रोफेसर डॉ. साताप्पा शामराव सावंत	40-42
12	"हिंदी के स्वातंत्र्योत्तर पहाडी आंचलिक उपन्यासों में चित्रित उत्सव पर्व त्यौहार"	प्रा. डॉ. मनीषा बाळासाहेब जाधव	43-48
13	समकालीन कविता में पर्यावरण प्रदूषण	डॉ. आर. पी. भोसले	49-51
14	हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श	प्रा. डॉ. एम. ए. येल्लुरे	52-53
15	जनजाति समाज और पर्यावरण के संबंध का भौगोलिक अध्ययन	डॉ. संदीप रुपरावजी मसराम	54-57
16	"सुमित्रानंदन पंत का काव्य पर्यावरण चेतना के परिप्रेक्ष्य में"	डॉ. कृष्णात आनंदराव पाटील	58-59
17	हिंदी साहित्य में पर्यावरण विमर्श	डॉ. संतोष बबनराव माने	60-62
18	आदिवासी संवेदनाओं की दास्तां: 'जंगल जहा शुरू होता है'	डॉ. संतोष तुकाराम बंडगर	63-66
19	अल्मा कबूतरी (उपन्यास) : कबूतरा आदिवासी जाति की यथार्थ दासता	श्री. नीलेश वसंतराव जाधव	67-68
20	आदिवासी समाज की समस्याएं 'काला पादरी' उपन्यास के संदर्भ में	डॉ. रीना निलेश खिचडे	69-72

21	हिंदी साहित्य में आदिवासी-विमर्श	प्रा. अपर्णा संभाजी कांबळे	73-75
22	गोस्वामी तुलसीदास एवं संत एकनाथ के साहित्य के परिप्रेक्ष्य में पर्यावरण चेतना	डॉ. सागर रघुनाथ कांबळे	76-77
23	डेराडंगर आत्मकथा में चित्रित आदिवासी समस्याएँ	कु. प्राजक्ता अंकुश रेणुसे	78-80
24	हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श	वैशाली राजेंद्र मोहिते	81-83
25	आदिवासी जीवन के परिप्रेक्ष्य में 'ग्लोबल गांव के देवता'	प्रा.सारिका राजाराम कांबळे	84-85
26	स्वयंप्रभा : प्रकृति और मानव का अनंत संबंध	प्रा. रोहिता केतन राऊत	86-89
27	अनबीता व्यतीत उपन्यास में पर्यावरण चित्रण	श्रीमती प्राजक्ता राजेंद्र प्रधान	90-92
28	व्यवस्था केन्द्रित शोषण के खिलाफ विद्रोह की धधकती आग: 'एनकाउंटर'	प्रा. किशोरी सुरेश टोणपे	93-95
29	'तीर : 1993 : अंतर्राष्ट्रीय आदिवासी वर्ष में' कहानी में आदिवासियों में शैक्षिक चेतना	श्री. सुरेश आनंदा मोरे	96-98
30	हिंदी साहित्य में पर्यावरण विमर्श	श्री.श्रीकांत जयसिंग देसाई	99-101
31	आदिवासी विमर्श : चिंतन, सृजन एवं सरोकार	माधुरी राजाराम चव्हाण (शिंदे)	102-105
32	"हिंदी उपन्यास साहित्य में आदिवासी विमर्श"	श्री. सुभाष विष्णु बामणेकर	106-108
33	हिंदी साहित्य में पर्यावरण विमर्श	कामिनी जनार्दन मोहिते	109-110
34	'पांव तले की दूब' उपन्यास में चित्रित आदिवासी समस्याएँ	प्रा. हणमंत परगोंडा कांबले	111-113
35	'स्वांग शकुंतला' के नाट्यगीतों का विश्लेषण और पर्यावरण	चन्द्र पाल	114-118
36	समकालीन कथा साहित्य में आदिवासी विमर्श	कु. भाग्यश्री दादासाहेब चिखलीकर	119-120
37	सोशल मीडिया और पर्यावरणीय चिंता	अनिल विठ्ठल मकर	121-124
38	ग्लोबल गांव के देवता' उपन्यास में आदिवासी समुदाय की समस्याएँ	प्रा. अजय महेंद्र कांबळे	125-127
39	मधु कांकरिया के कथा साहित्य में चित्रित आदिवासी समाज	आयेशाबेगम अब्दुलबारी रायनी	128-130
40	पर्यावरण विमर्श: चिंतन, सृजन एवं सरोकार	श्री. आनंदराव आप्पासाहेब बेडगे	131-133
41	हिंदी साहित्य में पर्यावरण विमर्श	सौ. अमिता प्रशांत कारंडे	134-136
42	हिंदी उपन्यास साहित्य में आदिवासी विमर्श	सौ. अश्विनी अशोक देशिंगे	137-139

हिंदी आदिवासी साहित्य का स्वरूप, चुनौतियां और संभावनाएं

डॉ. अशोक मोहन मरळे
सहायक प्राध्यापक एवं शोध निर्देशक,
स्नातक और स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,
मालती वसंतदादा पाटील कन्या महाविद्यालय,
इस्लामपुर, तहसील वाळवा, जिला सांगली
मोबाईल क्र. 9623527601
ई मेल- drashokmarale@gmail.com

शोध सार :

नवम् दशक के आसपास के कालखंड में आर्थिक उदारीकरण की नीतियां तेज हुई जिसके परिणामस्वरूप आदिवासी शोषण और अधिक तीव्र हुआ। आदिवासी शोषण का प्रखर विरोध करने के लिए तथा आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा हेतु आदिवासी साहित्य लिखा जाने लगा। शोषण का विरोध और अपनी अस्मिता की पहचान इस आदिवासी साहित्य के मूल में है। दशकों के संघर्ष और प्रतिरोध के पश्चात् आज आदिवासी साहित्य को स्वायत्त विषय के रूप में केन्द्रीय परिधि में लाया जा रहा है। किंतु आदिवासी समाज की तरह आदिवासी साहित्य का संघर्ष आज भी जारी है। आज भी आदिवासी साहित्य अनेक समस्याओं एवं चुनौतियों से जूझ रहा है। इसका प्रमुख कारण आदिवासी समाज, जीवन से बाहरी समाज का अपरिचय और उपेक्षापूर्ण रवैया है। आदिवासी समाज से संवाद करने का आदिवासी साहित्य महत्त्वपूर्ण ज़रिया हो सकता है, बशर्ते उसका सही मूल्यांकन किया जाए।

विकास के नाम पर आदिवासियों को उनकी जमीन से बेदखल किया जा रहा ही है साथ ही प्रकृति को भी नष्ट किया जा रहा है। विस्थापन उनके जीवन की मुख्य समस्या बन गई है। आदिवासी समाज प्रकृति पूजक है। इसीलिए अपने अस्तित्व और अपनी अस्मिता के साथ प्रकृति को बचाने के लिए आदिवासी साहित्य की आवश्यकता इस समाज द्वारा अधिक महसूस की जाने लगी है। जिस तरह दलित साहित्य के संदर्भ में दलित और गैर दलित साहित्यकार के रूप में चर्चा होती रही है, उसी तरह आदिवासी साहित्य और साहित्यकार के संदर्भ में भी चर्चा होती रही है। इसमें अनेक प्रकार के मतप्रवाह दिखाई देते हैं। आदिवासी विमर्श उन ग़ैर-आदिवासी लेखकों को ख़ारिज नहीं कर सकता जिन्होंने आदिवासी समाज और जनजातियों के वास्तविक जीवन यथार्थ को साहित्य का विषय बनाया। फिर भी दोनों प्रकार के लेखकों में कुछ बुनियादी अंतर है।

बीज शब्द : आदिवासी, जनजाति, समाज, संस्कृति, आदिवासी साहित्य, दर्शन, जीवन शैली, प्रकृति।

मूल आलेख

नवम् दशक के आसपास के कालखंड में आर्थिक उदारीकरण की नीतियां तेज हुई जिसके परिणामस्वरूप आदिवासी शोषण और अधिक तीव्र हुआ। आदिवासी शोषण का प्रखर विरोध करने के लिए तथा आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा हेतु आदिवासी साहित्य लिखा जाने लगा। शोषण का विरोध और अपनी अस्मिता की पहचान इस आदिवासी साहित्य के मूल में है। वस्तुतः आदिवासी साहित्य का मूल आदिवासी लोकसाहित्य में है और आदिवासी साहित्य सृजन की परंपरा मौखिक रही है। जंगलों में भगा दिए जाने के बाद भी आदिवासी समाज ने इस परंपरा को जारी रखा है। ठेठ जनभाषा में होने और मुख्य प्रवाह से दूरी की वजह से यह साहित्य आदिवासी समाज की तरह ही उपेक्षित रहा। लेकिन अब आदिवासी चेतना से युक्त आदिवासी साहित्य हिंदी साहित्य पटल पर अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुका है।

आज आदिवासी साहित्य हिंदी के अलावा अनेक आदिवासी भाषाओं में प्रचुर मात्रा में लिखा जा रहा है। दशकों के संघर्ष और प्रतिरोध के पश्चात् आज आदिवासी साहित्य को स्वायत्त विषय के रूप में केन्द्रीय परिधि में लाया जा रहा है। किंतु आदिवासी समाज की तरह आदिवासी साहित्य का संघर्ष आज भी जारी है। आज भी आदिवासी साहित्य अनेक समस्याओं एवं चुनौतियों से जूझ रहा है। इसका प्रमुख कारण आदिवासी समाज, जीवन से बाहरी समाज का अपरिचय और उपेक्षापूर्ण रवैया है। आदिवासी समाज से संवाद करने का आदिवासी साहित्य महत्त्वपूर्ण ज़रिया हो सकता है, बशर्ते उसका सही मूल्यांकन किया जाए।

आदिवासी साहित्य मतलब आदिवासियों द्वारा लिखा गया साहित्य जिसमें आदिवासी संस्कृति, दर्शन, जीवन-शैली, प्रकृति और उनकी समस्याओं का चित्रण करनेवाले साहित्य को हम आदिवासी साहित्य कह सकते हैं। आदिवासी साहित्य स्वांतः सुखाय नहीं लिखा जाता। यह प्रतिबद्ध साहित्य है और बदलाव के लिए कटिबद्ध है। ''वर्तमान स्थिति में 'आदिवासी' शब्द का प्रयोग विशिष्ट पर्यावरण में रहनेवाले, विशिष्ट भाषा बोलनेवाले, विशिष्ट जीवन पद्धति तथा परंपराओं से सजे और सदियों से जंगल,

पहाडों में जीवनयापन करते हुए अपने धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों को संभालकर रखनेवाले मानव समूह का परिचय करा देने के लिए किया जाता है और बहुत बडे पैमाने पर उनके सामाजिक दुख तथा नष्ट हुए संसार पर दुख प्रकट किया जाता है। उनके प्रश्नों तथा समस्याओं पर जी तोडकर बोला जाता है''[1]

वैश्वीकरण के चलते मुक्त बाजार के नाम पर मुनाफा और लूट का खेल शुरू हुआ। इस मुक्त बाजारवाद ने आदिवासियों के जल, जंगल और जमीन पर कब्जा करना शुरू किया। इतना ही नहीं यह नीति अब आदिवासियों के जीवन और उनके भविष्य के साथ भी खेल खेल रही है। विकास के नाम पर आदिवासियों को उनकी जमीन से बेदखल किया जा रहा ही है साथ ही प्रकृति को भी नष्ट किया जा रहा है। विस्थापन उनके जीवन की मुख्य समस्या बन गई है। आदिवासी समाज प्रकृति पूजक है। इसीलिए अपने अस्तित्व और अपनी अस्मिता के साथ प्रकृति को बचाने के लिए आदिवासी साहित्य की आवश्यकता इस समाज द्वारा अधिक महसूस की जाने लगी है। आदिवासी समाज की संस्कृति, जीवन शैली प्रकृति के साथ तालमेल पर आधारित हैं। रमणिका गुप्ता के शब्दों में "हम प्रकृति पर कब्जा नहीं करना चाहते न उस पर अपना वर्चस्व जताना चाहते हैं। हम साथ-साथ जीने में विश्वास करते हैं, विनाश में नहीं।"[2] आदिवासी समाज को मुख्यधारा का समाज हमेशा से हेय दृष्टि से देखता रहा हैं। शायद यही कारण है कि उन्हें दबाना, कुचलना उन्हें आसान लगता है।

आदिवासी तथा गैर आदिवासी साहित्यकारों ने आदिवासी अस्मिता के संकट को लेकर चिंता व्यक्त की है। मधु कांकरिया लिखती है कि "आदिवासियों को जंगल, नदी और पहाड़ों से घिरे उनके प्राकृतिक और पारंपरिक परिवेश से बेदखल किया जा रहा है। अभी तक वह अपने विश्वासों, रीति-रिवाजों, लोकनृत्यों और लोकगीतों के साथ कुओं, मवेशियों, नदियों, तालाबों और जड़ी-बूटियों से संपन्न एक जनसमाज में रहता आया है। इसकी अपनी एक विशिष्ट संस्कृति रही है। उसका अपना विकसित अर्थतंत्र था। वह अपने पुश्तैनी, पारंपरिक और कृषि आधारित कुटीर धंधों से परंपरागत था। बढ़ईगिरी, लोहारगिरी, मधुपालन, दोना पत्तल, मधु उत्पादन, रस्सी, चटाई, बुनाई जैसे काम उसे विरासत में मिले थे परंतु आज खुले बाज़ार की अर्थव्यवस्था ने सदियों से चले आए उनके पुश्तैनी और पारंपरिक धंधों को चौपट कर दिया है।"[3] वर्तमान साहित्यकारों ने आदिवासियों को केंद्र में रखकर कई कहानियाँ, नाटक, उपन्यास, व्यंग्य आदि विधाओं में रचनाएँ की है जिसमें आदिवासियों के निवास स्थान, इनके रीति-रिवाज, रहन-सहन, आचार-विचार, संस्कृति आदि को प्रस्तुत किया गया है। आदिवासी साहित्य दुनिया का सबसे पुराना व जीवंत साहित्य है।

आदिवासी साहित्य लिखने और समझने के लिए आदिवासियों की समृद्ध सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था, जीवन परंपरा और रीति रिवाजों को समझना आवश्यक है। ''आदिवासी साहित्य जीवन का साहित्य है। वह प्रकृति का सहयोगी, सहअस्तित्व का अभ्यस्त, ऊँच-नीच, भेदभाव व छल कपट से दूर है। वह जमाखोरी या संपत्ति जुटाने की भावना से मुक्त है। वह अन्याय का विरोधी और सामाजिक न्याय का पक्षधर है। उसके साहित्य में इन्हीं सबकी अभिव्यक्ति है। जीवन की समस्याए और प्रकृति से लगाव उसके साहित्य का आधार है।''[4]

कुछ आदिवासी साहित्यकारों व लेखकों ने आदिवासी साहित्य को इस प्रकार परिभाषित किया है- प्रसिद्ध आदिवासी साहित्यकार डॉ. विनायक तुमराम कहते हैं - "आदिवासी साहित्य वन संस्कृति से संबंधित साहित्य है। आदिवासी साहित्य वन जंगलों में रहने वाले उन वंचितों का साहित्य है, जिनके प्रश्नों का अतीत में कभी उत्तर ही नहीं दिया गया। यह ऐसे दुर्लक्षितों का साहित्य है, जिनके आक्रोश पर मुख्यधारा की समाज-व्यवस्था ने कान ही नहीं धरे। यह गिरि-कन्दराओं में रहने वाले अन्याय ग्रस्तों का क्रांति साहित्य है। सदियों से जारी क्रूर और कठोर न्याय-व्यवस्था ने जिनकी सैंकड़ों पीढ़ियों को आजीवन वनवास दिया, उस आदिम समूह का मुक्ति-साहित्य है आदिवासी साहित्य। वनवासियों का क्षत जीवन, जिस संस्कृति की गोद में छुपा रहा, उसी संस्कृति के प्राचीन इतिहास की खोज है यह साहित्य। आदिवासी साहित्य इस भूमि से प्रसूत आदिम-वेदना तथा अनुभव का शब्दरूप है।"[5]

जिस तरह दलित साहित्य के संदर्भ में दलित और गैर दलित साहित्यकार के रूप में चर्चा होती रही है, उसी तरह आदिवासी साहित्य और साहित्यकार के संदर्भ में भी चर्चा होती रही है। इसमें अनेक प्रकार के मतप्रवाह दिखाई देते हैं। इस संदर्भ में प्रसिद्ध आदिवासी कवयित्री रमणिका गुप्ता जी के विचार उल्लेखनीय हैं - "मैं आदिवासी साहित्य उसी को मानती हूँ जो आदिवासियों ने लिखा और भोगा है। उसे आदिवासी समस्याओं, सांस्कृतिक, राजनीतिक व आर्थिक स्थितियों तथा उनकी जीवन-शैली पर आधारित होना होगा। अर्थात् आदिवासियों द्वारा आदिवासियों के लिए आदिवासियों पर लिखा गया साहित्य आदिवासी साहित्य कहलाता है।"[6] वैसे जो आदिवासी समर्थक साहित्य के रचनाकार होते हैं, वे भी आदिवासियों की समस्याओं के निराकरण हेतु प्रयत्न करते दिखाई देते हैं।

आदिवासी विमर्श उन ग़ैर-आदिवासी लेखकों को ख़ारिज नहीं कर सकता जिन्होंने आदिवासी समाज और जनजातियों के वास्तविक जीवन यथार्थ को साहित्य का विषय बनाया। फिर भी दोनों प्रकार के लेखकों में कुछ बुनियादी अंतर है। वरिष्ठ आदिवासी चिंतक रोज केरकेट्टा आदिवासी एवं ग़ैर-आदिवासी लेखकों के साहित्य में अंतर स्पष्ट करती हुई कहती है - "ग़ैर-आदिवासी द्वारा रचित आदिवासी विषयक साहित्य में शिल्प है परन्तु आदिवासी आत्मा नहीं है। उसमें सर्जक अपनी दृष्टि से अच्छाई-बुराई का कलात्मक विवरण रखता है, लेकिन आदिवासियों का सच उससे अलग है।"[7]

लिखित मुख्यधारा के साहित्य-समाज में आदिवासियों की अभिव्यक्ति को अल्प स्तर पर रखा गया है, तो यहाँ स्वानुभूति बनाम सहानुभूति की बहस से इतर अनुभव की आधिकारिकता का प्रश्न उठता है। इस संदर्भ में हरिराम मीणा जी कहती है कि - "कोई लेखक जन्मना आदिवासी है कि नहीं यह महत्वपूर्ण है, लेकिन यदि कोई ग़ैर-आदिवासी लेखक अपने आदिवासी जीवन के आधिकारिक अनुभव के आधार पर साहित्य रच रहा है तो ऐसी साहित्यिक अभिव्यक्ति आदिवासी साहित्य की श्रेणी में आयेगी इसलिए हमारा यह आग्रह नहीं है कि जो जन्मना आदिवासी नहीं है वो आदिवासी साहित्य नहीं रच सकता। सवाल आधिकारिक अनुभव का है, आधिकारिक अनुभव का मतलब है उसके भौतिक जीवन, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पहलू की अभिव्यक्ति क्या है? उसकी मानसिकता, भौगोलिक अंचल, परिवेश किस तरह के हैं? उसका ज़मीन, आसमान, हवा, पानी जंगल, पहाड़, नदियों संपूर्ण प्रकृति के साथ संबंध क्या है? तब उस रचनाकार को आदिवासी जीवन का आधिकारिक अनुभव होगा।"[8] आज के लिखित आदिवासी साहित्य में मूल स्वर असहमति का है। औपनिवेशिक काल से अब तक लिखित व मौखिक आदिवासी साहित्य में असहमति का स्वर ही निरंतर तीखा हुआ है। आदिवासी बाहरी समाज के जटिल दावपेंचों को बख़ूबी नहीं समझ पाए। इसलिए आदिवासी साहित्य के नाम पर बाहरी लोग कुछ भी लिख रहे हैं।

निष्कर्ष :

आदिवासी समुदाय में नवीन साहित्य की अवधारणा की निर्मिति के पीछे मुख्य वजह है आदिवासियों के विश्वास के साथ धोखाधड़ी । वे सदैव शोषण, अन्याय का शिकार होते रहे हैं। अपने ही जल, जंगल, ज़मीन से प्रतिबंधित किया जाना, सभ्य समाज द्वारा शोषण, विकास के नाम पर विस्थापन, उनकी सभ्यता संस्कृति को मिटा देने का प्रयास आदि को आदिवासी बुद्धिजीवी वर्ग धीरे-धीरे समझने लगा है। इन सबका विरोध कर असहमति व्यक्त करने एवं जन-जन तक अपनी बात पहुँचाने के लिए आदिवासी भाषाओं में लिखित साहित्य को अपना माध्यम व आधार बना रहे हैं। आदिवासी साहित्य लेखन से आदिवासी लोगों में चेतना जागृत हुई और ग़ैर-आदिवासी रचनाकारों के साथ-साथ आदिवासी साहित्यकार भी विविधतापूर्ण लेखन कार्य कर पारंपरिक आलोचकों और बुद्धीजीवियों का ध्यान आकर्षित कर रहे हैं। शिक्षा के कारण उनमें चेतना विकसित हुई है।
आदिवासी साहित्य का महत्त्व इस कारण भी बढ जाता है कि आदिवासी साहित्य आदिवासियों को अपनी पहचान बनाने का सबसे बडा माध्यम है। उन्हें सम्मान से जीने की प्रेरणा आदिवासी साहित्य के माध्यम से प्राप्त होती है। अपने हक और अपने अधिकारों के लिए लडने की उर्जा यह आदिवासी इसी साहित्य से ग्रहण कर रहा है। संगठन के बिना कुछ हासिल नहीं होनेवाला यह सीख उसने आदिवासी साहित्य से ली है। आदिवासी साहित्य आदिवासी समुदाय की अस्मिता, संस्कृति तथा संघर्ष के लिए चेतना जागृत करता है। आदिवासी साहित्य के सम्मुख अनेक सारी चुनौतियां हैं लेकिन विश्वास है कि इन सारी चुनौतियों का सामना कर और समाजव्यवस्था के साथ किए संघर्ष से यह आदिवासी साहित्य और अधिक निखर उठेगा।

संदर्भ :

1 सं. चौधरी उमा शंकर: आदिवासी कौनः हासिये की वैचारिकी, विनायक तुकाराम 2008, अनामिका प्रकाशन
2 गंगा सहाय मीणा (सं.) : *आदिवासी साहित्य विमर्श*, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रिब्यूटर प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2014, पृ. 37
3 उषा कीर्ति रावत, सतीश पांडे, शीतला प्रसाद दुबे (सं.) : *आदिवासी केंद्रित हिंदी साहित्य,* हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012, पृ. 17
4 विशाला शर्मा; दत्ता कोल्हारे : *आदिवासी साहित्य एवं संस्कृति*, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृ. 21
5 सं. चौधरी उमा शंकर: आदिवासी कौनः हासिये की वैचारिकी, विनायक तुकाराम 2008, अनामिका प्रकाशन,
6 सं. रमणिका गुप्ता, आदिवासी साहित्य यात्रा, संस्करण 2016, पृ.सं. 24
7 सं. वंदना टेटे, एलिस एक्का की कहानियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2015, पृ.सं. 22
8 सं. रमणिका गुप्ता, हरिराम मीणा जी का साक्षात्कार, युद्धरत आम आदमी, अंक 13, नव. 2014, पृ.सं. 64

आदिवासी कविता में व्यक्त प्रकृति चिंतन

डॉ. आरिफ शौकत महात
हिंदी विभाग प्रमुख,
विवेकानंद कॉलेज, कोल्हापुर (स्वायत्त)
मो. 9860857089
ई. मेल- drmahatas@gmail.com

शोध सार:

वास्तव में आदिवासी समुदाय का समूचा जीवन ही जल, जंगल, जमीन से जुड़ा हुआ है। वह अपने जीवन को जल, जंगल, जमीन से परे सोच ही नहीं सकते। इसीलिए विकास के नाम पर जब विस्थापन की बात आती है। जंगल के विनाश की बात आती है। तो यह हर तरह से उसके विरोध में खड़ा हो जाता है। जल, जंगल, जमीन इनके सिर्फ सहचर ही नहीं बल्कि इनकी अस्मिता, सहजीवन एवं सहअस्तित्व की पहचान बन चुके हैं। इसीलिए आदिवासी रचनाकार वंदना टेटे आदिवासी को 'धरती के केअर टेकर' कहती हैं।

बीज शब्द: प्रकृति, आदिवासी, पर्यावरण, जल, जंगल, जमीन।

मनुष्य की असीम आकांक्षाओं ने सृष्टि का संतुलन डावाडोल कर दिया है। वर्तमान समय में मनुष्य विकास की जिस पथ पर अग्रेसित हुआ है उसकी सबसे ज्यादा कीमत प्रकृति चूका रही है। सृष्टि में हर चीज के बर्दाश्त की एक हद होती है। वैसे ही प्रकृति की भी अपनी एक हद है। मनुष्य के विकास के शुरुआती दौर में प्रकृति ने मनुष्य के द्वारा किया गया दोहन बर्दाश्त कर लिया लेकिन मनुष्य की अमर्याद इच्छाओं के आगे प्रकृति ने भी हाथ खड़े कर दिए। हर क्रिया के बाद प्रतिक्रिया होती है। वर्तमान समय में मनुष्य के द्वारा प्रकृति के दोहन के हर क्रिया का जवाब प्रकृति प्रतिक्रिया के रूप में दे रही है। वर्तमान समय में व्याप्त प्राकृतिक आपदा इसका सबसे बड़ा उदाहरण है।

भारत में पर्यावरण संरक्षण दो स्तरों पर ज्यादातर क्रियाशील दिखाई देता है। एक सरकारी प्रयास एवं सामाजिक संस्थानों के द्वारा किए जाने वाले कार्य के रूप में और दूसरा आदिवासियों के संघर्ष में, जिनके लिए प्रकृति ही सब कुछ है। आदिवासी समुदाय को उनके जल, जंगल और जमीन से परे सोचा ही नहीं जा सकता। यह समुदाय सदियों से प्रकृति का रक्षक रहा है पर्यावरण संरक्षण, जलवायु की नियमितता, संधारणीय विकास आदि पर्यावरण से जुड़े सभी चीजों में आदिवासी का मुख्य योगदान रहा है। यह समुदाय प्रकृति की और उस में पलने वाले को अपने परिवार का सदस्य मानता है। विकास के इस दौर में इन दोनों के अस्तित्व पर खतरा मंडरा रहा। आदिवासी साहित्य में प्रकृति के दोहन का चित्रण चिंतन के धरातल पर पहुँचता है।

आदिवासी प्रकृति के संवर्धन के लिए कुछ भी कर सकता है। इसकी एक झलक हमें महादेव टोप्पो की कविता 'जंगल का कवि' में देखने मिलती है। कवि के अनुसार जब जब जंगल पर खतरा मंडराएगा जंगल की मूलनिवासी आदिवासी इसके लिए खड़े होंगे-

"इस जंगल का कवि
रहेगा भला कैसे चुप ?
वह धनुष उठाएगा
प्रत्यंचा पर कलम चढ़ाएगा
साथ में बांसुरी और मांदर भी
जरूर उठाएगा
जंगल के हरेपन को
बचाने की खातिर
जंगल का कवि
मांदर बजाएगा
बांसुरी बजाएगा
चढ़ा कर प्रत्यंचा पर कलम।" [1]

वास्तव में जंगल की हानि के कोई भी कारण क्यों न रहे जंगलवासी उसकी सुरक्षा हेतु हर संभव कदम उठाएँगें। फिर चाहे उसके लिए उन्हें किसी भी हद तक क्यों न जाना पड़े। वास्तव में आदिवासी समुदाय का समूचा जीवन ही जल, जंगल, जमीन से जुड़ा

हुआ है। वह अपने जीवन को जल, जंगल, जमीन से परे सोच ही नहीं सकते। इसीलिए विकास के नाम पर जब विस्थापन की बात आती है। जंगल के विनाश की बात आती है। तो यह हर तरह से उसके विरोध में खड़ा हो जाता है। जल, जंगल, जमीन इनके सिर्फ सहचर ही नहीं बल्कि इनकी अस्मिता, सहजीवन एवं सहअस्तित्व की पहचान बन चुके हैं। इसीलिए आदिवासी रचनाकार वंदना टेटे आदिवासी को 'धरती के केअर टेकर' कहती हैं।

आदिवासी समुदाय के सारे क्रियाकलाप प्रकृति से जुड़े हुए हैं। अपने जीवन से जुड़े हर भावना को वह प्रकृति के माध्यम से व्यक्त करता है। आदिवासी कविता के प्रत्येक स्वर में हमें प्रकृति प्रेम दिखाई देता है। पेड़, पौधे, नदी, झरना, पर्वत, सूरज, चाँद आदि सब इनकी कविता में पूरी जीवंतता के साथ आते हैं। रामदयाल मुंडा की कविता इसका उत्कृष्ठ नमूना हैं। प्रेम के इजहार में प्रेमी मन की भावना का प्रकृति के द्वारा उद्घघाटन 'अगर तुम पेड़ होते' में देखने मिलता है-

"अगर तुम पेड़ होते और मैं पंछी
तुम्हारे पेड़ पर ही मैं डेरा डालता
अगर तुम झाड़ी होते और मैं तीतर
तुम्हारी झाड़ी में ही मैं वास करता।"[2]

तो वही कवि अपनी भूख की पीड़ा को व्यक्त करने में भी प्रकृति का ही सहारा लेता है।

"कई रात खाली पेट सोने के बाद
सुबह
भूखे जगने वालों से पूछिए
सूरज देवता नहीं
एक रोटी सा लगता है।"[3]

विकास के नाम पर सबसे ज्यादा लूट अगर किसी की हुई है तो वह आदिवासी और पर्यावरण की। इसलिए आदिवासी जब भी अपने अधिकार की मांग करता है या अपने अस्तित्व को टिकाए रखने के लिए संघर्ष करता है तो वह संघर्ष सिर्फ उसका न रहते हुए प्रकृति एवं पर्यावरण को बचाए रखने का संघर्ष बन जाता है। अपनी इसी भावनाओं को अनुज लुगुन 'ससान दिरी' कविता के माध्यम से व्यक्त करते हुए कहते हैं-

"ये सरकारी चेहरे की तरह पत्थर नहीं हैं
इनमें जंगल के लिए लड़ते हुए
एक पेड़ की कहानी है
जो धराशायी हो गया
नफ़रत की कुल्हाड़ी से
एक डाल की कहानी है
जो पंछियों को पनाह देते-देते टूट गयी
एक फूल की कहानी है
जो बसन्त के आने से पहले झुलस गया"[4]

वास्तविक रूप में ससन दिरी मुंडा आदिवासियों की सांस्कृतिक विरासत वाला पत्थर है। यह पत्थर आदिवासियों के पुरखों के सम्मान हेतु उनके कब्र पर गाडा जाता है। धरती को बचाए रखने की इनकी लालसा मरने के बाद भी खत्म नहीं होती। यह लालसा ससान दिरी के रूप में संघर्ष में बराबर लगी रहती है। इसीलिए जब कभी आदिवासीयों को संघर्ष करने की नौबत आती है वह संघर्ष के रास्ते पर अपना आखरी गीत अपने धरती के लिए गाने की मनशा रखता है।

ग्रेस कुजूर अपनी कविताओं के माध्यम से आदिवासियों की समस्या के साथ-साथ स्त्री समस्याओं को भी व्यक्त करती हैं। कविता में स्त्री की समस्याओं को व्यक्त करते हुए वह प्रकृति के सहारे ही अपनी बात रखती हैं।

"लेकिन तुम्हें
उसका बरगद होना अच्छा नहीं लगता
तुम -
कैद कर देते हो उसे गमले में किसी बोनसाई की
मानिंद"[5]

आदिवासी समुदाय में बलात्कार, दगाबाजी, बिन ब्याही माँ आदि स्त्री जीवन से संबंधित समस्या न के बराबर है। लेकिन विकास के इस दौर में जब से आदिवासियों का मुख्य धारा के लोगों से संबंध स्थापित हुआ है यह समस्या उनके यहाँ पनपती जा रही है। इसी समस्या में से बिन ब्याही माँ की त्रासदी का चित्रण रामदयाल मुंडा जी अपनी 'इन्कार' कविता में करते हैं-

"पहाड़ ने कहा-
मैं इतना ऊँचा
कैसे कर सकता हूँ
ऐसी खोटी करनी ?
सागर ने कहा-
मैंने इसे कभी देखा भी नहीं
कैसे हो सकती है यह !
मेरी पत्नी ?
और नदी कुमारी रो रही थी
गोद में लेकर पानी।"[6]

यहाँ एक बात विशेष ध्यान में रखने की है कि आदिवासी जब भी किसी समस्या को व्यक्त करते हैं फिर चाहे वो प्रेम की सुमधुर व्याख्या हो, या विस्थापन, भुखमरी, स्त्री शोषण, बेरोजगारी की समस्या हो तो वह हर समस्या की वास्तविकता का बखान करते समय प्रकृति को प्रतीक के रूप में सटीक तौर पर इस्तेमाल करते हैं। उनके जीवन की हर बात प्रकृति से शुरू होकर प्रकृति पर ही खत्म हो जाती है।

विकास के नाम पर प्रकृति का दोहन एवं अवैध खनन आदि कारणों से पर्यावरण में परिवर्तन आया है। पर्यावरण प्रदूषण आज वैश्विक समस्या बन गई है। मृदा, जल, वायु, ध्वनि आदि हर स्तर पर प्रदुषण बढ़ता जा रहा है। परिणाम स्वरूप प्रकृति एवं जीव-जंतुओं का जीवन खतरे में है। आदिवासी कविता में पर्यावरण के होते बदलाव का मार्मिक चित्रण देखने मिलता है। महादेव टोप्पो जी की कविता 'पेरवा घाघ के कबूतर' में प्राकृतिक जगहों पर विकास की अंधी दौड़ से पर्यावरण में होते बदलाव से वहाँ के जीवों पर पड़ते प्रभाव का मार्मिक चित्रण पेरवा घाघ स्थान के कबूतर के माध्यम से किया गया है। ओली मिंज के 'इदरी का जंगल' कविता में जंगल की कुटाई का चित्रण देखने मिलता है। इन सारी बातों से आहत आदिवासी कवि यह चेतावनी देने से नहीं रुकता की प्रकृति का दोहन ऐसे ही चलता रहा तो आने वाले दौर में हम नई पीढ़ियों को प्रकृति की यह सारी बातें तस्वीरों में ही दिखाने के लिए मजबूर हो जायेंगें। प्रकृति के होते इसी हनन पर चिंता व्यक्त करते हुए ओली मिंज कहते हैं-

"पेड़-पौधों को रौंदकर
जंगली जानवरों की खाल पर
पक्षियों के पंखों को टाँककर
निःसंदेह आदमी
संपूर्ण मानव समुदाय के लिए
एक खूबसूरत कफन बना रहा है।"[7]

सभ्य कहे जाने वाले समाज का प्रकृति पर अत्याचार हद से ज्यादा बढ़ता है तो हर आदिवासी तिलमिला उठता है और जब वह देखता है उनसे उनके घर-द्वार, खेत-खलिहान, भाषा-संस्कृति, अध्यात्म, जंगल, पहाड़, नदी-झरने, पेड़-पत्ते सब कुछ छीन लेने के बाद सारी प्राकृतिक संसाधनों को गंदे नाले में बदल कर उसे ततकथित लोग उसे बचाने का दिखावा करते हैं तो उनकी इस हरकत पर सबसे ज्यादा गुस्सा आदिवासी को ही आता है।

पर्यावरण के साथ विकास के नाम पर निरंतर इस तरह से अत्याचार होता रहा तो वह दिन दूर नहीं जहाँ प्रकृति अपने विध्वंस स्वरूप में सामने आकर हमसे हमारे करतूतों का बदला लेगी। हम बूंद बूंद पानी के लिए तरस जाएँगे और ऐसा नहीं कि यह हो नहीं रहा बस हम इन चीजों की तरफ नजरअंदाज कर रहे हैं इसीलिए समय के पहरेदारों को कवित्री आवाहन कहती हैं-

"एक बूँद पानी के लिए
तड़प-तड़प जायेंगी
हमारी पीढ़ियाँ
इसलिए
मैं सच कहती हूँ

हे समय के पहरेदारो !
तुमने अवश्य सुना होगा
एक वृक्ष की जगह
लगाओ दूसरा वृक्ष
क्या कभी सुना है
एक पर्वत के बदले
उगाओ दूसरा पर्वत ?"[8]

अतः वर्तमान समय को ध्यान में रखते हुए हमें हमारे पृथ्वी के संरक्षण हेतु और हमारे आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रकृति संरक्षण का हर प्रयास करना आवश्यक बन गया है। हमारा यह प्रयास सिर्फ कागजों तक सीमित न रहते हुए उसे जमीनी हकीकत तक लाने की प्रामाणिक कोशिश होनी चाहिए। तभी हम आने वाली पीढ़ी को उज्जवल भविष्य दे पाएँगे। "हे समय के पहरेदारों" कविता में ग्रेस कुजूर का कहना कितना प्रासंगिक है। वह कहती हैं-

"इसीलिए फिर कहती हूँ
न छेड़ो प्रकृति को
अन्यथा यही प्रकृति
एक दिन माँगेगी हमसे
तुमसे अपनी तरुणाई का
एक-एक क्षण और करेगी
भयंकर बगावत और तब
न तुम होगे
न हम होंगे!"[9]

वर्तमान पर्यावरण संकट के इस दौर में यह शब्द सटीक प्रहार करते हैं, लेकिन हम सुनने के लिए कहाँ तैयार हैं? हम सुन कहाँ रहे हैं। हम अनसुना कर रहे हैं। बातों को टाल रहे हैं। हाँ तब तक टालेंगे जब तक कवियित्री की कही बातें पूरी तरह से सच नहीं होगी।

निष्कर्षतः आदिवासी कविता में प्रकृति चित्रण पूरी जीवंतता के साथ उजागर हुआ है। जल, जंगल, जमीन से परे आदिवासियों का जीवन है ही नहीं इसलिए उनके प्रत्येक क्षण एवं कण में प्रकृति का वास नजर आता है। वर्तमान पर्यावरण संकट की इस घडी में जहाँ सारे विश्व पर खतरा मँडरा रहा है। पर्यावरण के बचाव के उपाय एवं उसकी कार्यान्विती कितनी कारगर है यह सब को मालूम है। विकास के इस दौर ने आदिवासियों के साथ प्रकृति को भी संघर्ष के रास्ते पर ला खड़ा किया है। वक्त के रहते हम नहीं समझे तो इसका सबसे बड़ा खामियाजा हमें ही भुगतना पड़ेगा यही बात आदिवासी कविता के माध्यम से उजागर होती है। इसमें कोई दो राय नहीं।

संदर्भ:

1. गुप्ता रमणिका (संपा.)महादेव टोप्पो, 'जंगल का कवि', आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण, 2004, पृष्ठ 47-48
2. गुप्ता रमणिका (संपा.) कलम को तीर होने दो, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण, 2015, पृष्ठ 49
3. वही, पृष्ठ 39
4. वही, पृष्ठ 59
5. वही, पृष्ठ 91
6. वही, पृष्ठ 35
7. वही, पृष्ठ 162
8. वही, पृष्ठ 106
9. वही, पृष्ठ 107

संजीव की कहानी 'अपराध': अपराध के सांचों में कैद बेगुनाही की दास्तां

डॉ. दिपक जाधव 'अक्षर'
हिंदी विभाग
वेणूताई चव्हाण कॉलेज, कराड
dipakjadhav.hindi@gmail.com

शोध सार

अपराध समाज से और समाज में जन्म लेता है और ठीक यही तथ्य अपराधी पर भी लागू होता है इसी के साथ यह भी जरूरी तथ्य है कि यह घटना सदा सर्वदा अपराध की श्रेणी में नहीं आती कई बार हम पाते हैं कि दो भिन्न वर्गों वर्णों द्वारा एक ही घटना को अंजाम देने पर भी एक अपराधी घोषित किया जाता है तो दूसरे को बचाने में सारी व्यवस्था जुड़ जाती है भले ही कानून के सामने सभी समान होने की बात स्वीकारी गई हो लेकिन वास्तविकता इससे भिन्न है इसे नकारा नहीं जा सकता। संजीव की कहानी अपराध एक संश्लिष्ट कहानी है जिसमें अपराधी घोषित किए सचिन के हाथों किसी प्रकार के अपराध या अपराधिक घटना का जिक्र नहीं है। उसकी पक्षधर था को ही अपराध के रूप में परिभाषित किया गया है। व्यवस्था जो अपराध एवं अपराधिक कृत्य उनके रोकथाम के लिए बनाई गई है- पुलिस प्रशासन सत्ता न्यायपालिका; खुलेआम अपराध की रोकथाम के नाम पर तथाकथित अपराधी के दमन में संलग्न दिखाई देती है व्यवस्था व्यवस्था की कमियों को छुपाने में लग जाती है संजीव की कहानी का पात्र सचिन अपनी पक्षधर था और साधन ही नेता के चलते व्यवस्था के हाथों फांसी पर झूल जाता है। सचिन की बहन मेडिकल की मेधावी छात्रा संघमित्रा जो नक्सलवाद और अपराधिक मानसिकता की विरोधी है, बड़ी संस्था से मारी जाती है। सत्ता हीनाेकि शोषण की व्यवस्था का पक्षधर न होना ही उनका अपराध बन जाता है।

बीज शब्द: अपराध, नक्सलवाद, बुर्जुआ, पूंजीवाद, पुलिस, प्रशासन, न्याय व्यवस्था,

भूख में तनी हुई मुट्ठी का नाम नक्सलबाड़ी है

धूमिल के 'पटकथा' कविता की उपर्युक्त पंक्ति नक्सलवाद की भूमिका को स्पष्ट करती है। धूमिल नक्सलवाद को जागरूकता के रूप में देखते हैं, ठीक उसी प्रकार संजीव भी नक्सलवाद को सामाजिक पक्षधरता के रूप में व्याख्यायित करते हैं।

संजीव वर्तमान चेतना मुल्क कहानी का प्रमुख चेहरा है। साहित्य की सामाजिक उपयोगिता उनके लेखन का आधार है। समाज को अपनी आंखों से देख उसे कागज पर उतारना संजीव की खूबी है। उनकी अपराध कहानी अपराध की वजह की शिनाख्त करने वाली कहानी है। कहानी पाठकों की आंखों पर बंधी व्यवस्था की पट्टी को हटाकर उसे असलियत से वाकिफ कराने का काम करती है। कहानी नक्सलवाद एवं नक्सलवादी की मूल चेतना को उजागर करने के साथ ही पुलिस, प्रशासन एवं न्यायिक व्यवस्था का पोस्टमार्टम भी करती है। संजीव अपराध कहानी के माध्यम से समाज के विचार परिष्कार का काम करते हैं।

संघमित्रा अर्थात रानी मेडिकल की होनहार छात्रा है। उसे अन्याय बगावत की जोर शोर से की जाने वाली बसें कैरियर के साथ खिलवाड़ लगती है। उसका मानना है कि अगर आप में प्रतिभा है, टैलेंट है तो आपको कहीं भी स्कोप मिल जाएगा। अपनी पढ़ाई से मतलब रखने वाली संघमित्रा लैब में मुर्दे की चिरफाड देख कर बेहोश हो गई थी। वह हमेशा सचिन और सिद्धार्थ को समझा बुझाने का काम करती है। वह कहती है कि जो अपना केरियर नहीं बना सकता वह सोसाइटी और देश को क्या बनाएगा? सिद्धार्थ अपने नक्सलाइट ना होने का कारण संघमित्रा को मानता है। संघमित्रा को अपने पढ़ाई के साथ ही, भाई सचिन और टीवी के मरीज पिता की भी चिंता है। संघमित्रा अपराध और शोषण की जड़ हमारी जींस में मानती है इसीलिए वह इंसानी जींस पर शोध करना चाहती है।

सचिन उत्तरी बंगाल के गरीब किसानों के शोषण के विरोधी गतिविधियों से जुड़ा हुआ है। हड्डियों पर चढ़े चाम, धंसी पनाली आंखें, मैले-चिथडे, शोषित किसानों पर अन्याय हो रहा है। उन्हें विरोध करने का न तो तरीका पता है, न सलीका। "अज्ञान के कारण ही उन्हें सरकार, उद्योग, प्रशासन, साहूकार ने मनमाने ढंग से लूटा। वह यह तक नहीं जान पाया कि इसका विरोध न्यायिक तरीके से भी किया जा सकता है। वह सामूहिक तौर पर विरोध के रूप में हाथ उठाता है और व्यवस्था उसे उत्पाती तत्व समझ गोलियां मारती है।"[1] के खिलाफ 'खत्म करो' अभियान चल निकला। सचिन इसका हिस्सा बन जाता है। वह अपनी पढ़ाई और परीक्षाओं की तक फिक्र नहीं करता। संघमित्रा के समझाने पर एवं घर की जिम्मेदारियों की बात कहने पर भी वह अपने रास्ते से नहीं हटता। इसी के चलते सचिन को बागी करार दिया जाता है। पुलिस उसके पीछे पड़ जाती है। सिद्धार्थ जो सचिन और संघमित्रा का वैचारिक-भावनिक मित्र है, घरवाले उसे वापस बुलाते हैं। अपने बेगुनाह भाई को बचाने के लिए संघमित्रा बाहर निकलती है लेकिन वापस लौट कर नहीं आती। धीरे-धीरे हालात बिगड़ने लगते हैं। व्यवस्था दोनों भाई बहनों को नक्सलवादी करार देती है और आए

दिन उनके बारे में अफवाहें उड़ाई जाती है, " टेररिस्ट सचिन पर तरह-तरह के मुकदमों के फंदे लटक गए थे और संघमित्रा का नाम पार्टी के प्रवर संगठनकर्ताओं में गिना जाने लगा था। उसके विषय में तरह-तरह के मिथ प्रचलित हो चले थे… कि खून करने में उसे कैसे खुशी होती है!... अब फलां-फलां पूंजीपति, राजनेता, अफसर और पार्टी के विश्वासघातक उसकी सूची में है!... फलां-फलां घूसखोर अफसर और ऊँची फीस लेने वाले डॉक्टर और वकील को तो धमकी का खत भी आ चुका है!..."[2]

सिद्धार्थ को उसके पापा साइंस छुड़वाकर आर्ट्स करवाते हैं और वह यूनियन लीडरी, समाज सेवा और प्राध्यापकी करता है। इसके बावजूद वह संघमित्रा को भूल नहीं पाता। वह संघमित्रा को ढढने के लिए टाटा के जादूगोड़ा के जंगल, आंध्र के जंगल और धान के खेत, मध्यप्रदेश के बीहड़ छान चुका है। पर संघमित्रा कहीं नहीं मिल पाती। उसके जज पिताजी उसे 'क्राइम' पर शोध करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। वह शोध के लिए अपराध और अपराधी की प्रवृत्ति - प्रकार, व्यक्तिगत और परिवेशगत संस्कार, मनोवैज्ञानिक तथा समाज शास्त्रीय विवेचन संबंधी जानकारी एवं आंकड़े जुटाने के लिए एक थाने से दूसरे थाने के मुआयने करने लगता है। इसी बीच एक थाने के बाहर सचिन के पिता राखल बाबू उसे ढते हुए आते हैं।

वे बताते हैं कि अभी-अभी सचिन को इसी थाने में लाया गया है। यह थाना सिद्धार्थ के एस.पी. भाई के अधिकार क्षेत्र में था। वह राखल बाबू के साथ थाने में सचिन से मिलता है। उसके चेहरे पर पीटे जाने के निशान है। सिद्धार्थ के परिचय देने पर दरोगा सहानुभूति जताते हुए सचिन से कहता है, " तुम लोग कल के भविष्य हो। मुझे युवा शक्ति का इस प्रकार अपव्यय होना बिल्कुल पसंद नहीं। यह बिलावजह का खून-खराबा और अपराधकर्म छोड़कर आदर्श नागरिक क्यों नहीं बनते?"[3]

यहाँ सवाल यह उठता है कि आदर्श नागरिक एवं नागरिकता क्या है? अपने ही समाज के शोषित- पीड़ित वर्ग के लिए लड़ना क्या आदर्श नागरिकता नहीं है? जिसे सचिन जी रहा है और इसी की सजा भुगत रहा है। सचिन पुलिस व्यवस्था को अच्छी तरह जानता है। सिद्धार्थ का भाई बड़ा अफसर है इसीलिए दरोगा आदर्श की बातें कर रहे हैं। वर्ना किसी आम आदमी को यह सीधे मुँह बात तक नहीं करते। मन की कटुता के चलते सचिन उद्दंडता से जवाब देता है। दरोगा नाराज हो जाते हैं और बात जो बिगड़ी है और बिगड़ जाती है।

सिद्धार्थ राखल बाबू से कहता है कि मैं पूरी कोशिश करूंगा, आप चिंता मत कीजिए। लेकिन अपने एस.पी. भाई के घर गया तो वहाँ का माहौल ही अलग था। मंत्री महोदय के दौरे की सफलता की पार्टी चल रही थी। सारे पुलिस कर्मी मौज उड़ा रहे थे। सिद्धार्थ के 'क्राइम' पर रिसर्च करने की बात पता चलते ही उनकी बातें शुरू होती है। विदेशों के पुलिसों को मिलने वाली सुविधाएं और वेतन को लेकर शिकायतें होती है। सिद्धार्थ के दो टूक बात करने पर एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी हँसते हुए कहता है, " अमाँ यार, हमें पर सारी तोहमतें क्यों? हम तो नाचने वाले हैं, नचाने वाला कोई और है।"[4] और यह बात ठीक भी लगती है। खास बात यह है कि सिद्धार्थ शोध हेतु जिन कैदियों से मिला, वह भी यहीं बात कह रहे थे। पुलिस व्यवस्था के इसी रूप के बारे में चंदनमल नवल लिखते हैं, " भारत का आम नागरिक जानता और मानता है कि पुलिस भ्रष्ट है। पक्षपात करती है। शिक्षित और पैसे वालों के काम करती है। अनपढ़ और गरीब की नहीं सुनती है। भाई भतीजावाद और जातिवाद में विश्वास करती है। राजनीतिक दबाव में काम करती है। इसलिए पुलिस समाज के कमजोर वर्ग अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लोगों के मानवाधिकारों की रक्षा करने में विफल रही है।"[5]

सिद्धार्थ से बात करने वाला वरिष्ठ पुलिस अधिकारी अपनी दयनीय ता उजागर करते हुए कहता है, " …एक ओर हमारी अक्षमता के लिए हमें कोसा जाता है, दूसरी ओर हमारे काम में टाँग लड़ाई जाती है। एक उदाहरण लीजिए- हमने किसी गुंडे को पकड़ा। अब हर गुंड किसी न किसी एम.एल.ए., एम.पी., सेक्रेटरी या मिनिस्टर वगैरा का आदमी, या आदमी का आदमी निकल आता है फोन पर फोन! आखिर वह बेदाग छूट जाता है… फिर क्या रह गई हमारी इज्जत! कभी-कभी तो ईमानदारी की कीमत हमें सस्पेंशन में चुकानी पड़ जाती है।"[6]

किंतु यहीं पुलिस गरीब-गुरबा, मजदूर-किसान मिल जाए तो उसकी खाल उधेड़ने में जरा भी कोताही नहीं बरतते। सत्ता के सामने दुम हिलाते हैं और सामान्य जनता के सामने शेर बन जाते हैं। सवाल यह भी है कि जब तक इनमें पेशेगत नैतिकता नहीं आएगी तब तक वे स्वयं भी प्रताड़ित होते रहेंगे और जनता को परेशान करते रहेंगे। ये बातें पुलिस विभाग का वरिष्ठ अधिकारी कह रहा है। जब सिद्धार्थ उनसे पूछता है, पुलिस अपने गलत कामों के लिए स्वयं जिम्मेदार नहीं है? तो सभी चुप हो जाते हैं।

पार्टी के कारण चाह कर भी सिद्धार्थ अपने भाई से बात नहीं कर पाता। पार्टी खत्म होते-होते बात करने की स्थिति पैदा होती है लेकिन उसी वक्त भाई को फोन आता है और उसे एक खून के सिलसिले में बाहर जाना पड़ता है। वह भी अपनी नौकरी से खुश नहीं है लेकिन उससे चिपके हुए है और उसके सारे लाभ भी उठा रहा है। सुबह भाई के आने पर सिद्धार्थ सचिन के निर्दोष और ईमानदार होने के साथ ही उसके रिहाई की बात करता है जिससे भाई उखड़ जाता है। वह कहता है कि तू कल से ही मेरी नौकरी खाने पर तुला है। वह सचिन को चोर-डकैत कहते हुए उसके केस में हस्तक्षेप करने से मना करता है।

सिद्धार्थ भाई से कुछ नहीं कहता। वह चुप हो जाता है। लेकिन वह जानता है कि यही भाई नेताओं के आगे पीछे करता रहता है। उनके हर सही गलत काम को अंजाम देता है। नेता का एक फोन आने पर नामी-गिरामी गुंडे को छोड़ दिया जाता है। उसे यह भी पता चल जाता है कि, " एक पूरे के पूरे नक्सल गांव को आग लगा देने के पुरस्कार स्वरुप उनकी तरक्की हुई थी।"[7] सत्ता के सामने दुम हिलाने वाले यह पुलिस अधिकारी अपनी सारी अकड़ और हेकड़ी निर्बलों को डराने के लिए दिखाते हैं। बाहुबलियों और दबंगों के सामने यह मसखरे बन जाते हैं।

सिद्धार्थ शोध हेतु न्यायालय से संबंधित आंकड़े जुटाते समय देखा कि न्याय व्यवस्था इतनी सुस्त और बेरुखी से चल रही है, मानो उसे किसी के जीने-मरने से कोई फर्क नहीं पड़ता। लोगों की जमीन, जायदाद ही नहीं, जिंदगी भी कानून की भेंट चढ़ती हो तो चढ़ जाए। उन्हें इससे क्या मतलब? महंगी और सुस्त न्यायिक व्यवस्था ने जनता को न्याय से कोसों दूर धकेल दिया है। संजीव इसी को वर्णन करते हुए लिखते हैं, " न्याय की प्रत्याशा में आगत... ऊबती, मुरझाती भीड़, मिठाइयों की दुकानों पर डकारती और ललकारती हुई नकली गवाहों की टोलियाँ, पुराने परचे और कागजातों के बंडल संभाले अहलमद और मुनीम, रंडियों के दलालों की तरह आसामी फाँसते हुए वकीलों के दलाल, काले कोट पहने हुए वकीलों की चहलकदमी...."[8] कुछ ऐसा ही चित्र है हमारे न्यायालयीन परिवेश का।

ऐसे ही वातावरण में सिद्धार्थ को ढूंढते हुए जर्जर राखाल बाबू हाँफते हुए आप पहुँचते हैं। टी.बी. के मरीज राखाल बाबू अपने बेटे और बेटी को व्यवस्था के चुंगल से छुड़ाना चाहते हैं। उनकी सारी उम्मीदें सिद्धार्थ पर टिकी है। सिद्धार्थ एक तो सचिन और संघमित्रा को अच्छे से जानता है और दूसरे उसके भाई पिता और जीजा सत्ता की अधिकार प्राप्त पदों पर आसीन हैं। राखाल बाबू ने सचिन का मुकदमा सिद्धार्थ के पिता के पास आए, ऐसी व्यवस्था की है। वे चाहते हैं कि अब सिद्धार्थ बाकी की जिम्मेदारी उठाएँ। वे अपने निर्दोष बेटे को निर्दोष देखना चाहते हैं।

सिद्धार्थ उसी दिन अपने पापा के पास जाता है। पिताजी सिद्धार्थ के शोध के काम से प्रसन्न है। सिद्धार्थ के अनुभव को वह न्याय व्यवस्था के खिलाफ होने के बावजूद श्री करते हैं। सिद्धार्थ के दृष्टिकोण का समर्थन करते हुए कहते हैं, " देशभर में जाने कितना अन्याय होता है और उसमें से जाने कितनी आप आते हैं हमारे पास और जाने कितनों का सही फैसला कर पाते हैं हम! अब देखो, वकील न्याय के दूध दूध है और इनका चरित्र...! जो जितनी भयंकर अपराधी को, जितनी जल्दी निरपराध सिद्ध कर दे वह उतना ही सफल वकील है। फिर जज का दिल और दिमाग, न्याय की व्यवस्था भी कम करामाती नहीं है। एक ओर से जो हार जाए, दूसरी कोर्ट से जीत जाता है। पीनल कोड में कई धाराएं तक त्रुटिपूर्ण है।"[9]

यही सही मौका समझकर सिद्धार्थ अपने पापा को बताता है कि पच्चीस तारीख को आपकी अदालत में जिसका मुकदमा पेश होने वाला है, वह अपराधी नहीं है। मानवता के प्रति पूरी तरह से निष्ठावान युवक है। लेकिन मुकदमा पेशी से पहले ही सिद्धार्थ के पापा भी मान चुके हैं कि वह युवक नक्सलवादी है अर्थात अपराधी है। इस केस में कुछ कर सकने की अपनी और सहायता को प्रकट करते हुए कहते हैं, " हम जिसे न्याय कहते हैं, वह तथ्य-सापेक्ष है, सत्य सापेक्ष नहीं है। तथ्य का प्रमाण स्वयं में सामर्थ्य-सापेक्ष है, अतः निर्णय लचीला होता है। हमारा तो यूँ जान लो, बस एक दायरा होता है.... पुलिस एफ.आई.आर. प्रस्तुत करती है, चार्जशीट पेश करती है, गवाह होते हैं, अपराध के सबूत, अभियुक्त की सफाई का दौर आता है, वकील होते हैं. कानून की किताबें होती हैं। इन सबमें से परत-दर-परत जो निष्कर्ष छन-छनकर आता है, हम वही निर्णय तो दे सकते हैं... और फिर तुम जिसकी सिफारिश करने आए हो, उसका तो मुकाबला ही सत्ता से हैं, जो हमेशा न्यायपालिका पर हावी रहती है।"[10]

वे सिद्धार्थ को समझाते हैं कि सचिन की तरहा ही तुम्हारे ऊपर भी सीबीआई की कार्यवाही हो चुकी होती, अगर गृह विभाग में कार्यरत सचिव जीजा नहीं बचाते। सत्ता संपन्न परिवार से होने के कारण ही सिद्धार्थ बच गया था और सत्ता विहीन परिवार का होने से सचिन कानून की निगाह में गुनहगार बन चुका था।

मुकदमे के निर्णायक दिन भी सचिन अपने पक्ष में कोई सफाई नहीं देता। और कहीं भी तो किसके सामने? उस व्यवस्था के सामने जिसके लिए गरीब का सबसे बड़ा अपराध गरीब होना है। जो उसे पहले से ही अपराधी मान चुका है, उस व्यवस्था के सामने वह क्या सफाई देता? गैर बराबरी की इन व्यवस्थाओं को ललकारते हुए सचिन बेबाक टिप्पणी करता है, " मुझे इस पूंजीवादी, प्रतिक्रियावादी, न्याय व्यवस्था में विश्वास नहीं है। आम जनता भी जिसे न्याय का मंदिर कहती है, वह लुटेरों, पंडों और जूता-चोरों से भरा पड़ा है।... गीता तथा गंगाजल की कसमें खाकर झूठी गवाहियां देने वाले गवाह... यह लाल थाने, लाल जेलखाने और लाल कचरिया... इन पर कितने बेकसूरों का खून पुता है। वकीलों और जजों का काला गाउन न जाने कितने ख़ून के धब्बों को छुपाए हुए है! परिवर्तन के महान रास्ते में एक मुकाम ऐसा भी आएगा, जिस दिन इन्हें अपना चरित्र बदलना होगा, वरना इनकी रोबीली बुलंदियाँ धूल चाटती नजर आएँगी।"[11]

वकील 'कंटेंप्ट ऑफ कोर्ट' कहते हुए चिल्लाता है। क्या सही में न्याय व्यवस्था की इज्जत इतनी सस्ती है कि वह अपनी आलोचना तक बर्दाश्त नहीं कर पाती? लोगों के न्याय व्यवस्था के प्रति के विचार उसे अनादर लगते हैं? क्या न्याय व्यवस्था का यही रूप संविधान और संविधान निर्माताओं को अपेक्षित था? क्या न्याय व्यवस्था प्रताड़ित, शोषित लोगों के समय, संपत्ति का अनादर नहीं करती?

सचिन को सजा सुनाई जाती है और पुलिस उसे जेल ले जाती है। राखाल बाबू फफ्फकर रो पड़ते हैं। अपने बेटे के निर्दोष होने को वे साबित नहीं कर पाते और इसी सदमे में उनकी मौत हो जाती है। सचिन जेल जाते समय रास्ते में पेशाब के बहाने पुलिस के हाथों से छूट कर जंगल में भाग जाता है। राखाल बाबू की अंत्येष्टि में सचिन आएगा, यह सोचते हुए पुलिस दो दिन तक सादे लिबास में पहरा देती रहती है। जब लाश चढ़ने लगी तो उनकी अंत्येष्टि सैनिटोरियम वालों ने कर दी। अपनी निर्दोष बेटे को निर्दोष देखने की राखाल बाबू की अंतिम इच्छा पूरी नहीं हो पाती।

सिद्धार्थ अपने शोध के लिए नारी निकेतन, बाल अपराध, सुधार ग्रह, रिफॉर्मेटरी होते हुए कारागृह पहुंचता है। उसे पता चलता है कि सेंट्रल जेल में सचिन नाम का बंगाली युवक और संघमित्रा नाम की औरत ट्रांसफर होकर आए हैं। सिद्धार्थ शोध के लिए सेंट्रल जेल जाने की अनुमति प्राप्त करता है। लेकिन काफी ढूंढने पर भी उसे वहां न तो संघमित्रा मिल पाती है न ही सचिन। मिलते भी कैसे! उसे नक्सली सेल जाने की मनाही कर दी गई थी। लेकिन जेल का मुआयना करते हुए वह यह जान गया था कि जेल के बाहर का वर्ग विभाजन, वर्ण विभाजन जेल में भी मौजूद है। बल्कि वह जेल में और अधिक मुखर है। राजनीतिक कैदी, धाकड़ दादा, यहां ऐशों-आराम की जिंदगी जीते हैं और सामान्य कैदी उनकी गुलामी में पीसते रहते हैं।

सिद्धार्थ जेल में अपना काम कर रहा था, तभी एक घटना घटित हुई। दिवाली की रात थी। बाहर आतिशबाजियां छूट रही थी। पर जेल में भी? प्रतिबंधित सेल के कैदी सैलाब बनकर बाहर निकल रहे थे। पुलिस के दस्ते के साथ वे भीड़ गए। अंदर का फाटक तोड़कर नक्सली सदर फाटक पर बम बरसाने लगे थे। लेकिन तभी अन्य कैदियों की विशाल फौज हाथ में बंदूक लिए नक्सली कैदियों पर टूट पड़ती है और मारपीट का ऐसा मंजर सामने आता है कि चारों और खून और लाशें बिखरी दिखाई देने लगती है। नक्सली कैदियों को ढोर-डांगर की तरह मारते-पीटते हुए कैदी वापस लौट जाते हैं। यह भयानक दृश्य सिद्धार्थ अपनी आंखों से देखता है। चोर, व्यभिचारी, सजायाफ्ता कैदी बुद्धिजीवी नक्सलियों को पीट रहे थे। कैदियों को नक्सलियों के खिलाफ उकसाया किसने? उनके हाथ में बंदूक ए कहां से आई? नक्सलियों को पीटने का अधिकार कैदियों को किसने दिया और सबसे महत्वपूर्ण सवाल सेंट्रल जेल में बम कैसे आए?

इस संदर्भ में सेंट्रल जेल का अधीक्षक कहता है, " पुलिस की जात साली ठीक ही घुस के लिए बदनाम है। जरा-से पैसों के लिए साले बिक गए, वरना जहां परिंदा तक पर नहीं मार सकता, वहां बम आ जाए।"[12] अधीक्षक अपनी ही व्यवस्था की सेंधमारी और भ्रष्टाचारी स्थिति की पोल खोलता है।

इस घटना से आहत सिद्धार्थ टाइफाइड का शिकार बन जाता है। जेल अधीक्षक सिद्धार्थ के पापा के कारण बच जाता है। शोध के अंतिम काट के लिए सिद्धार्थ को नक्सली सेल में जाने की इजाजत मिल जाती है। वह सचिन को देखता है पर पहचान नहीं पाता। जंजीरों से जकड़े हाथ-पाव, बढ़ी हुई दाढ़ी-मूछे, कोटरों में धंसी आंखें, बेतरतीब बड़े नाखून, कुल मिलाकर कोड़ियों की शक्ल में उसे ढाला गया था। रक्षक व्यवस्था द्वारा छले व्यक्ति के मोहभंग के जीते-जागते उदाहरण के रूप में सचिन को देखा जा सकता है। उसके अंदर इतनी कटुता भरी थी कि वह सिद्धार्थ से भी सीधे मुंह बात नहीं करता।

सिद्धार्थ सचिन की बातों को हंसकर टालते हुए उसके 'क्राइम'पर शोध करने की बात बताता है। पूरी गंभीरता से सचिन से सवाल करता है, " लोग व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए या अत्याचार के खिलाफ अस्त्र उठाते हैं, तुम लोग सामूहिक स्वार्थ और एक्सप्लायटेशन के खिलाफ... मगर करते हो तुम भी अपराधी ही। क्या हिंसा से हिंसा को और नफरत से नफरत को दबाया जा सकता है।"[13]

सिद्धार्थ का यह सवाल ही सचिन को बेमतलब का लगता है। हिंसा से हिंसा को और नफरत से नफरत को दबाया न जा सके लेकिन हिंसा या नफरत को अपनाने की जरूरत क्यों पड़ती है? हिंसा और नफरत का जवाब सकारात्मकता, सृजनात्मकता से दिया जा सकता है। लेकिन उसके लिए जरूरत है, आगे वाली के सीने में भी दिल हो, नजरों में शर्म हो और इस पर हमारी वर्तमान व्यवस्था खरी नहीं उतरती। जो व्यवस्थाएं आम जन के जान-माल की रक्षा के लिए बनाई गई है, वह व्यवस्था ही बाहुबलियों, सामंतों, जमींदारों के साथ मिलकर दलित, आदिवासियों के शोषण में संलग्न है।

नंदिनी सुंदर और अन्य बनाम छत्तीसगढ़ राज्य मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 15 जुलाई, 2011 को सुनाएं फैसले में निराशा जताते हुए कहा, " प्रतिभागियों ने लगातार इस बात पर जोर दिया कि राज्य के पास एक मात्र यही विकल्प है कि वह दमन के सहारे शासन करें, एक ऐसी समाज व्यवस्था स्थापित करें जिसमें हर व्यक्ति को संदेह की निगाह से देखा जाता हो। मानवाधिकार

की बात करने वाले हर व्यक्ति को संदिग्ध और माओवादी माना जाए।"[14] व्यवस्था द्वारा ऐसी स्थिति बनाई जाए तो इससे सचिन जैसे बागी नहीं उपजेंगे तो और क्या होगा?

सवाल तो यह भी है कि सिद्धार्थ के शोध को व्यवस्था द्वारा कितनी गंभीरता से लिया जाएगा। सचिन को सिद्धार्थ का कैदियों से इस तरह मिलना, उनका मजाक उड़ाना लगता है। गुस्से के मारे वह फाइल फेंक देता है। सारे कागज बिखर जाते हैं। जेल के अधीक्षक की बातों का भी उस पर कोई असर नहीं होता। वह कहते हैं कि तुम्हारे अपराधों के कारण कोर्ट से कभी भी फांसी का फरमान आ सकता है। सचिन में एक प्रकार की उज्जड़ता का संचार हो चुका है। वह किसी को कुछ नहीं समझता। कुछ पल उनके लिए सचिन का बर्ताव अनाकलनीय तथा अपराधिक मानसिकता वाला लगता है। लेकिन हमें इसके कारणों की खोज करनी होगी। रचनाकार संजीव इसी खोज का हिमायती है।

इस घटना से आहत सिद्धार्थ जेल से बाहर आ जाता है। वह वापस जाना चाहता है। पर जेलर के आने पर पता चलता है कि सचिन के फांसी का फरमान आ चुका है। जेलर के कहने पर सिद्धार्थ सचिन से मिलने वापस आता है। तब सचिन स्वयं ही बात करना शुरू करता है। सिद्धार्थ संघमित्रा के बारे में जानना चाहता था। सचिन उसे बताता है कि, " शी हैड बीन ब्रूटली बूचर्ड ला ॅंग एगो।

उसके गुप्तांग में रूल घुसाकर... मथकर मारा गया।

मेडिकल की मेधावी छात्रा, जेनेटिक्स पर रिसर्च करने का दम भरने वाली रानी, एक सामान्य पुलिस के हाथों... क्राइम। लगा, अभी-अभी क्रोंचवध हुआ है। फिजा में दूर-दूर तक दहशत भरी दर्दनाक चीखें भर उठी है।"[15]

सचिन के वाजिब प्रश्न के लिए, अपनी पक्षधरता की स्वतंत्रता के लिए क्या कुछ नहीं खोना पड़ा! टी.बी. से खांसता बाप, हमसफर, हम साथी बहन व्यवस्था के सूली पर चढ़ी और उसका अपना वजूद भी एक अनसुलझे प्रश्न सा फांसी के फंदे पर झूलने वाला है। उसकी उज्जडता, अंतहीन क्रोध, व्यवस्था समर्थकों के प्रति घृणा, सब कुछ यहीं से जन्म लेता है। क्रोध और घृणा उसके सीने में पलती है, बढ़ती है और व्यवस्था के मुंह पर अपने होने का प्रमाण एक प्रश्नचिन्ह छोड़ जाती है।

सिद्धार्थ ट्रेन से वापस जा रहा है लेकिन सब कुछ गंवाकर। संघमित्रा के मौत ने उसे अंदर तक झकझोर दिया है। अपराध की व्यवस्था को उसने इतने नजदीक से देखा और जाना पहचाना है कि उसे अपनी शोध की अपूर्णता खलने लगती है। उसी प्लेटो के कथन की याद आती है- अपराध भी प्रतिभा संपन्न व्यक्ति ही कर सकते हैं। उसका दिमाग नाना प्रकार की विरोधी विचारों से बजबजा उठता है। उसे अपनी सार्थकता ही सवालों की ढेरों में फंसी दिखाई देती है- " क्या है मेरी और मेंरे शोध की सामर्थ्य और सीमा? अपराध की लपलपाती बर्बर लपटों में... उन्हीं लपटों में, जिनमें आहुति बनकर लाखों करोड़ों निरपराध, निष्ठावान तेजस्वी आत्माएँ, मेरा मित्र, मेरी रानी तक समा चुके हैं, अपने हाथ सैकने के सिवा यह है क्या? इससे बढ़कर गर्हित अपराध और क्या हो सकता है? कर सकूँगा में सत्ता, व्यवस्था और समाज के तमाम अपराधी पुर्जी को जेल में?"[16]

सिद्धार्थ अपनी सारी शोध सामग्री नदी के पानी में फेंक देता है। कहानी का अंत उदास एवं निराशाजनक है, जो जीवन की वास्तविकता है। अन्याय के खिलाफ सचिन का मुखर होना कहानी का जीवन सूत्र है। अन्याय का मुकाबला आवाज उठाने से ही आरंभ होता है। आवाज उठाना न्यायिक भी हो सकता है और स्वाभाविक भी। शंकर शेष के नाटक 'पोस्टर' का कीर्तनकार इसी बात को स्पष्ट करता है, "चुप्पी से हम बच भले ही जाए लेकिन इससे अत्याचारी की ताकत बढ़ती जाती है। हमारे अन्याय सहने के संस्कार बढ़ते जाते हैं और अत्याचार करने का उसका साहस। बंधु जनों धीरे-धीरे अत्याचार सहने का भी एक तंत्र उभरता है उसे कोई न कोई खूबसूरत दार्शनिक नाम दिया जाता है। एक दिन ऐसा आता है कि हमारी आत्माओं में ढेर सारी बर्फ इकट्ठी हो जाती है। हम इतनी अपाहिज होते जाते हैं कि विरोध करना भी हमें पाप लगने लगता है..."[17]

सचिन का बगावत या विरोध का तरीका स्वाभाविक तथा न्याय संगत होने के बावजूद न्याय सम्मत नहीं था। लोगों की लड़ाई लड़ने से काम नहीं चलेगा बल्कि लोगों को जगा कर लड़ने के लिए प्रेरित करना होगा। किसी भी समस्या को हम जन समस्या बनाकर आगे लाएंगे तभी वोट की राजनीति, राजनीतिक सत्ता के लिए ही सही पर नरमी से जरूर पेश आएगी या लोक भावना के पक्ष में खड़ी हो जाएगी। आदिवासी उपन्यासकार विनोद कुमार अपने पात्र अरविंद के माध्यम से यहीं बात कहते हैं, " जरा घर से बाहर निकलिए। स्थिति इतनी भी निराशाजनक नहीं। नेता भले ही सत्ता की राजनीति में लगे हो, जनता अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही है। चांडिल क्षेत्र से जिंदल को खदेड़ दिया गया है। पोटका में भी उन्हें ठौर नहीं मिलने वाली। उड़ीसा के कलिंग नगर में टाटा के खिलाफ संघर्ष चल रहा है। पॉस्को के खिलाफ भी एक बड़ा जन आंदोलन है। सिंगुर और नंदीग्राम में जनता विकास के चालू मॉडल पर सवालिया निशान लगा रही है। इन आंदोलनों में कहीं माओवादी भी है लेकिन यह सभी आंदोलन मूलतः जन आंदोलन है, जिनमें जनता की व्यापक भागीदारी है।"[18]

इस रूप में हर संघर्ष भविष्य के लिए नई व्यवस्था का आगाज करता है।

निष्कर्ष:

'अपराध' कहानी में संजीव शोषण तंत्र के आपसी भाई भतीजावाद, सत्ता के गठजोड़ को दर्शाते हुए प्रशासन, पुलिस, न्याय व्यवस्था का भंडाफोड़ करते हैं। व्यवस्था सबसे पहले व्यवस्था को ही बचाती है इसे कहानी कई प्रसंगों के माध्यम से व्यक्त करती है। नक्सलवाद एवं आदिवासी समस्या को संजीव पूरी संजीदगी के साथ उठाते हैं। सचिन के चारित्रिक विकास में रचनाकार हस्तक्षेप करने से बचने का प्रयास करता है। संघमित्रा का चरित्र कहानी का संवेदन स्थल है जो कहानी की पूरी चेतना को झकझोर कर रख देता है। सचिन के स्वभाव की गांठे समझने में संघमित्रा का व्यक्तित्व सहायक साबित होता है। सचिन का फांसी के फंदे पर बिना डरे बिना समझौता किए झूल जाना एक ओर अन्याय के खिलाफ उठती आवाज को संबल देने का काम करता है तो दूसरी ओर व्यवस्था के सामने प्रश्न चिन्ह के रूप में अपना अस्तित्व बनाए रखता है। सिद्धार्थ की संघमित्रा से सचिन तक की यात्रा वैचारिक विकास, गठन एवं दृढ़ता की यात्रा है। सिद्धार्थ स्वयं लेखक है, चेतना का वाहक भी है और प्रसारक भी। संजीव 'अपराध' कहानी के माध्यम से पूरी इमानदारी और बेबाकी से नक्सलवाद की सृजनात्मकता तथा शोषण मुक्ति की भावना को व्यक्त करते हैं।

संदर्भ:

1) बयान, अंक अप्रैल, 2014- संपा. मोहनदास नैमिशराय- 5ए/30बी, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-63, पृ.17
2) अपराध - संजीव - हिंदवी- https://www.hindwi.org/story/aparaadh-sanjeev-story पृ.3
3) वहीं, पृ.5
4) वहीं, पृ.5
5) बयान, अंक जुलाई, 2014- संपा. मोहनदास नैमिशराय- 5ए/30बी, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-63, पृ. 23
6) अपराध - संजीव - हिंदवी- https://www.hindwi.org/story/aparaadh-sanjeev-story पृ.5
7) वहीं, पृ.7
8) वहीं, पृ.7
9) वहीं, पृ.7
10) वहीं, पृ.8
11) वहीं, पृ.8
12) वहीं, पृ.11
13) वहीं, पृ.12
14) समयांतर, अंक अगस्त, 2011- संपा. पंकज बिष्ट- 79ए, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-95
15) अपराध - संजीव - हिंदवी- https://www.hindwi.org/story/aparaadh-sanjeev-story पृ.13
16) वहीं, पृ.14
17) शोध दिशा, अंक अक्टूबर-दिसंबर, 2021- संपा. गिरिशरण अग्रवाल- हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार, बिजनौर-246701, पृ. 238
18) रेड जोन- विनोद कुमार- अनुज्ञा बुक्स, वेस्ट गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली-110032, पृ.393

संजीव के कथा साहित्य में आदिवासी चेतना

डॉ. माधव राजप्पा मुंडकर,
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
नाईट कॉलेज ऑफ आर्टस् ॲण्ड कॉमर्स,
इचलकरंजी।
मो.न. 8888198884
Email- madhav.mundkar@gmail.com

शोध सार:

आदिवासी समुदाय का इतिहास देखने पर पता चलता है कि आदिवासियों में प्रतिरोधक की भावना हमेशा से मौजूद रहती हैं। वैसे देखा जाए तो आदिवासी एवं अन्य जातियों के बिच संघर्ष की बड़ी परम्परा देखने को मिल जाती है। वास्तव में आदिवासियों का संघर्ष जल, जमीन एवं जंगल के लिए दिखाई देता है। अपनी अस्मिता एवं अस्थित्व को बनाए रखने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। आदिवासी बड़े ही सरल सीधे-सादे होते हैं। आदिवासियों के बारे में रूपचन्द वर्मा लिखते हैं "आदिवासी लोग बहुत ही सीधे-सादे और स्वाभिमानी है यह शोषणकारी दुश्मनों के खिलाफ अनवरत लडे और इन्होने अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखा है।"[2] आदिवासियों का अधिकांश जीवन जंगल एवं कृषि पर निर्भर करता है। आजादी के बाद हमने समाजवादी समाज व्यवस्था स्वीकार किया। आजादी के पहले आदिवासी अधिकतर जल, जंगल एवं जमीन से ही जुड़े हुए थे परंतु 60 के दशक में वे उद्योग एवं मजदूरी करने के लिए मजबूर देखने को मिल जाते हैं। नगरों में जाकर कारखानों में मजदूरी करना, वनविभाग में मजदूरी करने लगे। इन सभी जगहों पर आदिवासियों की आय तो नहीं बढी लेकिन शोषण को जरूर बढावा मिला कारखानों में मजदूरों को कम मजदूरी दी जाती है या देते ही नहीं है। मजदूरों की जान की परवाह भी नहीं की जाती।

बीज शब्द: आदिवासी, संजीव, साहित्य

हिंदी साहित्य में अनेक साहित्यक धाराएँ देखने को मिल जाती है। हिंदी साहित्य अनेक धाराओं एवं दिशाओं से होता हुआ गुजर रहा है, जैसे की स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, अल्पसंख्यांक विमर्श आज तो किन्नरों को लेकर चर्चाएँ हो रही है। सूदूर इलाकों में रहनेवाले तथा जल, जंगल और भूमि को अपना सबकुछ माननेवाले आदिवासियों का साहित्य भी देखने को मिल जाता है। हिन्दी आदिवासी साहित्यकारों में संजीव का विशेष उल्लेखनीय है, उन्होंने अपनी कहानियों एवं उपन्यासों के लिए पश्चिम बंगाल एवं बिहार के परिवेश को चूना है। वहाँ की जनजातियों का चित्रण अपने कथा साहित्य के माध्यम से किया है। 'किशनगढ़ के अहेरी', 'सावधान नीचे आग है', 'सूत्रधार', 'जंगल जहाँ शुरू होता है', 'पाँव तले की इप', 'रह गयी दिशाएँ इसी पार', 'प्रेतमुक्ति', 'अपराध', 'शिनाख्त', 'दुनियाँ की सबसे हसीन औरत' आदि साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से सामाजिक चेतना का चित्रण किया है।

संजीव के कथा साहित्य में सिर्फ दयनीय और पीड़ित स्थितियों का ही चित्रण नहीं है बल्की पीड़ित, शोषित, उपेक्षित लोगों का विरोधी स्वर भी देखने को मिल जाता है। संजीव अपने कथा साहित्य के संबंध में कहते हैं कि ''देश के लाखों दलित, दमित, प्रताड़ित, अवहेलित जनों की जिजिविषा और संघर्ष का मैं ऋणी हूँ, जिन्होंने वर्ग, वर्ण, भाषा, सम्प्रदाय के तंग दायरों को तोड़ते हुए शोषकों, दलालों, कायरों के विरूद्ध मानवीय अस्मिता की लढाई लड़ी है और लड़ रहे हैं। मेरा लेखन उससे कण मुक्ति की छटपटाहट भर है।''[1]

आदिवासी समुदाय का इतिहास देखने पर पता चलता है कि आदिवासियों में प्रतिरोधक की भावना हमेशा से मौजूद रहती हैं। वैसे देखा जाए तो आदिवासी एवं अन्य जातियों के बिच संघर्ष की बड़ी परम्परा देखने को मिल जाती है। वास्तव में आदिवासियों का संघर्ष जल, जमीन एवं जंगल के लिए दिखाई देता है। अपनी अस्मिता एवं अस्थित्व को बनाए रखने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। आदिवासी बड़े ही सरल सीधे-सादे होते हैं। आदिवासियों के बारे में रूपचन्द वर्मा लिखते हैं "आदिवासी लोग बहुत ही सीधे-सादे और स्वाभिमानी है यह शोषणकारी दुश्मनों के खिलाफ अनवरत लडे और इन्होने अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखा है।"[2] आदिवासियों का अधिकांश जीवन जंगल एवं कृषि पर निर्भर करता है। आजादी के बाद हमने समाजवादी समाज व्यवस्था स्वीकार किया। आजादी के पहले आदिवासी अधिकतर जल, जंगल एवं जमीन से ही जुड़े हुए थे परंतु 60 के दशक में वे उद्योग एवं मजदूरी करने के लिए मजबूर देखने को मिल जाते हैं। नगरों में जाकर कारखानों में मजदूरी करना, वनविभाग में मजदूरी करने लगे। इन सभी जगहों पर आदिवासियों की आय तो नहीं बढी लेकिन शोषण को जरूर बढावा मिला कारखानों में मजदूरों को कम मजदूरी दी जाती है या देते ही नहीं है। मजदूरों की जान की परवाह भी नहीं की जाती।

'सावधान! नीचे आग है' उपन्यास में आदिवासियों के यथार्थ का चित्रण अंकन किया गया है। कोयले की खदानों में मजदूरी करनेवाले आदिवासियों के नाम कईबार दर्ज नहीं होते। कोई घटना घटित हो जाती है तो मुआवजा तक मिल नहीं पाता। मैनेजमेंट की लापरवाही के कारण कोयले की खदान में कई आदिवासी मजदूर डूब जाते हैं। सरकार का दायत्व बनता है। कि पीड़ित लोगों की मदद की जानी चाहिए। लेखक कहता है "अफसरों की बीवियाँ संतरा, सेव, कपड़ा लेकर अपने चटख कपड़ों में दरवाजे -दरवाजे बाँट रही थी, आगे-आगे इस्पात मंत्री और उपायुक्त। एक अकेले घरके दरवाजे पर एक औरत अपने बच्चों के साथ रोती मिली। मंत्री रूक गए उपायुक्त ने लिस्ट देखी क्या नाम तुम्हारे पति का? "फांसिस हेम्बम।''[3] इस नाम का कोई व्यक्ति लिस्ट में दर्ज न होने कारण उस महिला को कोई सहायता प्राप्त नहीं होती है। उल्टा उसे कहा जाता है कि कहीं पीकर पड़ा होगा। अमानवीय व्यवहार तथा आदिवासियों के प्रति अविश्वास का भाव देखने को मिल जाता है।

शासकीय यंत्रणाओं के द्वारा आदिवासियों का शोषण किया जाता है, इसका उदाहरण हमें संजीव के 'धार' नाम उपन्यास के माध्यम से देखने को मिल जाता है। आदिवायों का जंगल, जमीन, कोयला खदानों पर नाम मात्र अधिकार देखने को मिल जाता है। पूँजीपतियों वर्ग के द्वारा भोली-भाली जनता को फसाकर सब कुछ छीन लेते हैं, वदले में मिलता है मात्र तिरस्कार 'धार' उपन्यास में महेंद्र बाबू, मैना के पिता को बहला-फुसलाकर अनेक प्रकार के लालच देकर जमीन को हड़प लेते हैं, मैना का पति जनखदान से कोयला निकालता है तो पुलिस उस पर रोक लगाती है मैना सबके खिलाफ संघर्ष करती है और साहस के साथ अपने अधिकारों के लिए खड़ी होती है। ''देखिए आप लोग आपास में फैसला कर लीजिए अभी-अभी पुलिस को दिया, अब आप लोग आए हैं। कितना देगा। उसने ऐसा कहा माने घर की मालिकन भिखारियों को झिडक रही हो। थोडी बहुत खिच-खिच के बाद पचास पर अड़ गयी। "इससे जास्ती नही सिपाई साव, चाहे खाल रिस लो''[4] मैना नामक आदिवासी महिला के माध्यमसे कथाकार संजीव ने प्रशासन व्यवस्था का विरोध किया है। जिन लोगों के माध्यम से सरंक्षण मिलना चाहिए वेही भ्रष्ट हो चूके हैं। मैना के माध्यम से आदिवासी नारियों निर्माण हो रही नवचेतना को लेखक ने उजागर किया है।

महाजनों एवं सूदखोरी व्यवस्था का विरोद्ध कथाकार संजीव ने अपने कथा साहित्य के माध्यमसे किया है। महाजन लोगो में भी आदिवासियों का भरपूर शोषण किया है, आदिवासी समाज आजादी के बाद भी इनके चुंगुल से बाहर नहीं आ पाया है। आदिवासियों को सूद पर पैसा देकर उनकी जमीन को हड़प लिया है। खाने-कमाने के लिए आज उनके पास अपनी जमीन ही नहीं बची है। 'पाँव तले की दूव' उपन्यास में संजीव आदिवासियों को अपनी जमीन वापस लेने के लिए संघर्ष करवाते हैं। "दूसरी सुबह हम जल्दी-जल्दी तैयार होकर टीले पर पहूँचे थे। मेड पर नगाड़ा बज रहा था और तीर धनुष, कुल्हाडी, हाँसिया लिए काले-काले दरिद्र आदिवासी, महिला, पुरुष, बच्चे तक दो-एक बन्दुक भी थी। बहुत दूर पर खडे कुछ अपेक्षाकृत सम्पन्न से दिखनेवाले लोग ताक रहे थे मगर वे पास न फटके और दोपहर तक सारा धान कट बटकर पहाड़ की दरारो में समा गया।''[5] अब आदिवासी समूदाय अपने अधिकारों के प्रति सचेत हुआ है, इन्हें और अधिक दबाया नहीं जा सकता डराया धमकाया नहीं जा सकता, आदिवासियों में नवचेतना निर्माण हुई है, ऐसा कथाकार संजीव कहते हैं।

'प्रेतमुक्ति' कहानी में एक तरफ आदिवासीयों की मेहनतकश और अभावग्रस्त जिन्दगी के दुःख दर्द को चित्रित करते हैं दूसरी और मुखिया जी और सुरेन्द्रर जी जैसे सामंतों की सामंती व्यवस्था के प्रेत से प्रेतमुक्ति दिलाते हैं। मुखिया जी इलाके की एक मगा नदी पर सामंती व्यवस्था के प्रेत से प्रेत मुक्ति दिलाते हैं। मुखिया जी इलाके की एक माग नदी पर बाँध बनाकर सारे पानी को रोक लेते हैं जिससे जानवर तो जानवर उस क्षेत्र के आदिवासी लोग तक बिना पानी के प्यासे रह जाते हैं। इसके विरोध स्वरूप काका (महतो) सोर इलाके में घूमकर इस बाँध के बारे में आदिवासियों को अवगत कराता है, बाँध के कारण आदिवासियों को पानी के लिए तडपना पडेगा। काका बाँध के बाजू में पाड़ा बाँधकर रोज बाँध को तोड़ देता है, परंतु एक दिन मुखिया पाड़ा की जगह काका को बाँध देता है जिसके कारण शेर काका की शिकार कर देता है। काका का प्रेत देखकर उनके बेटे जगेसर पर असर हो जाता है, जगेसर में पागलपन निर्माण हो जाता है। एक दिन को आकोत करनेवाले मुखिया के बेटे सुरेन्दर जी को मरकर प्रेतमुक्ति पाता है -''तीसरे पहर दूरसे ही जंगल हरहराया। आँधी से सुरेन्दार जी के चीखने की आवाज एक बार आई और फिर चिथडी - चिथड़ी हो गई। बाँध कटा हुआ था। हरहराता कलकलाता पानी तेजी से वह रहा था।''[6] वास्तव में आन्तरिक बेचैनी, व्याकुलता और विवशता व्यक्ति को ऐसी लड़ाई और संघर्ष की ओर प्रवृत्त कर देती है। संजीव ने दिखाया है कि आदिवासी समाज की नई पीढ़ी अपने संघर्ष और विद्रोह की नई चेतना को लेकर आगे बढ रही है।

संजीव के विचारों पर क्रांतिकारी भगतसिंह एवं नक्सलवादी आंदोलन का गहरा प्रभाव देखने को मिल जाता है। समाज, देश और मनुष्यता के प्रति समर्पित हर शख्स उनकी सहानुभूति का पात्र है। सामंतवाद, पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के खिलाफ जनता की व्यापक एकता उनका सपना है। अपने कथा साहित्य में जहाँ एक ओर उन्होंने जनता के दुःख-दर्द एवं पीड़ा को अभिव्यक्त किया है तो दूसरी ओर इन शक्तियों के विरूद्ध आवाज भी उठाई है।

मानवी स्तर पर नक्सलवाद का वे समर्थन करते हैं परंतु बिगडे हुए रूप को नकारते हैं। ‘अपराध’ कहानी इसी भाव को लेकर आगे चलती है। गुनाह होते हुए भी व्यक्तियों को पुलिस के द्वारा मार-मारकर बदहाली या मरवा डालते हैं तो अनायास रूप से आदिवासी नक्सलियों की ओर झुकने लगते हैं। उनके लिए तो वही भगवान बन जाते हैं। ‘अपराध’ कहानी का नायक सचिन को सजा से बचाने के लिए अपना पक्ष रखने की बात की जाती है तो वह कहता है ‘‘मुझे इस पूँजीवादी, प्रतिक्रियावादी न्याय व्यवस्था में विश्वास नहीं है। आम जनता भी जिसे न्याय का मंदिर कहती है वह लूटेरे पंगे और जूता चोरों से भरा पड़ा है।’’[7] नक्सलवादी आंदोलन यह शोषण, पूँजीवाद, सामंतवाद, जमीदारी, सूदखोर आदि को मिटाने के लिए आदिवासियों के द्वारा चलाया गया है। कहानी के माध्यम से बतलाया गया है कि सत्ता, समाज एवं व्यवस्था के विरूद्ध संघर्ष के द्वारा हो समाप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार से ‘ऑपरेशन जोनाकि' कहानी के माध्यम से संजीव ने भ्रष्टकर्मी, महाजनों, अफसरों एवं जमीनदारों के द्वारा किए जानेवाले शोषण का चित्रण किया है। शिक्षित के माध्यम से आदिवासियों में जागृती निर्माण करके इस व्यवस्था के विरोध में सभी आदिवासी समाज को एकत्रित करता है।

प्रारंभ से ही आदिवासी समुदाय का अलग-अलग लोगों के साथ संघर्षमय इतिहास देखने को मिल जाता है। आज के बदलते परिवेश के साथ बाजारीकरण, भूमंडलीकरण एवं नवउदारीकरण के बदौलत आदिवासियों का जीवन तो और भी दूभर हो गया है। विकास के नाम पर इनकी जमीन छिन ली जाती है, जंगलों पर अधिकार बना लिया जाता है, नई व्यवस्था के कारण पुलिस, न्याय व्यवस्था, प्रशासन आदि के माध्यम से आदिवासियों का शोषण किया जाता है। आज इन लोगों को टाटा, विरला, अंबानी, आदानी जैसे लागों के साथ संघर्ष करना पड़ रहा है। इसी संघर्ष को कहानीकार संजीव ने ‘दुनिया की सबसे हसीन औरत’ कहानी के माध्यम से दर्शाया है। संजीव मानते हैं कि संघर्ष करनेवाली आदिवासी स्त्री ही दुनियाँ की सबसे हसीन औरत है।

कहानी में आई हुई ओराव जाति कि महिलाओं ने मुगल सलतनत को तीन बार हराया था । यह लड़ाई महिलाओं ने की थी। चौथी बार हार जाने के बाद मुगल सैनिकों ने अपने हार के बदले में इनके गालों पर तीन निशान बनाएँ। आज भी आदिवासी औरतें अपने गाल पर तीन निशाण गुदवाती है। वह इसे अपना गौरव समझती है ‘‘उन दागो को कलंक न मानकर सभी ओराव औरतों द्वारा सिंगार के रूप में अपना लिया।’’[8] अंतः कहा जा सकता है कि संजीव के कथा साहित्य में आदिवासी समाज का संघर्षशील इतिहास देखने को मिल जाता है | जल, जंगल एवं जमीन तक अपने आपको सीमित रखनेवाले आदिवासी समुदाय नागरी सभ्यता के संपर्क में आने के कारण संघर्ष, शोषण, प्रशासन, पुलिस, महाजन, सूदखोर, पूँजीपति, जमींदार, राजसत्ता के कारण संघर्षशील रहा है। आज भी आदिवासी समाज समाज की मुख्य प्रवाह से दूर है। सरकार की ओर से योजनाओं की घोषणा की जाती है, परंतु भ्रष्ट प्रशासन के कारण उनतक पहुँच नहीं पाती। अपने कथा साहित्य के माध्यम से संजीव ने आदिवासी समाज में चेतना निर्माण करने का कार्य किया है।

संदर्भ सूची :

1. संजीव, ‘संजीव की कथा यात्रा पहला पडाव’, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्र. सं. 20
2. रूपचन्द्र वर्मा, ‘भारतीय जनजातियाँ’, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली प्र. सं. 71
3. संजीव, ‘सावधान ! नीचे आग है’, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली प्र. सं. 202-203
4. संजीव, ‘धार‘, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 99
5. संजीव, ‘पाँव तले की दूब’, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर प्र. सं. 16
6. संजीव, ‘संजीव की कथा यात्रा पहला पडाव’, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्र. सं. 345
7. वही प्र. सं. 308
8. वही प्र. सं. 309

आदिवासी अधिकार हनन की दूब: पाँव तले की दूब

डॉ. दीपक रामा तुपे,
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
विवेकानंद कॉलेज, कोल्हापुर (स्वायत्त)
मोबाइल: 8805282610
ई-मेल:dipaktupe1980@gmail.com

सारांश

सुप्रसिद्ध रचनाकार संजीव का व्यक्तित्व और कृतित्व में सामाजिक, राजनीतिक और संघर्ष की सशक्त मिसाल है। 'पाँवों तले की दूब' संजीव का उपन्यास प्रसिद्ध उपन्यास है जो सदियों से बुनियादी सुविधाओं से वंचित आदिवासी समाज के शोषण की दासतां बयां करता है। उपन्यास झारखंड परिसर के आदिवासियों का शोषण, उनके साथ हो रहा षडयंत्र उजागर करता है। प्राकृतिक संसाधनों संपन्न आदिवासी समाज को जब उनको उनकी जमीन-जंगल से बेदखल किया जाता है, उनके अधिकार छीन लेता है, तब वे जंगल को आग लगा देते हैं। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए हर वक्त प्रयास करता है, संघर्ष करता है, आंदोलन छेड़ता है। भूख, गरीबी, बदहाली, अशिक्षा, पलायन, बेरोजगारी, जल, जमीन, जंगल, पानी, हवा प्रदूषण, खनन, बिजली, स्वास्थ्य आदि समस्याओं से पीड़ित आदिवासी समाज आजादी के सत्तर साल बाद भी अपनी बुनियादी समस्याओं से जूझ रहा है। लेखक संजीव का 'पाँवों तले की दूब' उपन्यास शोषण की चिकी में पिसते आदिवासी समाज को उनके अधिकार दिलाने और वह पाँव तले की दूब बनकर जीने वाले समाज को स्वस्थ जीवन दिलाने हेतु प्रयासरत है।

बीज शब्द : आदिवासी, आदिवासी अधिकार, जंगल, आदिवासी प्रथा-परंपरा, राजनीतिक षडयंत्र आदि।

सुप्रसिद्ध उपन्यासकार संजीव का व्यक्तित्व और कृतित्व में सामाजिक, राजनीतिक और संघर्षशील जीवन की एकता नजर आती है। किसान परिवार में जन्मे संजीव कुल्टी में गरीबी और संघर्ष में बीता। वे विज्ञान के छात्र थे मगर उनका रूझान हिंदी साहित्य लेखन की ओर ज्यादा रहा। उन्हें अंग्रेजी, बंगाली, उर्दू, भोजपुरी, अवधि और आदिवासी जनजातियों की बोलियों का ज्ञान था। पत्नी सुख अधिक लाभदायी नहीं रहा और न रचनाओं के लिए उपयोगी। भगतसिंह और मॉडम क्यूरी उनके प्रेरणास्रोत रहे हैं। उनका समग्र जीवन कठिनाइयों में बीता हुआ नजर आता है। मेहनती, ईमानदार, निष्ठावान, स्वाभिमानी, संवेदनशील, जिज्ञासू, अध्ययनशील, अतिथ्यशील और भावुक व्यक्तित्व के धनी संजीव ययावरी प्रवृत्ति के और जनसाधारण से जुड़े रचनाकार है। नक्सलवादी और माक्सवादी विचारों का प्रभाव भी उन पर नजर आता है। उनका कथा-साहित्य मजदूर, नारी, दलित और आदिवासी समाज के शोषण की यथार्थ गाथा चित्रित करता है। उहोंने समाजिक वर्ग भेद और स्त्री-पुरुष असमानता मिटाने का प्रधान कार्य किया है।

लेखक संजीव का 'पाँवों तले की दूब' उपन्यास वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर से सन् 2005 में प्रकाशित है, जो आदिवासी शोषण की गाथा चित्रि त की है। प्रस्तुत उपन्यास में सदियों से रौंदी दूब समान आदिवासी समाज के शोषण एवं आक्रोशभरी दासतां है। झारखंड परिसर के आदिवासियों का व्यवस्था द्वारा दीर्घकाल से हो रहा शोषण, आदिवासी के हक-अधिकार एवं अलग झारखंड की मांगों का आंदोलन और बिचौलियों की तिकड़में आदि का बेबाक बयान यह उपन्यास प्रस्तुत करता है। आदिवासी समाज के उन्नयन की कामना करनेवाला अफसर सदीप्त ऊर्फ सुदामा प्रसाद है, जो एक आंदोलनधर्मी लेखक है। नायक सुदीप्त की आशा-आकांक्षा, स्वीकार-अस्वीकार, आस्था-अनास्था, टूटन-घुटन, द्वंद्व-अंतरद्वंद्व, तान-तणाव, विद्रोह-संघर्ष उपन्यास के पन्ने-पन्ने पर व्याप्त है। वह डोकरी स्थित नेशनल थर्मल पॉवर कॉरपोरेशन (ताप विद्युत प्रतिष्ठान) में इंजीनियर है। स्थानीय लोग उसे बीजली साहब के रूप में जानते हैं। संपन्न परिवार में जन्मे सुदीप्त की माँ बचपन में ही चल बसी। उसे भाई-बहन कोई नहीं था। मजदूर, हलवाहों, चरवाहों और मजुरों के अत्याचार से परेशान सुदीप्त जब मजूरों की पिटाई करते पिता का हाथ पकड़ लेता है तब पिता मजदूरों के साथ बाँधकर पिटते हैं। तब वह बाल-विवाहिता पत्नी को भी मुक्त कर देता है और वह भी घर छोड़ देता है हमेशा के लिए। सुदीप्त में प्रतिभा कूट-कूटकर भरी हुई नजर आती है; जिसमें दृढ़ता का आभाव पाया जाता है। मामी के पैसों से वह खड़गपुर से बी. ई. किया मगर वह अपनी पढ़ाई का उपयोग गौण एवं दलितों की मुक्ति के लिए करता है। उसके लिए नौकरी गौण है और आंदोलन मुख्य।

वस्तुत: उपन्यास की शुरुआत पत्रकार समीर द्वारा सुदीप्त की तलाश के साथ होती है। इसमें उसे सुदीप्त की आत्मकथा और उससे संबंधित अपनी स्मृतियों के जरिए समीर कथानक को आगे बताता है। उपन्यास की कथा आरंभ में समीर खुद कहता है, जो एक 'स्वदेश' पत्रिका का संपादक है। आगे चलकर सुदीप्त की आत्मकथा के माध्यम से कथानक को आगे बढ़ाया जाता है।

दोनों की कथाएँ इतनी घुलमिल जाती है कि उसे एक-दूसरे से अलग करना भी संभव नहीं है। यह कथाएँ एक-दूसरे को अनुपूरक होती है और पैंतरेवार भी। जहाँ-जहाँ सुदीप्त बातों को छिपाने की कोशिश करता है, तोड़ता-मरोड़ता है वहाँ-वहाँ समीर खुद ही आलोचना के माध्यम से कथा को आगे बढ़ा देता है। गीतकार सुदीप्त आदिवासी आंदोलन का सक्रिय कार्यकर्ता था। समीर आदिवासी नेता हंसदा के प्रयोग से उपजे साहस और हिम्मत को सुदीप्त में देखता है, मगर संयोग से सुदीप्त को उसी संस्थान यानी स्थानीय नेशनल थर्मल पॉवर कॉरपोरेशन में इंजीनियर की नौकरी मिल जाती है। इसके लिए भूमि अधिग्रहण की माँग को लेकर विस्थापितों के आंदोलन किया गया; जिसमें वह शामिल था। नौकरी हासिल करने के बावजूद वह नौकरी से अलग नहीं हो पाया। वह आदिवासियों को यह अवगत कराना चाहता था कि उसकी मुक्ति की लड़ाई अन्य गरीब एवं शोषित लड़कों से अलग नहीं है। सुदीप्त आदिवासीयों का डर अपने शब्दों में बयां करता है-"पर अन्याय देखो आदिवासियों को जिनकी जमीन पर यह कारखाने लग रहे हैं, उन्हें टोटली डिप्राइव किया जा रहा है। इस संपत्ति में उनकी भागीदारी तो खत्म की हो जा रही है, उन्हें जमीन से भी बेदखल किया जा रहा है। मुआवजा भी अफसरों के पेट में। वर्षों पहले यहाँ टोकरी और मकरा नाम के दो गाँव हुआ करते थे। किसी ने फूँक मारकर उड़ा दिया था उन्हें। कहाँ गए वे विस्थापित लोग।" जिनकी जमीन पर कारखाने लगे हैं अफसर उन आदिवासियों को मुआवजा नहीं देते जबकि ऊपर से उन्हें उनकी जमीन से बेदखल किया जाता है।

सुदीप्प को एक ऐसी विवशता आ जाती है कि वह अज्ञातवास में चला जाता है। वह मेझिया गाँव में बहुत-कुछ सुधार करता रहता है, मगर वहाँ की पुलिस एवं अफसर आदिवासी जन-जागृति के खिलाफ है। वहाँ की राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टियाँ हैं, जो केवल दिखावामात्र करती है। जनता को गुमराह कर देती है। ऐसी स्थिति में सुदीप्त का प्रयास सबसे अलग दिखाई देता है। वह प्लॉट के आसपास के गाँवों का अध्ययन करता है और प्रदूषण रोकने, बिजली आपूर्ति करने, सड़के बनाने, स्थानीय लोगों को रोजगार दिलाने, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं सफाई की समस्या से निजात पाने का सुझाव सबके सामने रखता है। मगर तत्काल उसे थर्मल पॉवर प्लॉट की आधुनिक तकनीक का अध्ययन करने जर्मनी भेज दिया जाता है।

जर्मनी से वापस आते ही सुदीप्त को कुछ बुरी खबरे मिल जाती है। आंदोलन का जनप्रतिनिधि फिलीप आग में झुलकर मर जाता है और आंदोलन का नेतृत्व लंपट और गैरकानूनी धंधे करने वालों के हाथों चला जाता है। इसके विरोध में फिलीप आवाज उठाता है। औद्योगिकीकरण के कारण आदिवासीयों के जंगल, खेत, जल, संस्कृति प्रदूषित हो रहे हैं, जिसके कारण आदिवासी स्त्री-पुरुष लुले-लंगडे एवं लकवे की बीमारी का शिकार हो जाते हैं। सुदीप्त के अनुसार-"कई लड़के-लड़कियाँ और बूढ़े-लकवे के मारे से दिख रहे हैं और उस पर स्याह चहरों की भयावनी उजली आँखें भरी दोहरी में मुझे प्रेतों और डायनों का साया मँडराने लगा।" सरकार, राजनेता और अफसर की मिलीभगत से लगाए गए कारखानों से आदिवासीयों को प्रदूषण का सामना करना पड़ रहा है। घातक रसायनों का उत्सर्जन उन्हें अपाहिज बना देता है। कल-कारखाने आदिवासी समाज के लिए खतरा साबित हो रहा है। हालाँकि आदिवासी जमीन एवं जंगल के मालिक है। यह संपत्ति उनकी होने के बावजूद आदिवासी लोग कंगाल बन रहे हैं। जब फिलीप इस व्यवस्था का विरोध करने हेतु शालीबानी के जंगल को आग देता है और सुदीप्त उसे रोकने का प्रयास करता है तब फिलीप कहता है-"यह धरती, हमारी धरती सोना उगलती है और इस सोने की धरती की हम कंगाल संतान है।" फिलीप का उक्त कथन आदिवासी समाज का वास्तव बयां करता है। आदिवासी समाज का वास्तव इतना दर्दनाक है कि उन्हें रोटी, कपड़ा और मकान जैसे बुनियादी सुविधा भी नहीं मिलती। इस संदर्भ में मेझिया को देखकर समीर कहता है-"वे इतने गरीब थे कि कपड़े के नाम पर चिथड़े का कच्चा पहने हुए थे, पुट्टे तक खुले हुए, औरतों को जैसे-जैसे बदन ढकने को मिलता है कपड़ा। बच्चे कंगाल जैसे।" इससे साफ जाहीर होता है कि आदिवासी समाज कंगाल हो गया है न उन्हें तन ढँकने को कपड़ा मिल रहा है और न रहने के लिए घर और न खाने के लिए अनाज। आजीविका चलाने के लिए बुनियादी जरूरतों की पूर्ति करना भी आदिवासी समाज को आज संभव नहीं हो रहा है।

आदिवासी समाज का खुला स्वभाव भी उनके शोषण के लिए जिम्मेदार दिखाई देता है। जंगल के सिपाही भी आदिवासी स्त्रियों का लैंगिक शोषण करते हैं। सरकारी अफसर वन विभाग की पुलिस में माझो सुदीप्त को अपने गाँव की स्त्रियों पर हो रहे अत्याचारों के संदर्भ में अवगत कराता है-"जाने तो सिरिफ जंगल का सिपाही ही नहीं अब तो भरदीवाल सुक्खु सिंह का आदमी भी आता है और गाँव की लड़की लोगों को फुसलाता है।" उक्त कथन आदिवासी नारी के शोषण की दासतां अभिव्यक्त करता है। झारखंड मुक्ति आंदोलन और स्वतंत्र राज्य निर्माण में आंदोलकारी असली शत्रु को पहचान नहीं पाते। इसी वजह से आंदोलकारी भ्रष्ट अफसरों, (आदिवासी और दिकू दोनों) ठेकेदारों, सप्लायरों को निशाना नहीं बनाते। वस्तुत: आदिवासी नारी जीवन को डायन प्रथा यह एक अभिशाप माना जाता है। डायन के नाम पर ओझा किसी भी स्त्री का आर्थिक शोषण करते हैं। बाँझ औरत को गाँव में बीमारी फैलाने और पशुओं की मृत्यु का जिम्मेदार ठहराकर डायन करार दिया जाता है। प्रस्तुत उपन्यास का धर्मगुरु ओझा गाँव की औरत मंगरी को डायन करार देता है। पत्थर से मारकर मंगरी की हत्या कर दी जाती है। पंडित इस घटना की सच्चाई को सुदीप्त को

अवगत करा देता है-"ओझा ने ही इस औरत को डायन कहकर उकसाया था तीन सौ रुपये और एक बकरे की माँग कर रहा था।" दुर्गम स्थानों का निवास, अर्थाभाव, अंधविश्वास, अज्ञान के कारण आदिवासी समाज का विभिन्न प्रथा-परंपरा के नाम पर धर्मगुरु उनका शोषण करते हैं। जब सुदीप्त एक बार डायन की हत्या की छानबीन करने मेझिया जाते हैं तब किस्कू ने अपनी माँ के साथ अवैध संबंध का आरोप लगाते हुए कनपटी पर पत्थर मारकर घायल कर देता है। तब से वह यह तय कर देता है कि किस्कू को वह सभ्य इन्सान बनाएगा, मगर वह उसमें वह असफल हो जाता है। आंदोलनकारियों का घेराव फाँस बनकर उसके गले के इर्द-गिर्द अंदर-बाहर कसा रहता है। यह घेराव लफ्फाज और टुच्ची साहित्यिक सभाओं, मीडियाकार, साहित्यकार, सोडावाटरी भाषणों से भरी राजनीतिक सभाओं, गेंडे की खाल सी अफसरी कल्ट, साँपों से विषैले-चिकने-लिजलिजे पर चौकन्ने ठेकेदार और भ्रष्ट यूनियन नेताओं, थोड़े-थोड़े तात्कालिक लाभों से बहकती वंचित जनों की मासिकताओं का है। इसमें हंसदा, मनीष, विजय, फिलीप, सिंन्हा साहब, उज्ज्वल राय, कालिचरण किस्कू, गोपाल, शीला जैसे अविस्मरणीय पात्र हैं, जो सुदीप्त को पांवों तले दूब बनने के लिए विवश कर देते हैं। सुदीप्त भी आखिरकार व्यवस्था और समाज से हारकर आत्महत्या कर आदिवासी की तरह पाँवों तले की दूब बन जाता है। "वर्षो से मैं एक ही कहानी लिख रहा था, मगर जब कहानी जीने और लिखने का फर्क किए जाए तो उसकी चुनौती सामने आती है। मुझे स्वीकारने में शर्म नहीं की मैं एक चरित्र तक खड़ा न कर सका। न कालीचरण किस्कू, न गोपाल, हँसदा, सुखमय बाबू, मनीष, फिलिप शीला भी नहीं।" स्पष्ट है कि सुदीप्त न लेखक बन गया और न सामाजिक परिवर्तन कर सका। अंतत: वह अपनी नौकरी का इस्तीफा देता है। शीला प्रसंग की विद्रूपता, साथियों द्वारा की गई उपेक्षा, धमकियाँ, गालियों से त्रस्त, असाध्य मानसिक व्याधि से ग्रस्त सुदीप्त की पाँवों तले की ईंट खिसक जाती है और वह चेतन से अवचेतन तक छींजता हुआ अहरह भटकता शून्य में विलिन हो जाता है। उसकी जिंदगी चोरों की ओर पानी होने के बावजूद उसकी जिंदगी एक जलता जहाज होकर रह गई। वह अपनों के लिए संकल्पित थी मगर वह अपने को सँभल पाई, न अपनों को। वह न कभी सफल लेखक बनता है और न सफल अफसर।

निष्कर्ष:

कहा जा सकता है कि 'पाँवों तले की दूब' शीर्षक अपने आप में एक उपन्यास की पूरी कहानी बयां करने का प्रयास करता है। पाँवों तले की दूब को कितना भी खाद-पानी दिया जाए, मगर वह अपना विस्तार नहीं कर पाती और कुपोषित ही रहती है। लोग अपनी सुविधा की खातिर उसका उपयोग करते हैं और उसे कुचलता रहता है। प्राकृतिक संसाधनों संपन्न आदिवासी समाज का विकास नहीं हो पाता क्योंकि वे उस दूब के समान है जिसे हमेशा पैरों तले रौंदा जाता है। वह अपने अस्तित्व की रक्षा नहीं कर पाता जिसके लिए वह हमेशा संघर्षशील रहता है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक संजीव ने भूख, गरीबी, बदहाली, अशिक्षा, पलायन, बेरोजगारी, जल, जमीन, जंगल, पानी, हवा प्रदूषण, खनन, बिजली, स्वास्थ्य आदि समस्याओं से पीड़ित आदिवासी जन हमेशा शोषण की चिकी में पिसते रहते हैं जिसे न ऊपर आने दिया जाता है न वह खुद ऊपर आती है। वह वैसी ही रहती है जैसे पाँवों तले की दूब!

संदर्भ ग्रंथ

1. संजीव - पाँव तले की दूब, वाग्देवी प्रकाशन, विनायक शिखर, पॉलिटेक्नीक कॉलेज के पास, बीकानेर, 334003, पुनर्मुद्रण संस्करण: 2016, पृ.-28)
2. वही, पृष्ठ-21
3. वही, पृष्ठ-21
4. वही, पृष्ठ-15
5. वही, पृष्ठ-77
6. वही, पृष्ठ-33

आदिवासियों की दमित दासताँ : 'आदिवासी नहीं नाचेंगे'

डॉ. प्रवीणकुमार न. चौगुले
सहयोगी प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
श्रीमती कस्तुरबाई वालचंद
कॉलेज ऑफ आर्टस् ॲण्ड सायन्स, सांगली
मो. नं. - 9881814116
ई-मेल : pravinkumarc@yahoo.com

शोध-सारांश-

'आदिवासी नहीं नाचेंगे' कहानी-संग्रह कहानियाँ झारखण्ड की पृष्ठभूमि पर लिखी गई हैं। ज्यादातर कहानियों में आदिवासियों की जिंदगी की दुर्दशा का चित्रण उन्होंने किया है। मूल संथाल परगने से संबंधित होने के कारण कहानीकार हाँसदा सौभेन्द्र शेखर ने संथाल आदिवासियों के दमन की दासताँ को बेहद गहराई एवं तीव्र संवेदनशीलता के साथ इन कहानियों में प्रस्तुत किया है। वर्णनात्मकता, प्रकृति-चित्रण, पात्रों की मनोवैज्ञानिकता, प्रभावान्विति, बेहतरीन शब्द-चयन आदि इन कहानियों की विशेषताएँ हैं। आदिवासियों की विवशता एवं मजबूरी का फायदा उठाकर अपने-आप को मुख्य धारा का, सभ्य कहलानेवाला समाज किस प्रकार से उनका दमन कर रहा है, इसका बेहद वास्तविक चित्रण 'आदिवासी नहीं नाचेंगे' कहानी करती है। संगीत, नृत्य, गीत संथालों के लिए पवित्र हैं, लेकिन भूख और गरीबी ने उसे बेचने के लिए संथालों को मजबूर किया है। दिकुओं का दमन एवं घर तथा जमीन के लिए संघर्ष करने की आदिवासियों की विवशता को कहानी उजागर करती है। 'प्रवास का महीना', 'दुश्मन के साथ दोस्ती' तथा 'सिर्फ एक रंडी' कहानियाँ संथाल आदिवासी औरतें एवं लडकियों पर ढ़ाए जानेवाले अकथनीय यौन-शोषण, दर्द एवं प्रताडना को उजागर करती हैं। तालामाई किस्कू, सुलोचना, मोहिनी, माथाभाँगी तथा सोना ये सभी इस बेहद घिनौने यौन-शोषण एवं प्रताडना की शिकार बनती हैं। एक आदिवासी स्त्री, जो ताउम्र संघर्ष करती है, उसके ही बेटों द्वारा अन्याय की दर्दनाक दासताँ को 'बासो-झी' कहानी बेहतरीन ढ़ंग से बयान करती है। ईसाईयों द्वारा संथाल लड़कियों को बेचा जाना तथा कितने ही लड़कों को झूठे आरोपों में फँसाए जाने की समस्या को 'हिसाब बराबर' कहानी उजागर करती है। कुल मिलाकर विवशता के शिकंजे में घिरे आदिवासी समाज का मुख्य प्रवाह के समाज के दमन तले घुटते जाना और साथ ही उनके द्वारा ढ़ाए गए यौन-शोषण एवं प्रताडना में पिसती आदिवासी स्त्री की दुर्दम्य पीड़ा को इस कहानी-संग्रह की कहानियाँ बेहद दयनीयता एवं संवेदनशीलता के साथ उजागर करती हैं।

बीज-शब्द - संथाल आदिवासी, दिकू, दमन, घुटन, संघर्ष, यौन-शोषण एवं प्रताडना।

प्रस्तावना –

सदियों से हाशिए पर रखा आदिवासी समाज बदतर जिंदगी जीता आया है। शोषण, अत्याचार, पीड़ा, हीनता, घृणा, विस्थापन आदि समस्याओं से ग्रस्त यह समाज अब अपने हक एवं अधिकारों की जागृति की कगार पर खड़ा है। सशक्त आंदोलन के रूप में आदिवासी साहित्य का सृजन हो रहा है। दलित एवं स्त्री विमर्श की तरह ही आदिवासी विमर्श के विभिन्न आयामों पर सोच-विचार होने की आवश्यकता है। वर्तमान आदिवासी साहित्यकार अपने जीवन के कटु यथार्थ अनुभूतियों को लेकर सामने आ रहे हैं, जिनमें हाँसदा सौभेन्द्र शेखर अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। वे पेशे से डॉक्टर एवं तबियत से लेखक हैं। उन्होंने अब तक कुल चार किताबें लिखी हैं। उनके पहले उपन्यास 'द मिस्टीरियस एलेमेंट ऑफ रूपी बास्के' के लिए उन्हें साहित्य अकादमी युवा पुरस्कार 2015 से सम्मानित किया गया। कहानी-संग्रह 'द आदिवासी विल नॉट डान्स' के हिंदी अनुवाद 'आदिवासी नहीं नाचेंगे' को भी खूब सराहना मिली है। बच्चों के लिए उन्होंने 'ज्वाला कुमार एण्ड द गिफ्ट ऑफ फायर : एडवेंचर्स इन चम्पकबाग' लिखी है। साथ ही 'माई फादर्स गार्डेन' यह उनकी ताजा किताब है।

'आदिवासी नहीं नाचेंगे' साहित्य अकादमी युवा पुरस्कार 2015 से सम्मानित हाँसदा सौभेन्द्र शेखर जी की सन 2016 में प्रकाशित कथा-संग्रह 'द आदिवासी विल नॉट डान्स' का हिंदी अनुवाद है। प्रस्तुत कथा-संग्रह का अनुवाद रश्मि भारद्वाज जी ने किया है और जो राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली द्वारा प्रकाशित है। इस कथा-संग्रह में कुल 10 कथाएँ समाविष्ट हैं। ये कहानियाँ झारखण्ड की पृष्ठभूमि पर लिखी गई हैं, जो वर्तमान राजनीतिक-सामाजिक यथार्थ को बेहद गहराई एवं संवेदनशीलता से खोलकर जन-सम्मुख रखती हैं। प्रस्तुत कहानी-संग्रह कुछ इस कदर के विवादों से घिर गया था - ''11 अगस्त 2017 को झारखंड सरकार ने इसपर प्रतिबंध लगा दिया और लेखक को उनकी नौकरी से सरसरी तौर पर निलंबित कर दिया, इस आधार पर कि पुस्तक ने आदिवासी महिलाओं और संथाल संस्कृति को खराब रोशनी में चित्रित किया है। सरकार के कार्यों की व्यापक रूप से आलोचना

की गई। और प्रस्तुत कहानी-संग्रह पर से प्रतिबंध दिसंबर 2017 में हटा दिया गया। साथ ही लेखक का निलंबन भी हटा दिया गया और उन्हें 2018 में उनकी नौकरी पर बहाल कर दिया गया था।1

आदिवासी कहानियों में आदिवासी दर्शन एवं शोषण के बारे में तथा एक आदिवासी रचनाकार की जिम्मेदारी के संदर्भ में वरिष्ठ साहित्यकार गंगा सहाय मीणा जी का कथन है, ''मैंने जितनी भी आदिवासी कहानियाँ पढ़ी हैं उन कथाओं में आदिवासी दर्शन, उनका जो बाहरी लोगों के साथ संबंध है, उसके संदर्भ में दिखाई देता है। खास तौर पर आप बाहरी लोगों में दिकुओं को, जो आदिवासी इलाकों में नौकरी करने आते हैं, व्यवसाय करने आते हैं, उनको ले सकते हैं, पुलिस-प्रशासन को ले सकते हैं या फिर वे सत्ता-शासन के लोग हैं। उनके साथ में जो आदिवासी जीवन का टसल है वह द्वंद्व स्पष्ट रूप से सामने आता है। जब हम आदिवासी चेतना और दर्शन की बात कर रहे हैं तो एक रचनाकार को इतना सजग होना पड़ता है या होना ही चाहिए कि जो बाहरी प्रभाव है, बाहरी दखल है आदिवासी जीवन-दर्शन पर, वह उसकी पहचान कर पाए और पाठकों को उसकी पहचान करा पाए। किस रूप में बाहरी लोगों का दखल होता है। शोषण के अलग-अलग और कैसे-कैसे हथकंडे अपनाते हैं बाहरी लोग। वे आर्थिक शोषण करते हैं। दैहिक शोषण करते हैं आदिवासी औरतों का। इसके अलावा शोषण की एक दूसरी प्रक्रिया है जो सांस्कृतिक है। उसकी भी पहचान आदिवासी लेखकों को करनी चाहिए।...''2 और निश्चय ही हाँसदा सौभेन्द्र शेखर जी ने अपनी कहानियों में काफी हद तक इन बातों की ओर ध्यान दिया हुआ दिखाई देता है। मूल संथाल परगने से संबंधित होने के कारण कहानीकार ने संथाल आदिवासियों के दमन की दासताँ को बेहद तीव्र संवेदनशीलता के साथ इन कहानियों में प्रस्तुत किया है।

आदिवासियों की दमन दासताँ -

1. विवशता के शिकंजे एवं मुख्य धारा के समाज का दमन -

जीवन के हर क्षेत्र में पीछड़ेपन के शिकार आदिवासियों की स्थिति किस हद तक भीषण बनी हुई है, उनकी विवशता एवं मजबूरी का फायदा उठाकर अपने-आप को मुख्य धारा का, सभ्य कहलानेवाला समाज किस प्रकार से उनका दमन कर रहा है, इसका बेहद वास्तविक चित्रण 'आदिवासी नहीं नाचेंगे' कहानी करती है। मटियाजोरे गाँव के एक संथाल आदिवासी मंगल मुर्मू जो मूलतः एक किसान और संगीतकार हैं, अपनी मूर्खता पर शोक जता रहा है। इस गाँव के अधिकांश खेत खदान कंपनी द्वारा काबिज किए जाते हैं। संथाल युवाओं द्वारा इसका विरोध भी किया जाता है, लेकिन किरिस्तान बहन और संथाल लड़के दोनों को कोयला कंपनी द्वारा रास्ते से हटाने का गंदा षड़.यंत्र किया जाता है। कोयला व्यापारियों ने इनके जमीन का एक हिस्सा तो दुसरे हिस्से पर पत्थर के व्यापारियों ने काबिज कर लिए हैं। ये सभी व्यापारी दिकू यानी मारवाडी, सिंधी, मंडल, भगत, मुस्लिम हैं। सारी सुविधाएँ ये भोगते हैं और इसके बदले में आदिवासी संथालों को कुछ भी नहीं मिलता, उनके हालात बेहद दयनीय बने रहते हैं। सरकारी तथा मिशनरी स्कूल की गंदी नीतियाँ तथा मुस्लिमों के अनाचार का चित्रण भी कहानी बयान करती है। शक्तिहीन एवं संख्या में कम होने के कारण कुछ न कर सकने की उनकी विवंचना कहानी में प्रकट होती है। उनका मूल धर्म - सरना धर्म... उसका अस्तित्व, जड़ें खोने की कगार पर है और जिसका कोई देश, पहचान नहीं ऐसे लोग बनते जा रहे हैं। कोयले से मानो उनका समूचा जीवन ही काला, अंधियारा हो गया है, यह कोयला ही उनको निगलने को है। 'जोल्हा टोला' आश्रय के लिए आया था, लेकिन वह अब इनसे भी अधिक अच्छा खासा प्रगत हो गया है, यहाँ जम गया है। संथालों में एकता नहीं है, इनका कोई नेता नहीं है, कितनेही अत्याचारों के बावजूद इनको कोई पूछता तक नहीं है। यह सारी संपदा उन्हीं की होने के बावजूद उन्हें नहीं पता की उसे कैसे बचाना है, वे इससे भाग रहे हैं।

दिकू, बिहारी और सभी ने संथाल परगना को अपने लाभ के लिए बाँटा है। मंगल मुर्मू की दिल की विवंचना है कि हमारी कला ने हमें क्या दिया है - विस्थापन और तपेदिक। इस कहानी में साठ साल से भी अधिक बूढ़े संथाल के दर्द को बयान किया गया है, जो आज भी कला के पक्ष में जीता है, जिसने दल बनाना जारी रखा है, जो अब भी प्रदर्शन करता है। संगीत, नृत्य, गीत संथालों के लिए पवित्र हैं, लेकिन भूख और गरीबी ने उसे बेचने के लिए संथालों को मजबूर किया है। सारे लाभों के लिए, स्वार्थ के लिए दिकू, लेकिन झारखंड का संस्कृति प्रदर्शन, संगीत, नृत्य का दायित्व अकेले आदिवासियों पर रहता है, यह कैसी विवंचना है?

झारखंड सरकार द्वारा आयोजित कार्यक्रम में संगीतमय प्रदर्शन में दल को लिए हिस्सा लेने में मंगल मुर्मू प्रयासरत है। इतने में उसकी बेटी मुगली जो गोड्डा जिले में स्थित है, वहाँ के गाँव-निवासियों को जमीन खाली करने का निर्देश होता है, लड़ाई होती है। वहाँ एक व्यवसायी द्वारा, जो बहुत ही अमीर, चालाक एवं सांसद है, थर्मल पावर संयंत्र बिठाने की बात की जाती है। इतने में उन्नति की आड़ में बसा सच सामने आ जाता है। संयंत्र की नींव राष्ट्रपति द्वारा रखी जाती है और यह प्रदर्शन उनके लिए होता है। एकसाथ दुःख, आश्चर्य एवं आनंद की अनुभूति को पाते संथाल आदिवासियों के मन में दर्द ही छाया रहता है। दिल की विवंचना तथा भड़ास को खोलते हुए, कटु सच का पर्दाफाश करते हुए कोई चिल्लाता है, '''भारत महान'... क्या महान! मैं हैरान हुआ, ऐसे कौन-सा देश महान हो सकता है जो हजारों लागों को उनके घरों से बेघर करके, उनकी रोजी-रोटी छीनकर शहरों और फैक्टरियों के

लिए बिजली उत्पन्न करे। और नौकरियाँ, कौन-सी नौकरियाँ? एक आदिवासी किसान का काम खेती करना है। और कौन-सा काम करने के लिए उसे बाध्य किया जाएगा? किसी अरबपति की फैक्ट्री में नौकर बन जाना, जो फैक्ट्री उसी जमीन पर थी जो - एक हफ्ता पहले उसी आदिवासी की थी...?''3 और अंत में राष्ट्रपति महोदय के सामने मजबूर दिल की गुहार होती है कि जब तक हमें हमारा घर और जमीन वापस नहीं दी जाएगी, हम नहीं नाचेंगे... 'आदिवासी नहीं नाचेंगे'।

2. यौन-शोषण एवं प्रताडना -

आदिवासी महिलाओं के जीवन यथार्थ के विषय में 'झारखंडी महिलाओं का पलायन एवं उनका शोषण' में निर्मला जी लिखती हैं - "आदिवासी महिलाएँ जिनके पास भूख है, भूख में दूर तक पसरी उबड़-खाबड़ धरती है, सपने हैं, सपनों से दूर तक पीछा करती अधूरी इच्छाएँ हैं, जिसकी लिजलिजी दीवारों पर पाँव रखकर वे भागती हैं, बेतहाशा, कभी पूरब तो कभी पश्चिम की ओर....।"4 इस पितृसत्ताक समाज में एक आदिवासी स्त्री मरने-खपने के बावजूद अपना हक भी नहीं जता सकती है। 'प्रवास का महीना' कहानी संथाल आदिवासी औरतें एवं लडकियों पर ढ़ाए जानेवाले अकथनीय यौन-शोषण एवं प्रताडना को उजागर करती है। मजबूरी के कारण संथाल आदिवासियों को वर्धमान जिले में प्रवास करना पड़ता है। कई संथाल औरतें और लड़कियाँ मजबूरी में, भोजन और थोड़े से पैसों के लिए वेश्या व्यवसाय करने के लिए विवश हो जाती हैं। इस दमनचक्र का शिकार तालामाई किस्कू भी है, जो क्रूर पुलिसवाले के संभोग का शिकार बनती है। पूरी मानव सभ्यता पर तमाचा जड़ता, संभोग करता पुलिसवाला जब कहता है, ''साली, तुम संथाल औरतें सिर्फ इस काम के लिए ही बनी हो। तुम अच्छी हो।''5 इंसानियत के नाम पर एक जोरदार तमाचा है। इस पूरी कहानी में भूख एवं विवशता के दयनीय चित्रण के साथ आदिवासी स्त्री यौन-शोषण का दर्दनाक चित्रण दिखाई देता है। 'दुश्मन के साथ दोस्ती' कहानी में भी सुलोचना, मोहिनी तथा माथाभाँगी के शोषण को दर्ज किया गया है। बेहरा घासी जाति की हरिजन स्त्री सुलोचना की पीड़ा के साथ उसके पति दीनानाथ एवं उसकी रखैल मोहिनी के यौन-संबंधों को बेबाकी एवं नग्न यथार्थता के साथ कहानी बयान करती है। कहानी में बाबू इस पात्र के गाली-गलौज के साथ कामोत्तेजना के नग्न चित्र खींचे गए हैं, जो बाबू काफी हद तक सेक्स का व्यसनी है। बाबू द्वारा माथाभाँगी पर किया गया यौन-शोषण दिल देहला देता है। इसी प्रकार से यौन-शोषण एवं प्रताडना को कई प्रसंगों में कहानी उजागर करती है।

लक्खीपुर की सोना के माध्यम से 'सिर्फ एक रंडी' कहानी द्वारा रेड-लाईट एरिया की कडुवी सच्चाई का पर्दाफाश किया गया है। सोना अपने हर ग्राहक को खुश कर देती है, इसलिए ग्राहक हमेशा झरना-दी के पास उसकी ही माँग करते हैं, मानो रंडी होकर भी अन्य रंडियों से उसका अलगाव साफ जाहीर होता है, जब ग्राहक कहते हैं - 'सोना... सोना है... बाकी सब रंडियाँ'। सोना युवा ट्रांसपोर्टर निर्मल के प्रति धीरे-धीरे आसक्त होती चली जाती है और उसके साथ जीवन के सपने देखती है, लेकिन यह सपना झट से टूट जाता है। वह उसके गुप्तांग पर जोर से प्रहार करते हुए जबरन उसका अप्राकृतिक यौन-शोषण करता है, जो बेहद घिनौना होता है। अपमान एवं प्रताडना के झटके से वह सदमे में आ जाती है। हर ग्राहक के लिए बाजार की हर रंडी आखिर एक रंडी ही होती है, वह रंडी भले ही घर बसाने के सपने देखे, लेकिन उसकी यह ख्वाईश आखिर ख्वाईश ही बनकर रह जाती है, इस सच्चाई को कहानी भलि-भाँति प्रस्तुत करती है।

3. आदिवासी स्त्री की दुर्दम्य पीड़ा -

एक आदिवासी स्त्री, जो ताउम्र संघर्ष करती है, उसके ही बेटों द्वारा अन्याय की दर्दनाक दासताँ को 'बासो-झी' कहानी बेहतरीन ढ़ंग से बयान करती है। आदिवासी संस्कृति के विलुप्ति की समस्या को भी कहानी उजागर करती है। सारजोमडीह गाँव में बासो-झी बच्चों को 'बिडू', जो एक संथाली वीर-नायक हैं, उनकी कहानी सुनाती है। वह पूरी अच्छाई की मूरत है, लेकिन लोगों के अंधविश्वास के कारण उसकी दशा दयनीय हो जाती है। उसके छोटे बेटे का लड़का डायरिया से चल बसता है और उसे उसकी मौत का जिम्मेदार ठहराया जाता है। अपने ही बच्चों द्वारा डायन बुलाकर अपमान एवं अनाचार के घिनौने रूप को कहानी प्रस्तुत करती है -''उसके बेटे ने पूछा, ''किस बुरी शक्ति की तुम पूजा करती हो, और तुम्हें बलि के लिए कितने बच्चे चाहिए?''... उनके बेटे - उनके अपने बेटे! - उन्हें एक डायन बुला रहे थे? उन्होंने बहुत ही असहाय महसूस किया, तब से भी ज्यादा जब वह विधवा हुई थीं।''6 आखिर लाचार और मजबूर होकर सोरेन बाबू और पुष्पा के घर से भी निकलकर दर-दर के ठोकरे खाने के लिए वह विवश हो जाती है।

'सिर्फ एक रंडी' की सोना भी भीषण आघात को सहने के लिए विवश हो जाती है। सोना सही मायने में रेड लाईट एरिया की सोना होती है। अपने पेशे को बेहतरीन ढ़ंग से निभाने के कारण ग्राहक उसके प्रति बेहद आसक्त होते हैं। नंदू के कारण झरना-दी के यहाँ सोना और निर्मल की पहचान होती है। अक्सर आने-जाने के कारण सोना निर्मल को चाहने लगती है और उसके साथ के सपने देखने लगती है। लेकिन यह सपना झट से टूट जाता है और एक गहरे सदमे में वह अपने पेशे में उसी प्रकार से जीने के लिए मजबूर हो जाती है। हालाँकि झरना-दी इस कटु यथार्थ से भलि-भाँति वाकिफ है, इसलिए वह बार-बार सोना को सचेत करती रहती

है, ''अपने काम पर ध्यान दो। जिंदगी हमें पाठ पढ़ाती है। उन पाठों को पढ़ों और आगे बढ़ जाओ।''7 हर ग्राहक के लिए बाजार की रंडी आखिर एक रंडी होती है, वह उसके साथ घर नहीं बसा सकता, इस सच्चाई को कहानी भलि-भाँति प्रस्तुत करती है। इसी प्रकार 'दुश्मन के साथ दोस्ती' कहानी सुलोचना एवं मोहिनी के जीवन के दुःखद यथार्थ को बयान करती है और वे किस हद तक उसी परिवेश में कितने ही दुःखों के बावजूद उन्हें भोगने, सहलाने या लालच देने के बाद 'मूर्खता' में रहने के आदि हो गए हैं, इस सच को यह लंबी कहानी बयान करती है।

आदिवासी स्त्री पशुओं से भी बदतर जीवन जीने के लिए ववश है। बेफिक्र होकर उसकी देह का घृणास्पद व्यापार किया जाता है, जैसे वह कोई पशु या खरीदने-बेचने की निर्जीव वस्तु हो। बेहद घिनौने ढ़ंग से मनचाहा उपभोग लेकर उन्हें अपमानित कर फेंका जाता है। 13 जनवरी 2012 की घटना जारवा आदिवासी महिलाओं को विदेशी पर्यटकों के सम्मुख नाचने के लिए मजबूर किया गया तथा उनकी अर्धनग्न तस्वीरें इंटरनेट पर अपलोड की गई। व्यापारी आदिवासी लड़कियों को बहला फुसलाकर भगा ले जाते हैं और उन्हें देह व्यापार हेतु झोंक दिया जाता है। आमतौर पर नाबालिग तथा गरीब परिवारों की लड़कियों को अपना शिकार बनाकर तस्कर सम्पन्न राज्यों में बेच देते हैं। झारखंड, असम, पश्चिम बंगाल जैसे पिछड़े राज्यों की गरीब लड़कियाँ गाय-बैल से भी कम कीमत पर बिक जाती है। सरकारी और गैर-सरकारी सूत्रों के मुताबिक हरियाणा और पंजाब जैसे राज्यों में गरीब खासकर आदिवासी लड़कियों की कीमत 5 हजार से 15 हजार रुपये तक है।8 ईसाईयों द्वारा संथाल लड़कियों को बेचा जाना तथा कितने ही लड़कों को झूठे आरोपों में फँसाए जाने की समस्या को 'हिसाब बराबर' कहानी उजागर करती है। प्रेमी दिलीप को पाने की हद को पार करती गीता के दोलायमान जीवन की उथल-पुथल को 'ब्लू बेबी' कहानी प्रस्तुत करती है। बेईंतहा प्रेम और दगाबाज प्रेमी के प्रति की आसक्ति, उसकी राह तकना, शादी के बाद भी उसके बच्चे को लेकर उसकी आस आदि को कहानी चित्रित करती है। बल्कि पति सुरेन गीता से बेहद प्यार करनेवाला है, हालाँकि अंत में दिलीप और उसके बच्चे को भी गीता द्वारा त्यागा जाता है। 'अंतिम इच्छा' में एक बच्चे कुनु की जलेबियों की अंतिम इच्छा और संघर्षरत माँ सुभाषिणी की असहायता का बखूबी चित्रण हुआ है।

4. मुख्य प्रवाह के समाज के दमन तले घुटता आदिवासी समाज -

अपने-आप को सभ्य तथा मुख्य प्रवाह में गिने जाने वाले समाज में संथाली आदिवासी परिवार की घुटन को 'वे मांस खाते हैं' कहानी प्रकाशित करती है। मांस खाने के आदिन परिवार की बगैर मांस के जीने की स्थिति, फिर झापान-दी के यहाँ अक्सर मांस खाने जाना तथा रहने के लिए विवश अवस्था में पूरे परिवार एवं राव परिवार की मानसिक दशा का अंकन कहानी करती है। गोदरा हत्याकांड के दंगों के भयावह नतीजों में मुस्लिम बेसहारा औरतों के पक्ष में लड़ने की मानवीयता के दर्शन भी कहानी की एक बड़ी विशेषता है। 'बेटे' एक परिवार के रिश्ते-संबंधों, संस्कारों, नीति-मूल्यों के उतार-चढ़ाव की अनूठी कहानी है। सूरज और रघू दो संस्कारों में पले-बढ़े बेटों की कथा को कहानी बयान करती है। लेकिन भ्रष्टाचार, गबन को लेकर आदिवासी मन की अनूठी सच्चाई को कहानी कुछ इस प्रकार से बयान करती है, ''देखो, जवाई बाबू, मत भूलो कि हम आदिवासी चोरी करने में बहुत ही नासमझ हैं। भ्रष्टाचार हमारे खून में नहीं है। और तब भी अगर हम कोई अपराध करते हैं, तो हम उसे छुपाने के मामले में बहुत ही नौसिखिए हैं।...''9 समूचे आदिवासी जन-जीवन के साफ मन की सच्चाई का प्रकाशन इस वाक्य से होता है। साथ ही 'प्रवास का महीना' में पुलिसवाले के द्वारा तालामाई किस्कू पर किया गया अत्याचार, 'हिसाब बराबर' में ईसाईयों द्वारा संथाल लड़कियों को बेचा जाना तथा कई लड़कों को झूठे आरोपों में फसाए जाने की विवंचना को प्रकाशित किया गया है। 'दुश्मन के साथ दोस्ती' में मुख्य प्रवाह के समाज का अमीर एवं सेक्स का व्यसनी बाबू मोहिनी एवं माथाभाँगी का अकथनीय शोषण हो या 'सिर्फ एक रंडी' के निर्मल तथा नंदू द्वारा सोना पर किए गए अत्याचार हो, आदिवासियों पर मुख्य प्रवाह के समाज का शोषण-चक्र निरंतर चलता ही जा रहा है।

निष्कर्ष –

वर्तमान आदिवासी साहित्यकार अपने जीवन के कटु यथार्थ अनुभूतियों को लेकर सामने आ रहे हैं, जिनमें हाँसदा सौभेन्द्र शेखर अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। 'आदिवासी नहीं नाचेंगे' कहानी-संग्रह कहानियाँ झारखण्ड की पृष्ठभूमि पर लिखी गई हैं, जो वर्तमान राजनीतिक-सामाजिक यथार्थ को बेहद गहराई एवं संवेदनशीलता से खोलकर जन-सम्मुख रखती हैं। ज्यादातर मार्मिक बन पड़ी कहानियों में आदिवासियों की जिंदगी की दुर्दशा का चित्रण उन्होंने किया है। मूल संथाल परगने से संबंधित होने के कारण कहानीकार ने संथाल आदिवासियों के दमन की दासताँ को बेहद तीव्र संवेदनशीलता के साथ इन कहानियों में प्रस्तुत किया है। वर्णनात्मकता, प्रकृति-चित्रण, पात्रों की मनोवैज्ञानिकता, प्रभावान्विति, बेहतरीन शब्द-चयन आदि इन कहानियों की विशेषताएँ हैं।

आदिवासियों की विवशता एवं मजबूरी का फायदा उठाकर अपने-आप को मुख्य धारा का, सभ्य कहलानेवाला समाज

किस प्रकार से उनका दमन कर रहा है, इसका बेहद वास्तविक चित्रण 'आदिवासी नहीं नाचेंगे' कहानी करती है। संगीत, नृत्य, गीत संथालों के लिए पवित्र हैं, लेकिन भूख और गरीबी ने उसे बेचने के लिए संथालों को मजबूर किया है। दिकुओं का दमन एवं घर तथा जमीन के लिए संघर्ष करने की विवशता को कहानी उजागर करती है। आदिवासियों पर मुख्य प्रवाह के समाज का शोषण-चक्र निरंतर चलता ही जा रहा है। अपने-आप को सभ्य तथा मुख्य प्रवाह में गिने जाने वाले समाज में संथाली आदिवासी परिवार की घुटन को 'वे मांस खाते हैं' कहानी प्रकाशित करती है। 'प्रवास का महीना', 'दुश्मन के साथ दोस्ती' तथा 'सिर्फ एक रंडी' कहानियाँ संथाल आदिवासी औरतें एवं लडकियों पर ढ़ाए जानेवाले अकथनीय यौन-शोषण एवं प्रताडना को उजागर करती हैं। तालामाई किस्कू, सुलोचना, मोहिनी, माथाभाँगी तथा सोना ये सभी इस बेहद घिनौने यौन-शोषण एवं प्रताडना की शिकार बनती हैं। एक आदिवासी स्त्री, जो ताउम्र संघर्ष करती है, उसके ही बेटों द्वारा अन्याय की दर्दनाक दासताँ को 'बासो-झी' कहानी बेहतरीन ढ़ंग से बयान करती है।

हर ग्राहक के लिए बाजार की हर रंडी आखिर एक रंडी ही होती है, वह रंडी भले ही घर बसाने के सपने देखे, लेकिन उसकी यह ख्वाईश आखिर ख्वाईश ही बनकर रह जाती है, इस सच्चाई को 'सिर्फ एक रंडी' कहानी भलि-भाँति प्रस्तुत करती है। इसी प्रकार 'दुश्मन के साथ दोस्ती' कहानी सुलोचना एवं मोहिनी के जीवन के दुःखद यथार्थ को बयान करती है और वे किस हद तक उसी परिवेश में कितने ही दुःखों के बावजूद उन्हें भोगने, सहलाने या लालच देने के बाद 'मूर्खता' में रहने के आदि हो गए हैं, इस सच को यह लंबी कहानी बयान करती है। ईसाईयों द्वारा संथाल लड़कियों को बेचा जाना तथा कितने ही लड़कों को झूठे आरोपों में फँसाए जाने की समस्या को 'हिसाब बराबर' कहानी उजागर करती है। कुल मिलाकर विवशता के शिकंजे में घिरे आदिवासी समाज का मुख्य प्रवाह के समाज के दमन तले घुटते जाना और साथ ही उनके द्वारा ढ़ाए गए यौन-शोषण एवं प्रताडना में पिसती आदिवासी स्त्री की दुर्दम्य पीड़ा को इस कहानी-संग्रह की कहानियाँ बेहद दयनीयता एवं संवेदनशीलता के साथ उजागर करती हैं।

संदर्भ :

1. आदिवासी नहीं नाचेंगे : कहानियाँ, https://www.hmoob.in/wiki/The_Adivasi_Will_Not_Dance:_Stories
2. संपा. वंदना टेटे, आदिवासी दर्शन और साहित्य, (भारत, नोशनप्रेस : प्रथम संस्करण 2021) पृ. 80-81
3. हाँसदा सौभेन्द्र शेखर, आदिवासी नहीं नाचेंगे, (दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्ज : प्रथम संस्करण 2016) पृ. 185
4. निर्मला पुतुल की कविताएँ : आदिवासी पीड़ा और प्रतिरोध का काव्य-संसार - रेखा सेठी http://www.streekaal.com/ से उद्धृत
5. हाँसदा सौभेन्द्र शेखर, आदिवासी नहीं नाचेंगे, (दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्ज : प्रथम संस्करण 2016) पृ. 50
6. वही, पृ. 130
7. वही, पृ. 168
8. आदिवासी कविता : स्वयं को तलाशती स्त्री - डॉ. विशाल शर्मा, https://www.sahityakunj.net/ से उद्धृत
9. हाँसदा सौभेन्द्र शेखर, आदिवासी नहीं नाचेंगे, (दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्ज : प्रथम संस्करण 2016) पृ. 41

हिंदी में अनुदित कविताओं में अभिव्यक्त आदिवासी जीवन

डॉ. विनायक बापू कुरणे
अध्यक्ष हिंदी विभाग
बाळासाहेब देसाई कॉलेज,
पाटण जि. सातारा
मोबा. नं.9604749881
ई-मेल-kuranevinayak@rediffmail.com

शोध आलेख का सारांश :-

देश के चुनिंदा आदिवासी कवियों का 'लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ' यह हिंदी में अनुदित काव्य संग्रह है I जिसका संपादन वंदना टेटे ने किया है I यह कविताएँ आदिवासी जीवन पर आधारित है I वैश्वीकरण एवं आधुनिकरण ने आदिवासी जीवन में कई समस्याओं का निर्माण हुआ है जिसका चित्रण कवियों ने किया है I आदिवासियों को जंगल से खदेडने के लिए षड्यंत्रों से उन्हे घेरा जा रहा है I विकास के नए मॉडल्स का सपना दिखाकर उन्हें बेघर किया जा रहा है I आदिवासियों के जीवन में इलेक्ट्रोनिक मध्यामों का प्रवेश होने के कारण उनकी नई पिढी पारंपारिक ज्ञान, देशी तकनीक आदि बातों से वंचित रह रही है I आलोच्य कविताओं के माध्यम से इन बातों का अनुशीलन किया है I

बीज शब्द :- आदिवासी जनजाति, आधार तत्व, अखडा, जंगलों की कटाई, षड्यंत्र, पारंपारिक ज्ञान I

प्रस्तावना :-

आदिवासी देश के मूलनिवासी हैं। जुगुल किशोर चौधरी लिखते है, "आदिवासी राष्ट्र का पारस्परिक संबंध और व्यवहार करने के बारे में पूर्वानुभाव पर आधारित निश्चित नियमों का पालन करने वाले पारिवारिक समूह आदिवासी जाति है।"[1] वे अपनी विशिष्ट समाज व्यवस्था को कायम रखने वाले समूह हैं जिनमें अपनी स्वतंत्र संस्कृति है, दर्शन , इतिहास और विरासत है। साथ ही इन सभी को अभिव्यक्त करने के लिए उनके पास अपनी मातृभाषाएँ हैं। जुगुल किशोर चौधरी लिखते है ''भारत देश में आदिवासी जनजातियों में प्रमुख रूप में ये हैं- नट, करनट, गोंड, भील, उराव, कातकारी, कोल, बारली, संथाल, हो, बागा, चेंचू, बंजारा, मिझो, नागा, गुर्जर, खांसीकोली, दोबी, जुआंग, लिंबू, अबोर, मिरी, मिशमी, मीकिर, कवारी,गारी, कुकी, लुशाई, चकमा, मूमिज, बिरहोर, खोंड,सवरा, कोकर, कमार, मीणा, कटकरी कोंडा, रेड्डी, राजगोंड, कोया, कोलाम, कुरूंबा, टोडा, काडर, मलायन, मुशुवन, कनिक्कर, सहरिया, गरासिया, पावरा, रावताला, राठवा पाडवी, गवित, बलवी, माचवी, मुसहर आदि।"[2] आदिवासी के जीवन का आधार जंगल है। जंगल ही उनकी धरोहर है। जंगल उन्हें सब कुछ देता है। जंगल से अलग उनकी कोई जीवन शैली नहीं है।

शोध विषय का विश्लेषण :-

देश के चुनिंदा आदिवासी कवियों का 'लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ ' यह हिंदी में अनुदित काव्य संग्रह है I जिसका संपादन आदिवासी और देशज साहित्यिक-सांस्कृतिक संगठन 'झारखंडी भाषा साहित्य संस्कृति अखडा' की संस्थापक , महासचिव वंदना टेटे ने किया है I इस संग्रह में दुलाय चंद्र मंडा, तेमसुला आओ, प्रेस कुजूर, वाहरू सोनवणे, रामदयाल मुंडा, उज्ज्वला ज्योति तिग्गा, महादेव टोप्पो, इरोम चानू शर्मिला, हरिराम मीणा, कमल कुमार तांती, निर्मला पुतुल, अनुज लुगुन, वंदना टेटे और जनार्दन गोंड आदि आदिवासी कवियों की कविताओं का हिंदी में अनुवाद संकलन है I

राष्ट्रहित और राष्ट्र के विकास के नाम पर सार्वजनिक प्रतिष्ठानों, खदानों, बड़े बाँधों आदि के,लिए आदिवासियों की ज़मीन का अधिग्रण हुआ। इससे आदिवासी जल, जंगल और ज़मीन से विच्छिन्न हो गये I आदिवासी जीवन के ये आधार तत्व है I इनसे दूर होकर जीवन जीने के लिए विवश लोगों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। उनके जीवन का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया। जंगल की सारी चीजें इनकी आजीविका के प्रमुख साधन है परंतु वन संरक्षण अधिनियम के कारण इन साधनों से वे वंचित रह गए हैं। उन्हें रोजगार के अन्य साधन ढूंढने पडते है I मुंडारी के लोकप्रिय कवि दुलाय चंद्र मुंडा लिखते है '

"गाँव-गाँव, टोले-टोले से, /हमारे भाई-बहिन सब चले गए।
हटिया में काम खुल गया, /जोतना-कोड़ना तक को छोड़ गए।"[3]

पारंपारिक काम को छोडकर नागरी बस्ती में रोजगार पाने के लिए गाँव-गाँव, टोले-टोले से आदिवासी जाते है I आदिवासियों के आजीविका के प्रमुख साधनोंपर पाबंदी लगाने के कारण जीने-मरने का प्रश्न उनके सामने निर्माण हो गया है I कवि आगे लिखते है ,

"हे पंडुक!/ हम दोनों भी इसी में जल मर जाएँ,

हम दोनों कहाँ चारा-पानी ढूंढेगे ?/हे बुध्दु !
इसी धारा में समा जाएँ, /हम दोनों कहाँ गुजर-बसर करेंगे ?” [4]

आदिवासियों का सामुदायिक सांस्कृतिक स्थल जिसे ‘अखडा’ कहा जाता है l रात के समय थके-भागे आदिवासी स्त्री-पुरुष इस अखडे में गीत गाते हुए नृत्य करते थे l आज कोयला खदानों के बहाने, औद्योगिक इकाइयों लगवाने हेतु या जंगल संरक्षण हेतु आदिवासी बस्तियों को उजाडा गया है l उनका जीवन तहस-नहस हो गया है l उनका सांस्कृतिक स्थल अखडा भी नष्ट हो गया है l कवि ग्रेस कुजूर कहते है,

“अब कहाँ है वह अखड़ा ? /किसने उगाए हैं वहाँ विषैले नागफनी
बार-बार उलझता है जहाँ / तुम्हारी ‘तोलोंग’ का फुदना’
क्यों उदास है आज ‘पत्वा’ के उजले पंख ?/ हवा में नहीं तैरते अब
‘आँगनई’ और ‘डमकच’ के गीत/ सिल गए हैं होंठ मेरे
धतूरे के काँटों से" [5]

आदिवासियों का जीवन जल, जंगल, जमीन के बीना निरर्थक है l उद्योग या आवास निर्माण के कारण या फिर बाँध आदि सार्वजनिक हितों की पूर्ति के कारण जंगलों की कटाई होती रहती है। इसलिए जंगलों का क्षेत्र कम होता जा रहा है। वहाँ औद्योगिक इकाइयों के लगने से आदिवासियों की करंज तेल की ढिबरी की जगह थर्मल पावर के बत्तियों ने ली है l

“थर्मल पावर के दूधिया प्रकाश/ और
जादूगोड़ा के जादुई चिराग तले /करंज तेल की ढिबरी लिये
मन के किस अँधेरे में/ भटक रहे हो संगी?
जल, जंगल, जमीन के बिना/ साल वन के जीवन का व्याकरण
किन पंडितों के हाथों/ तुमने गिरवी रखा है संगी ?
कोटरों से निकल अपने/ साल वन के सुग्गे भी
पूछ रहे हैं/ अपने होने का पता ।” [6]

आदिवासी जंगल को सुरक्षित रखने के पक्ष में है। वे जंगल को पालते हैं और जंगल उन्हें भी। इस पारस्परिक रिश्ते को तोडते हुए वर्तमान संदर्भ में आदिवासियों को जंगल से निकाल देने का षड्यंत्र चल रहा है । उन्हें अपना संरक्षण करने के बहाने उनके हाथ में बंदूक थमा दी है l वे अपना संरक्षण करने के लिए गोलियाँ चलाते है l पुलिस की हत्या करते है l तब उन्हें नक्सलवादी घोषित किया जाता है l आदिवासी युवक हाथ में बंदूक लिए दर-दर भटक रहे हैं l उन्हें पुलिस की गोलियों का शिकार होना पडता है l कवि वाहरू सोनवणे लिखते है ,

"माँ, पुलिस मुझे मार डालेगी /इसलिए तू डर गई ?
मुझे बंदूक ही मार देगी/ ऐसी तो बात नहीं है, माँ !
जान लेनेवाले तो चारों तरफ हैं/ घर के भीतर-बाहर, सगे-संबंधी, माँ-बाप
सभी का मन तो ऐसा ही है /जब वे ऐसी बातें करते हैं, तो
वे भी मुझे जान से मारनेवाले ही लगते हैं /
मौत के खौफ से कब तक छिपता फिरूँ ? /
जान में जान है जब तक/
लड़नी ही पड़ेगी इनसानियत की लड़ाई" [7]

आदिवासी जंगल का आदमी है l वह जंगल की पूजा करता है l उसके लिए वृक्ष लगाना पुण्य का काम है l वृक्ष को काटना उसके लिए पाप है l वह घास-फूस की झोपडियों में रहेगा लेकिन वृक्षों को नहीं काटेगा l रामदयाल मुंडा आदिवासी की इस विशेषता को चित्रित करते हुए लिखते है ,

“मेरे ही सामने उस दिन ठेकेदार साहब ने / नागों की झोंपड़ी को देखकर
अपने इंजीनियर साथी से कहा था- /"बेवकूफ हैं साले, टिंबर से घिरे हैं पर
ढंग का मकान बनाने की भी अक्ल नहीं आई।"[8]

आदिवासी जानता है जंगल को नष्ट करना खुद को नष्ट करना है l लेकिन कुछ लोग अपने फायदे के लिए वृक्षों को काट रहे है l

"वह जानता है कि जंगल को नष्ट करना/ खुद को नष्ट करना है l इसीलिए जंगल का आदमी मेरी पूजा करता है l/ यहाँ तो बाहर से "वृक्ष लगाएँ, पुण्य कमाएँ"/ और भीतर से "वृक्ष काटें, पैसा लूटें"/ वाली नीति बरती जा रही है l" [9]

कोयला खदानों के बहाने, औद्योगिक इकाइयों लगवाने हेतु या विश्वस्तरीय उद्यान आदि के लिए आदिवासियों की जमीन हडपने के लिए, उन्हें जंगल से निष्कासित करने के लिए कई टोलियाँ कार्यरत है l उन्हें समझाने, फुसलाने के लिए बताया जाता है कि औरों की तरह जीने का तुम्हें जन्मसिद्ध हक्क है l विकास के नये मॉडेल का सपना दिखाते है l और समझाया जाता है कि इस विकास से आने वाली अनगिनत पिढियाँ बैठकर खायेगी l कवि इस षड्यंत्र का चित्रण करते हुए लिखते है,

"विकास के नए मॉडल्स के रूप में/दिखाते हैं सब्जबाग कि
कैसे पुराने जर्जर जंगल / का भी हो सकता है कायाकल्प
कि एक कोने में पड़े/ सुनसान उपेक्षित जंगल भी
बन सकते हैं /विश्व स्तरीय वन्य उद्यान
जहाँ पर होगी /विश्व स्तरीय सुविधाओं की टीम-टाम
और रहेगी विदेशी पर्यटकों की रेल-पेल / और कि कैसे घर बैठे खाएगी
शेर, हाथी और भालू की / अनगिन पुश्तें"[10]

बॉस को लेकर समाज में कई अवधारणाएँ हैं l गैर आदिवासी बॉस को जलाना हानिकारक समझते है l आदिवासी के जीवन में बॉस को महत्वपूर्ण स्थान है l आदिवासी बॉस से टोपियाँ , टोकरी, तिनके, मछली पकडने के साधन आदि वस्तुएँ बनाते है l बॉस आदिवासी के जीवन का अभिन्न अंग होने के कारण उसे लेकर कई मुहावरे भी गढे हुए है l कवयित्री निर्मला पुतुल लिखती है,

"बॉस को लेकर कई अवधारणाएँ हैं
आदिवासियों की कुछ और गैर-आदिवासियों की कुछ
चूँकि बाँस के संबंध में आदिवासियों की धारणा
सबसे महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय है।
बाँस को लेकर कई मुहावरे हैं
जिसमें एक मुहावरा किसी को बाँस करना है
जो इन दिनों सर्वाधिक चर्चित मुहावरा है।"[11]

वैश्वीकरण एवं आधुनिकरण ने आदिवासी जीवन का नागरीकरण हो गया है l आदिवासियों के बच्चे उनके पारंपारिक ज्ञान से दूर रह गये है l खुली हवा की जगह बंद कमरे में टी. वी., कंप्यूटर , नेट की दुनिया में बच्चे मशगुल हो गये है l रिमोट , माउस और मोबाइल के बटनों पर उनकी उंगलियाँ थिरक रही है l कवयित्री वंदना टेटे लिखती है,

"बंद कमरे में,/ आँखें खोलते ही/ टी.वी., कंप्यूटर, नेट की दुनिया में
वायर के जरिए आती सूचनाओं/ और रंगीनियों के अभ्यस्त होते
मेरे बच्चों की उँगलियाँ/ रिमोट, माउस और मोबाइल के बटनों पर
खेलती-नाचती-थिरकती हैं।/ और बंद कमरे में सारे मौसम /गुजर जाते हैं।" [12]

कवयित्री वंदना टेटे को चिंता है कि बच्चे नहीं जान पायेंगे कि पहली तेज बारीश का पानी जब सूखी नदी में उतरता है तो अपने आने की सूचना कैसे देता है ? डोरी, कुसुम से तेल निकालने की , मछली और चिडिया पकडने की देशी तकनीक आदि बातों से वंचित रह जायेंगे l

निष्कर्ष :-

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि विभिन्न आदिवासी भाषाओं से हिंदी में अनुदित कविताओं में आदिवासी जीवन अभिव्यक्त हुआ है l वैश्वीकरण एवं आधुनिकरण ने आदिवासी जीवन में कई समस्याओं का निर्माण हुआ है जिसका चित्रण कवियों ने किया है l आदिवासियों को जंगल से खदेडने के लिए षड्यंत्रों से उन्हे घेरा जा रहा है l विकास के नए मॉडल्स का सपना दिखाकर उन्हें बेघर किया जा रहा है l आदिवासियों के जीवन में इलेक्ट्रोनिक मध्यामों का प्रवेश होने के कारण उनकी नई पिढी पारंपारिक ज्ञान, देशी तकनीक आदि बातों से वंचित रह रही है l आदिवासियों के इन सारी बातों का यथार्थ चित्रण आलोच्य कविताओं में हुआ है l

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. जुगुल किशोर चौधरी- आदिवासी विमर्श, अर्थ और अवधारणा लेख से, युद्धरत आम आदमी, 2018 पृ. 82
2. जुगुल किशोर चौधरी- आदिवासी विमर्श, अर्थ और अवधारणा लेख से, युद्धरत आम आदमी, 2018 पृ. 81
3. लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ (दुलाय चंद्र मुंडा- कोडना भारी हो गया)– सं. वंदना टेटे प्रभात प्रकाशन, दिल्ली सं. 2017 पृ.18
4. लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ (दुलाय चंद्र मुंडा- हम लोग कहाँ गुजर-बसर करेंगे)– सं. वंदना टेटे प्रभात प्रकाशन, दिल्ली सं. 2017 पृ.19
5. लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ (ग्रेस कुजूर-एक और जनी शिकार)– सं. वंदना टेटे प्रभात प्रकाशन, दिल्ली सं. 2017 पृ.33
6. लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ (ग्रेस कुजूर-प्रतीक्षा)– सं. वंदना टेटे प्रभात प्रकाशन, दिल्ली सं. 2017 पृ.41-42
7. लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ (वाहरू सोनवणे- माँ, पहली लडाई तो हमारे ही बीच है)– सं. वंदना टेटे प्रभात प्रकाशन, दिल्ली सं. 2017 पृ.45
8. लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ (रामदयाल मुंडा-कथन शालवन के अंतिम शाल का)– सं. वंदना टेटे प्रभात प्रकाशन, दिल्ली सं. 2017 पृ.59-60
9. वही पृ. 61
10. लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ (उज्ज्वला ज्योति तिग्गा- शिकारी दल अब आते है)– सं. वंदना टेटे प्रभात प्रकाशन, दिल्ली सं. 2017 पृ. 91
11. लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ (निर्मला पुतुल- बाँस)– सं. वंदना टेटे प्रभात प्रकाशन, दिल्ली सं. 2017 पृ.160
12. लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ (वंदना टेटे- हमारे बच्चे नहीं जानते, तोतो-रे नोना-रे)– सं. वंदना टेटे प्रभात प्रकाशन, दिल्ली सं. 2017 पृ. 190

आदिवासी नारी के जीवन को तबाह करती अंधविश्वास की 'डायन'

डॉ. सरिता बाबासाहेब बिडकर
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
डॉ. घाळी कॉलेज, गडहिंग्लज,
जिला-कोल्हापुर (महाराष्ट्र)
ई-मेल : saritabeedkar78@gmail.com
दूरभाष क्रमांक: 9423858410

शोधालेख का सार

महाश्वेता देवी का 'आदिवासी कथा' कहानी-संग्रह आदिवासी जीवन पर आधारित है। इसके 'डायन' कहानी के माध्यम से लेखिका ने आदिवासी समाज में व्याप्त अंधविश्वास की समस्या को बेहतरीन ढंग से उठाया है। अंधविश्वास के चलते आदिवासी महिलाओं का जीवन किस प्रकार तबाह हो जाता है, इसे लेखिका ने चंडी के माध्यम से चित्रित किया है।

बीज शब्द: आदिवासी समाज में अंधविश्वास, महाश्वेता देवी, 'डायन' कहानी।

वर्तमान समय में हम भलेही विकास की बड़ी-बड़ी बातें करें लेकिन आज भी आदिवासी समाज समेत अनेक पिछड़ी जनजातियाँ विकास से कोसों दूर हैं। अशिक्षा, अज्ञान और आर्थिक अभाव उनकी समस्याओं की मुख्य जड़ है। इसी के चलते उनके जीवन में अनेक समस्याएँ उपजती हुई दिखाई देती है। लेखिका महाश्वेता देवी ने अपने 'आदिवासी कथा' कहानी-संग्रह के माध्यम से इन्हीं समस्याओं के जड़ तक पहुँचने का काम किया है। इस कहानी-संग्रह में कुल 15 कहानियाँ हैं। इनमें से एक है- 'डायन।' इसके माध्यम से लेखिका ने अंधविश्वास की समस्या पर प्रकाश डाला है। अंधविश्वास की डायन किस प्रकार आदिवासी नारियों का जीवन तबाह कर देती है, इसका चित्रण चंडी के माध्यम से किया गया है। इस संदर्भ में 'दै. अमर उजाला' में लिखा है- "मशहूर कथा लेखिका महाश्वेता देवी की ओर से रचित कहानी डायन में औरत की स्थिति को बखूबी चित्रित किया गया है। जिसमें बताया गया है कि पुरुष प्रधान समाज में किस तरह से एक औरत को प्रतिशोध की आग में झोंक कर उसे डायन करार देकर उसकी जिंदगी को नरक बना दिया जाता है।"[1] इसी प्रकार समाज में व्याप्त अंधविश्वास के चलते जान-बूझकर नारी का शोषण किया जाता है।

प्रस्तुत कहानी की नायिका चंडी डोम जाति से संबंधित है तथा वह पारंपरिक पेशे के मुताबिक पाँच साल से कम उम्र के बच्चों को दफनाने का काम करती है। इसी चंडी को अशिक्षा, अज्ञान के चलते समाज द्वारा उसे किसप्रकार डायन साबित कर समाज से बहिष्कृत कर पगली की तरह जीवन जीने के लिए विवश किया जाता है, इसका बखूबी ढंग से चित्रण प्रस्तुत कहानी में लेखिका ने किया है।

यह कहानी अंधविश्वास की शिकार चंडी, उसका बेटा भगीरथ और पति मलिन्दर इन तीनों के इर्द-गिर्द घूमती है। इसमें प्रसंगानुकूल चंडी की सौतन, सौतन की दो बेटियाँ गैरवी और सैरभी, चंडी के पिता गंगापूत, गाँववाले, सरकारी कर्मचारी आदि का चित्रण भी मिलता है। प्रस्तुत कहानी में लेखिका पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग करते हुए भगीरथ और मलिन्दर के माध्यम से चंडी की जीवन-कहानी चित्रित की है। आदिवासी समाज में अंधविश्वास बड़े पैमाने पर है। इस अंधविश्वास के चलते ही चंडी को उसे डायन साबित कर उसे समाज से बहिष्कृत किया जाता है। समाज के दवाब के चलते खुद पति मलिन्दर गाँव में ढिंढोरा पीटकर अपनी पत्नी को डायन घोषित करता है। इस संदर्भ में लेखिका ने लिखा है-"...पूरे गाँव को थर्रा देनेवाली आवाज में वह ढोल पीटता हुआ चीख उठा, "मैं...मलिन्दर गंगापूत, शोहरत देता हूँ! ऐलान करता हूँ...ये...मेरी बहुरिया डायन हो गई है....डायन!"[2] इस प्रकार अंधविश्वास के चलते पति ही अपनी पत्नी को डायन घोषित करता है। लोगों का मानना है कि डायन छोटे बच्चों की जान लेती है। इसलिए चंडी की नजर तक खुद के बच्चों पर पड़ने नहीं देते। उसे गाँव से दूर कहीं एक झोपड़ी बनाकर रखा जाता है। न उसके खाने-पीने का खयाल रखा जाता है न उसके स्वास्थ्य का। मरते दम तक उसे इन जीवन यातनाओं को भुगतना पड़ता है। इस दर्दनाक सच का चित्रण लेखिका महाश्वेता देवी ने किया है।

प्रस्तुत कहानी की डायन चंडी का भगीरथ नाम एक बेटा भी है लेकिन उसे भी मालूम नहीं है कि उसकी माँ डायन है। क्योंकि वह छोटा था तब ही उसकी माँ को डायन घोषित किया था। चंडी का पति मलिन्दर एक लाशघर में सरकारी नौकरी करता है। मलिन्दर के माध्यम से लेखिका ने आदिवासी समाज में अशिक्षा का चित्रण किया है। उस इलाके में मलिन्दर ही ऐसा व्यक्ति है, जो थोड़ा-बहुत पढ़ा है लेकिन बाकी लोग दस्तखत तक नहीं कर सकते। सरकारी नौकरी होने के कारण समाज में उसका रोब है। वह

अपनी पत्नी से बहुत प्यार करता है लेकिन पत्नी को समाज द्वारा डायन साबित करने से उसकी पूरी जिंदगी ही बदल जाती है। पत्नी की हालत देखकर उसे बहुत दुख होता है। वह चिंता करते हुए कहता है- "अँधियारे में डरपत है बेचारी! जो औरत अँधियारे से खौफ खाती थी, उसे ही विधाता ने डायन बना दिया? अब तो उसे मौत ही आ जाए, तभी उसे शांति मिलेगी।"[3] इस प्रकार एक अच्छी औरत को डाइन बनाने के कारण पति मिलिन्दर को भी बुरा लगता है।

चंडी डायन कैसे बन जाती है? इसका चित्रण प्रस्तुत कहानी में दिया है। चंडी के पिता डोम जाति से संबंधित होने के कारण वे पाँच वर्ष से कम आयु के बच्चों पर अंतिम-संस्कार करने का काम करते थे। इसके बदले में गाँववाले उन्हें जो भीख देते उसी पर उनकी जीविका चलती थी। यह काम तो लोग उनसे करवाते थे लेकिन भीख के लिए जब वे गाँव से घूमते तब लोग उन्हें बहुत हेय दृष्टि से देखते। उनकी नजर भी बच्चों पर पड़ने नहीं देते। थोड़ा-बहुत देकर उन्हें आगे चलता करते। पिता की मृत्यु के बाद उनके खानदान में कोई दूसरा आदमी न होने के कारण यह जिम्मेदारी चंडी पर आ जाती है। श्मशान में खुद गड्ढा खोदकर उसे यह बच्चे दफनाने का करना पड़ता है। वह लाश कोई सियार या अन्य जानवर न खाए इसलिए उसकी रखवाली भी करनी पड़ती है। मलिन्दर से शादी के बाद भी चंडी यह काम जारी रखती है। उसे बच्चा होने के बाद उसका इस काम में मन नहीं लगता। जब वह किसी का बच्चा दफनाने जाती तो उसे रह-रहकर अपने बच्चे की याद आती रहती। दूसरी ओर समाज की हेय दृष्टि के चलते भी उसे हमेशा लगता कि यह काम छोड़ दें।

एक दिन कुछ लोग उसकी नजर से गाँव के एक बच्चे की मौत होने का आरोप लगाकर उसे डायन कहने लगते हैं। इसी में एक दिन रात के समय दफनाई लाश की रखवाली के लिए गई चंडी पर लाश को खाने को जाने का आरोप लगाया। डायन का सिक्का और गर्द बनाया जाता है। अंधविश्वास के चलते पति मलिन्दर भी लोगों की बात मानकर अपनी पत्नी को डायन घोषित कर हमेशा-हमेशा के लिए घर से बाहर निकालता है। गाँव से दूर एक रेल पटरी के बाजू में छोटी-सी टूटी-फुटी झोंपड़ी बनाकर उसमें रखता है। इस प्रकार एक अच्छी औरत को समाज और पति द्वारा डायन घोषित किया जाता है।

डायन खाएगी इस डर से लोग उसकी झोपड़ी के पास तो जाने की बात दूर ही लेकिन उसकी परछाई से भी डरने लगते हैं। एक आदमी डरते-डरते हफ्तेभर में एक बार आकर आवश्यक सामान उसकी झोंपडी के पास लाकर रख जाता है। झोंपडी में अकेली बेचारी चंडी अपने-अपने में ही खोयी-खोयी रहने लगती है। उसे नहाने की सुध रहती है न खाने की। एक पगली की तरह उसकी हालत हो जाती है। उसे उस झोंपडी में अकेले-अकेले डर लगता है। जब चंडी सड़क से निकलती है तब अंधविश्वास के चलते किस प्रकार लोगों में प्रतिक्रिया उमटती है, इस संदर्भ में महाश्वेता देवी लिखती है- "डायन जब सड़क पर निकलती है, तो टिन पीट-पीटकर सूचना देती हुई जाती है। किसी बच्चे या जवान-जहान मर्द को देखते ही, वह अपनी नजरों से उनकी देह का बूँद-बूँद खून चूस लेती है। इसीलिए तो डायन को नितांत अकेली रहना पड़ता है। डायन की आहट मिलते ही जवान-बूढ़े-मर्द, सबके सब रास्ता छोड़कर, इधर-उधर आड़ में छिप जाते हैं।"[4] इस प्रकार लोग डायन की परछाई से भी डरते हैं। फिलहाल हम आजादी का अमृत-महोत्सव मना रहे हैं, तकनीकी युग में जी रहे हैं किंतु आज भी आदिवासी इलाके में यह प्रथा जारी है। कई महिलाओं को डायन साबित करने की खबरें अखबार में पढ़ने को मिलती है। अत: यह गंभीर विषय है, सोचने के लिए बाध्य करता है।

अशिक्षा, अज्ञान की गर्ता में फँसे इस आदिवासी समाज की स्थिति की ओर निर्देश करते हुए डॉ. अर्जुन चव्हाण लिखते हैं-"जंगल तथा दुर्गम भागों में रहनेवाली यह जनजातियाँ साधन-सुविधाओं से वंचित तो हैं ही लेकिन अज्ञान और अशिक्षा के कारण अपनी रूढ़ि और परंपराओं के चंगुल से बाहर नहीं आ रही है।"[5] इस प्रकार अशिक्षा, अज्ञान के चलते आदिवासी समाज की स्थिति बहुत गंभीर दिखाई देती है।

भगीरथ को जब मालूम नहीं था कि उसकी माँ डायन है, तब वह डायन खा जाएगी इसलिए उसके पास जाने से डरता था। डायन के संदर्भ में उसके मन में भी अनेक गलतफहमियाँ थीं। भगीरथ के मन में होनेवाले विचारों के संदर्भ में महाश्वेता देवी लिखती हैं- "डायन तो मिट्टी खोदकर, मरे हुए बच्चे निकाल लेती है! डायन भला इंसान होती है? खोदकर निकाले हुए मुर्दा बच्चे को प्यार करती है, अपना दूध पिलाती है। डायन की नजर पड़ जाए, तो पूरा का पूरा पेड़ तक, चरमराकर सूख जाता है।"[6] इस प्रकार समाज में डायन के संदर्भ में अनेक कथाएँ जुड़ी दिखाई देती है।

जब एक दिन पिता से मालूम होता है कि चंडी उसकी माँ है तब वह उसके साथ संवाद स्थापित करने का प्रयास करता है। अपनी माँ की यह बुरी हालत देखकर उसे बहुत बुरा लगता है। कहानी के अंत में यही चंडी जब अपनी जान देकर सावधानता से रेल को दुर्घटना से बचाती है और रेलवे विभाग उसे मेडल घोषित करता है तब सभी को उसका अभिमान लगता है।

निष्कर्ष :

अंत में निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि महाश्वेता देवी ने अपनी 'डायन' कहानी के माध्यम से आदिवासी समाज में व्याप्त अंधविश्वास की समस्या को बेहतरीन ढंग से उठाया है। अंधविश्वास के चलते आदिवासी महिलाओं का जीवन किस प्रकार तबाह हो जाता है, इसे लेखिका ने यथार्थ ढंग से चित्रित किया है। आदिवासी तथा पिछड़े इलाके में यह अनिष्ट परंपरा आज भी है, इस बात की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है, पाठकों को सोचने के लिए मजबूर किया है। अंधविश्वास के कारण हँसते-खेलते जीवन बर्बाद किया।

संदर्भ :

1. https://www.amarujala.com/himachal-pradesh/mandi/dayan-drama-tells-a-story-of-women
2. महाश्वेता देवी, आदिवासी कथा, डायन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004, पृष्ठ 38
3. वही, पृष्ठ 27
4. वही, पृष्ठ 24
5. डॉ. अर्जुन चव्हाण, विमर्श के विविध आयाम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ 181
6. महाश्वेता देवी, आदिवासी कथा, पृष्ठ 26

डॉ. अनूप वशिष्ठ के गजलों में पर्यावरण विमर्श

डॉ. अलका निकम-वागदरे
सहयोगी प्राध्यापक, हिंदी विभाग
विलिंग्डन महाविद्यालय, सांगली
भ्रमणध्वनि – 8483926423
E-mail – alkanikamwagdare@gmail.com

सारांश–

पर्यावरण का यह जो नुकसान हुआ है या हो रहा है वह केवल एक दिन में नहीं हुआ सालों से हम प्रकृति का दोहन कर रहे है। विश्व गाँव और विकास के नाम पर फैलाई गयी गंदगी का प्रभाव अब स्थानिक नहीं वैश्विक हो गया है। अगर हम प्रकृति का संतुलन नहीं रखेंगे, अपने स्वार्थ के लिए प्राकृतिक संपदा का असीम उपयोग करेंगे तो उसका परिणाम जीवन का अंत ही है। जो बात छोटी सी ग्रेटा थनबर्ग (स्विडन), लायसी प्रिया कांबूजम (मणिपुर), गर्विता गुल्हाटी, स्नेहा शशी (बेंगलुरू) जानती और समझती है वह हम क्यों नहीं समझते ?

बीजशब्द – पर्यावरण, नगरीकरण, औद्योगिकीकरण विकास, प्रदूषण

मानव जीवन एवं पर्यावरण एक दूसरे के पर्याय हैं। जहाँ मानव जीवन का अस्तित्व पर्यावरण से है वहीं मानव व्दारा निरंतर किए जा रहे पर्यावरण के विनाश से सम्पूर्ण मानव जीवन को भविष्य की चिंता सताने लगी है। हिंदी साहित्य में पर्यावरण विमर्श पर अब गहरा चिंतन, लेखन हो रहा है। 'पर्यावरण' शब्द अत्यंत व्यापक है। इसके अंतर्गत पूरा ब्रम्हांड समाया हुआ है। "सामान्यतः प्राकृतिक व्यवस्था को ही पर्यावरण कहते हैं। इसमें पृथ्वी, जल, वायु, पेड-पौधे, जीव-जन्तु तथा अन्य जीवधारी आते हैं। यदि विज्ञान की भाषा में कहें तो पर्यावरण से तात्पर्य उस समूची भौतिक एवं जैविक व्यवस्था से है जिसमें जीवधारी रहते हैं, पोषण पाते हैं, वृध्दि करते हैं और अपनी स्वाभाविक अन्य प्रवृत्तियों का विकास करते हैं।"[1] पर्यावरण का संबंध किसी एक देश से नहीं है सम्पूर्ण विश्व से है। जैसे-जैसे भारत आधुनिकता की ओर बढता जा रहा है वैसे-वैसे पर्यावरण की हानी हो रही है। वास्तव में प्रकृति हमारी पोषक है, रक्षक है, जीवनदायिनी है। हम इस प्रकृति की सन्तान हैं, स्वामी नहीं। प्रकृति से छेडछाड पूरे जीवमण्डल के लिए खतरा है। बढती जनसंख्या, जनसंख्या बढने से निर्मित आवास की समस्या ने, बढती आवश्यकताओं ने प्रकृति के साथ सहयोग के स्थान पर संघर्ष के लिए उत्साहित किया।

सन 1991 के बाद आये नगरीकरण और औद्योगिकीकरण के नाम पर अंधाधुंद काटे गये जंगल, भूमि अपरदन, भस्खलन, भूकंप, बाढ जैसी समस्याओं का प्रकोप बढ गया है। विकास की अंधी दौड में हमने सुख-सुविधाओं के लिए महलों का निर्माण किया वहीं पर्यावरण को हानी पहुँचाकर अपने पैरों पर कुल्हाडी मार ली। मनुष्य ने विकास के नाम पर जो प्रकृति का दोहन किया है उसका परिणाम तो हमें भोगना ही पडेगा। प्रकृति से अगर मानव छेडछाड करेगा तो प्रकृति उसका बदला लेकर ही रहेगी। हमने समझा कि प्रकृति हमारे उपभोग के लिए हैं, अतः उसे लूटना-खसोटना हमारा अधिकार है पर हमसे यही भूल हो गई। पहले हमारी नदियाँ स्वच्छ, निर्मल पानी का स्त्रोत हुआ करती थी। मगर आज अत्यधिक गंदगी के कारण नदियाँ प्रदूषित बन चुकी है। इसका परिणाम मानव-जीवन के साथ-साथ जानवरों पर भी हो रहा है। हमारी गंगा, यमुना, कावेरी, गोदावरी, ब्रम्हपुत्रा जैसी बडी-बडी नदियाँ इसकी चपेट में आ चुकी है। आज बडे पैमाने पर गंगा, यमुना, नर्मदा, कावेरी जैसी नदियों को बचाना जरूरी है। इनके बारे में – 'नर्मदा बचाव', 'गंगा बचाव योजना' जैसी योजनाएँ जारी है जिसमें जापान हमारी मदद कर रहा है। अगर समय के रहते हमने इस पर ध्यान नहीं दिया तो निश्चित ही आनेवाली पीढी के लिए यह चिंता का विषय है। गजलकार डॉ. अनूप वशिष्ठ चिंतित होकर लिखते हैं -

यह तो कुएँ का नीर है पी सकता हूँ इसे
अच्छा है कि लोटे में गंगाजल नहीं हुआ[2]

ओडम के अनुसार "वातावरण के अथवा जीवमंडल के भौतिक, रासायनिक व जैविक गुणों के ऊपर जो हानिकारक प्रभाव पडता हैं, प्रदूषण कहलाता है।"[3] प्रदूषण से पर्यावरण की असहनीय हानी होती है। डॉ. अनूप वशिष्ठ जी लिखते हैं-

नदी को प्यार के बदले अगर हम विष पिलायेंगे
तो एकेक बूंद पानी के लिए हम तरस जाएंगे।[4]

नागरीकरण, औद्योगिकरण, बढती जनसंख्या, जनसंख्या की अधिकता के कारण निर्माण आवास की समस्या, आवासों की पूर्ति के लिए जंगलों को काटना, प्राकृतिक संपदाओं का अत्याधिक उपयोग करना जैसी कई समस्याएँ निर्माण हो रही है। जल

के बिना मनुष्य और प्राणियों की भी कल्पना हम नहीं कर सकते। आज की तारीख में किसी भी हालात में हमें पानी को बचाना ही होगा। पूरे विश्व में दक्षिण अफ्रिका का केपटाऊन यह शहर पहला पानी विरहित शहर घोषित किया गया है। वहाँ की सरकार ने 14 अप्रैल, 2019 के बाद हम जनता को पानी नहीं दे सकेंगे यह स्पष्ट रूप से कहा था। इसे ‘डे झिरो’ कहा गया था। और सामईक रूप से पानी देना बंद कर दिया था। यह नहीं महाराष्ट्र के लातुर जिले को भी मिरज शहर से जल एक्सप्रेस व्दारा 15 लाख लिटर पानी दिया गया जो महाराष्ट्र के इतिहास में पहली घटना थी। (2016)

इसलिए आज हमें हमारी नदियों को बचाना होगा। हमारी अंधश्रध्दाओं को मिटाना ही होगा क्योंकि हम नदियों में कपडे, जानवर धोने के साथ-साथ गंगा जैसी नदी में पूरे के पूरे शव को बहाते है, मरने के बाद मनुष्य की रक्षा, अस्थियों को नदियों में प्रवाहित किया जाता है, ईश्वर पर चढाये गये फूलों को अत्यंत सहजता से नदियों में बहाया जाता है इसे रोकना ही होगा नहीं तो हमें पानी ही नहीं, स्वच्छ पानी के लिए भी तरसना पडेगा। डॉ. अनूप जी संवेदनशील गजलकार हैं हमें चेतावनी देते हुए लिखते हैं -

पानी का सम्मान नहीं करता है जो
कभी-कभी वह बेपानी हो जाता है।[5]

पर्यावरण की शृंखला में पानी एक महत्वपूर्ण कडी है जिसे बचाना हम सबका कर्तव्य है।

पशु-पक्षी संम्पूर्ण प्रकृति में रचा-बसा
पानी हर प्राणी का जीवन-दाता है।[6]

पर्यावरण का यह जो नुकसान हुआ है या हो रहा है वह केवल एक दिन में नहीं हुआ सालों से हम प्रकृति का दोहन कर रहे है। विश्व गाँव और विकास के नाम पर फैलाई गयी गंदगी का प्रभाव अब स्थानिक नहीं वैश्विक हो गया है। अगर हम प्रकृति का संतुलन नहीं रखेंगे, अपने स्वार्थ के लिए प्राकृतिक संपदा का असीम उपयोग करेंगे तो उसका परिणाम जीवन का अंत ही है। जो बात छोटी सी ग्रेटा थनबर्ग (स्विडन), लायसी प्रिया कांबूजम (मणिपुर), गर्विता गुल्हाटी, स्नेहा शशी (बेंगलुरू) जानती और समझती है वह हम क्यों नहीं समझते ?

‘पर्यावरणीय असंतुलन’ से हम सभी ग्रस्त है। लगातार जल, वायु, मृदा की स्वच्छता में गिरावट दर्ज हो रही है, मनुष्य का अस्तित्व खतरे में दिखायी दे रहा है। बढते ‘ग्लोबल वार्मिंग’ से भारत भी अछूता नहीं है। असमय आनेवाली वर्षा, बाढ, भूकंप, आकाल जैसी समस्याओं ने हमें इतना जकड के रखा है कि हमें इस कुचक्र से निकलना मुश्किल होता जा रहा है। गजलकार डॉ. अनूप वशिष्ठ लिखते हैं -

ये सूरज की किरण क्यों कर हुई आज हमलावर
जरा सोचो कि उससे किस तरह खुद को बचायेंगे[7]

प्रकृति इन्सान की जरूरतों को पूरा कर सकती है इसके लालच को नहीं।

पेड-पौधों के कारण केवल छाया ही नहीं मिलती बल्कि हमारे शरीर के लिए फल भी मिलते है, पशु-पक्षियों को आवास मिलता है। पेडों को काटने से, जंगलों को अपने स्वार्थ के लिए आग लगाने से हमारा ही नुकसान नहीं होता बल्कि पशु-पक्षियों का आशियाना टूटता है, विविध प्रजातियों का नुकसान होता है वह अलग बात है। पानी की किल्लत के कारण पक्षियों, जानवरों की मृत्यु हो रही है। पर्यावरण का चक्र व्यवस्थित चलने के लिए सभी जीव-जंतूओं की अवश्यकता है। अनगिनत वृक्षों के काटने की समस्या की ओर हमारा ध्यान खिंचते हुए गजलकार लिखते हैं -

अगर करते रहे पेडों की हत्या यूँ ही आये दिन
परिंदे कैसे चहकेंगे, कहाँ पर घर बनायेंगे[8]

विकास के नाम पर दिल्ली, मुंबई, पुणे, नागपुर जैसे शहरों में मेट्रो की सविधाएँ उपलब्ध करायी गयी। ऐसा करते समय खेत-जमीनों का अधिग्रहण किया गया, अनगिनत पेडों को काटा गया जिससे हमारी प्राकृतिक सुरक्षा खतरे में आ गयी। शहर तो विकास की दिशा में चल पडे मगर पशु-पक्षी, जानवर मर रहे है। प्रतिकुल वातावरण, खाने-पिने की कमी, नैसर्गिक आवास की समस्या के कारण स्थानांतरण जैसे कई समस्याएँ निर्माण हुई। गजलकार अत्यंत संवेदना के साथ इसका चित्रण करते हैं-

कटते पेडों से लिपटकर कहा परिन्दों ने
तुम्हारे बाद कहाँ हम पनाह पायेंगे[9]

मनुष्य की भोगवादी प्रवृत्ति ने पूरे विश्व को खतरे में डाल दिया है। सडक निर्माण के लिए पेडों का कटना, बिजली बनाने के लिए नदियों पर बडे-बडे बाधों का निर्माण, प्राकृतिक खनिजों को खोजने के लिए धरती पर जोर-शोर से किया जानेवाला उत्खनन, मल्टीनेशनल कंपनियों व्दारा किया जानेवाला उत्खनन, उत्खनन के लिए बडी-बडी मशिनों व्दारा खुदाई, उससे निर्मित वायु प्रदूषण और धुँवा, कचरा ये सभी चिंता के विषय है। गजलकार डॉ. अनूप वशिष्ठ चिंतित होकर लिखते हैं -

हवाओं मे जहर घुलता रहा गर दिन-ब-दिन यूँ ही
तो एक दिन साँस लेने के लिए हम छटपटायेंगे[10]

दिल्ली जैसे महानगर में वायु का दर्जा निर्देशांक (AQI) 400 से उपर है जिससे दिल्ली शहर गॅस चेंबर जैसे बन चुका है। कार्बन डायऑक्साईड, मिथेन जैसे घातक उत्सरजन से स्कूलों को बंद करना, वर्क फॉर्म होम, पानी के फव्वारों का उपयोग करना, ॲण्टी फॉग मशिन लगवाने जैसे उपाय किये जा रहे है। अगर इसके बदले हमने मौसम के साथ प्रेमभरा रिश्ता निभाया तो -

जरा एक पल दिल लगाकर तो देखो
जनम भर ये रिश्ता निभाता है मौसम[11]

प्रकृति के –हास से जैवविविधता का खतरा तो है साथ ही मानव निर्मित विविध उद्योगधंदों का बढना, थर्मल पॉवर प्लॅंट का बढना गाडियों से निकलनेवाला धुवाँ, फ्रिज, एअर कंडिशनरों से निकलनेवाली गॅस आदि से पूरा पर्यावरण ही खतरे में हैं – जैसे

हमारी निठुरता भरी बेरूखी से
बहुत दूर तक छटपटाता है मौसम[12]

आज धडल्ले से विकसित हो रही बाजारवादी प्रवृत्ति के कारण मनुष्य स्वार्थी और भोगी बन रहा है, अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए प्रकृति को नुकसान पहुँचा रहा है। प्रदूषण के कारण हम विविध बिमारियों के शिकार हो रहे है। जल, वायु, ध्वनि, मृदा प्रदूषण के साथ-साथ किरणोत्सर्गी प्रदूषण से हमारा स्वास्थ खराब होते जा रहा है। हमे अब अत्याधिक सजग होने की जरूरत है। सचेत करते हुए वशिष्ट जी लिखत हैं –

हमारे बिना तुम भी जी ना सकोगे
ये एहसास हमको कराता है मौसम[13]

भारत में आदिवासी समाज के लोग वनस्पतियों को देवता मानकर पूजते है। हमारी वृक्ष संपदाओं को बचाने के लिए ‘चिपको आंदोलन’ मुंबई का ‘आरे बचाव’ आंदोलन चलाया गया। धरती को माता माना जाता है। धरती जैसे हमें जिन्दा रहने के लिए खाना-पानी देती है वैसे मृत्यु पश्चात वहीं हमें अपने गोद में भी सुलाती है इसलिए धरती को, पेड-पौधों को अपने पर्यावरण को बचाना हमारी जिम्मेदारी है। केवल ग्रेटा थनबर्ग जैसी युवती इसे बचा लेगी यह केवल भ्रम है। पर्यावरण को बचाना हम सब का कर्तव्य ही नहीं जिम्मेदारी भी है। इसे बचाना ही होगा। जैसे -

वनस्पतियाँ हमारी धरती माँ की सहेली हैं
इन्हें मारा अगर तो माँ के हत्यारे कहलायेंगे[14]

निष्कर्ष -

विकास का चक्र तो निरंतर चलनेवाला है इस विकास के साथ-साथ पर्यावरण की हानि भी निरंतर होती रहेगी। प्रकृति पर अगर हम हमला करेंगे तो वह बदला लेकर रहेगी। मनुष्य ने जो पानी, हवा, जमीन प्रदुषित की है उसका परिणाम तो हमें भोगना ही पडेगा। भूकंप, बाढ, आर्वषण, भुस्खलन, त्सुमानी जैसी आपदाओं का सामना तो करना ही पडेगा।

डॉ. अनूप वशिष्ठ इन सभी समस्याओं से, उससे निर्माण गंभीर परिस्थितियों से हम सचेत करते है। डॉ. अनूप वशिष्ठ अत्यंत संवेदनशील गजलकार है। पर्यावरण उनका प्रिय और चिंता का विषय रहा है। हमें सचेत कराते हुए उन्होंने अपने गजलों का निर्माण किया है।

सारी सृष्टि का आधार प्रकृति है, हम प्रकृति को ईश्वर भी मानते है। जो हम खाते-पिते, ओढते, पहनते है सबकुछ हमें प्रकृति ही देती है। प्रकृति को बचाना ही होगा। हम पर्यावरण अर्थात प्रकृति के साथ जो व्यवहार कर रहे हैं वह चिंता की बात है। इस कुचक्र से बाहर निकलकर हमारे पर्यावरण की रक्षा खुद अपने से ही शुरू करनी होगी तभी हम अगली पीढी को कुछ दे सकेंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रेखा मधुवाल – पर्यावरण और प्रदूषण – आवरण से गुंजन प्रकाशन दिल्ली – प्र. सं. 2007
2. डॉ. अनूप वशिष्ठ – मशाले फिर जलाने का समय है पृ. 71
3. राजसूर्य प्रकाशन दिल्ली – प्र. सं. 2013
4. https://www.kailasheducation.com
5. डॉ. अनूप वशिष्ठ – रोशनी खतरे में है पृ. 27 उद् भावना प्रकाशन दिल्ली, प्र. सं. 2006
6. वहीं पृ. 50
7. वहीं पृ. 50

8. वहीं पृ. 27
9. वहीं पृ. 27
10. वहीं पृ. 33
11. वहीं पृ. 27
12. वहीं पृ. 48
13. वहीं पृ. 49
14. वहीं पृ. 49
15. वहीं पृ. 27

हिंदी साहित्य में पर्यावरण विमर्श

1. प्रा. डॉ. नाजिम इसाक शेख
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
श्री. विजयसिंह यादव महाविद्यालय,
पेठ वडगाव जिल्हा कोल्हापुर
मोबाईल: 9209106575
2. अश्विनी जगदिप थोरात
शोध-छात्रा
शिवाजी विश्वविद्यालय कोल्हापुर
मेल :
ashwinithoratias@gmail.com

शोध-सार :

पर्यावरण विमर्श आज हमारे लिए अति आवश्यक विषय बन चुका है। आज हम पर्यावरण के प्रश्नों से भाग नहीं सकते। हमारे उपभोग की प्रवृत्ति इतनी बढ़ गई है कि इसका सारा प्रभाव प्रकृति पर पड़ रहा है। अपने उपभोग के लिए हम प्राकृतिक संसाधनों का धडल्ले से प्रयोग कर रहे हैं। जल, जंगल, वायु, जमीन, आकाश जैसे प्रकृति प्रदत्त चीजों का हमने इतना दुरूपयोग किया है कि ये सारे आज संकट में आ गए हैं। इस आलेख में समकालीन कहानिकारों की कहानियों में व्यक्त पर्यावरणीय चिंता एवं चेतना की पड़ताल की गई है।

बीज शब्द : पर्यावरण विमर्श, बहुराष्ट्रीय कम्पनी, विस्थापन।

मूल आलेख :

प्रकृति का संकट में आना हमारे अस्तित्व के लिए खतरनाक है। हमने गहरी नींद से जगने में बहुत देर कर दी है। हमने अपने कर्मों से बहुत कुछ बर्बाद कर लिया है और अब जो बचा है, उसके प्रति हम अगर सचेत न हुए तो भावी पीढ़ी के भविष्य को हम अंधकार में ढ़केल के ही दम लेंगे। यही कारण है कि आज पूरे विश्व में पर्यावरण से जुड़े मुद्दों पर विमर्श की आवश्यकता महसूस की जा रही है। 'डायलेक्टिक्स ऑव नेचर' पुस्तक में प्रकृति से छेड़खानी के दुष्परिणाम बताते हुए फ्रेडरिक एंगेल्स कहते हैं – प्रकृति पर मनुष्य की विजय को लेकर ज्यादा खुश होने की जरूरत नहीं, क्योंकि ऐसी हर जीत हमसे अपना बदला लेती है। पहली बार तो हमें वही परिणाम मिलता है जो हमने चाहा था, लेकिन दूसरी और तीसरी दफा इसके अप्रत्याशित प्रभाव दिखाई पड़ते हैं जो पहली बार के प्रत्याशित प्रभाव का प्रायः निषेध कर देते हैं।

भारतीय संस्कृति में वन और वनस्पति का बहुत अधिक महत्व रहा है। ऋषि मुनियों का आश्रम वनों में ही होता था। मानव, वन्य जीव, प्रकृति के बीच पारस्परिक सम्बंध हुआ करता था। वेदों, उपनिषदों आदि ग्रन्थों में मनुष्य के स्वस्थ जीवन के लिए पर्यावरण को महत्व दिया गया है। हमारी संस्कृति में प्रकृति हमेशा से पूजनीय रही है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने निबंध 'कुटज' में लिखा है –"यह धरती मेरी माता है और मैं इसका पुत्र हूँ। इसीलिए मैं सदैव इसका सम्मान करता हूँ और मेरी धरती माता के प्रति नतमस्तक हूँ।" (द्विवेदी 32) अग्नि, नदी, वृक्ष, सूर्य, पशु-पक्षी सारे पूजनीय रहे हैं। यूरोप की तुलना में भारतीय संस्कृति हमेशा प्रकृति से सामंजस्य बैठाती आई है, किन्तु यूरोप की औद्योगिक क्रांति, पूँजीवादी विकास, वैज्ञानिक उन्नति, विश्व युद्ध, शीत युद्ध, ओजोन क्षरण, परमाणु परीक्षण, वैश्वीकरण आदि ने प्रकृति के साथ हमारे रिश्तों को नष्ट कर दिया है। मानव जाति की एकपक्षीय विकास ने प्रकृति को बहुत नुकसान पहुँचाया है। आज हमारे चारों तरफ महामारी फैली हुई है, न साँस लेने के लिए शुद्ध वायु, न पीने के लिए शुद्ध जल मिल पा रहा है, ओजोन होल लगातार फैल रहा है, ग्लेशियर पिघल रहा है, पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है, खाद्य वस्तुएँ विषाणु युक्त हो गई हैं, हमारे लिए पर्यावरण को बचाने की बड़ी जिम्मेदारी आ पड़ी है। यही पर्यावरण विमर्श की आधारभूमि है।

नदियों पर बड़े-बड़े बाँधों के निर्माण ने नदियों की गति रोक दी है, जहाँ विकास के लिए बड़े-बड़े बाँधों का निर्माण आवश्यक है, वहीं इसके कई दुष्परिणाम देखे जा सकते हैं। जिस देश में नदी को ईश्वर मान कर पूजा जाता है, उसी देश में नदी की ऐसी दुर्गति हो रही है। कारखानों से लेकर घरों तक की सारी वर्जित चीजें नदी में ही फेंकी जाती है। बड़े- बड़े शहरों के कचरों से भरे नाले के मुहाने नदी पर ही जाकर खुलते हैं। एस. हारनोट की कहानी 'एक नदी तड़पती है' में विकास के नाम पर बाँधों के निर्माण एवं उससे लोगों के विस्थापन के साथ ही साथ एक नदी के तड़प कर मरने की व्यथा दिखाई गई है। किस प्रकार कम्पनी के बड़े बाबुओं और

नेताओं ने आधुनिक यंत्रों के साथ नदी पर बेरहम आक्रमण शुरू कर दिया और नदी तड़प- तड़प कर मरने लगी। कहानी में लेखक लिखते हैं- नदी धीरे- धीरे कई मीलो तक घाटियों में जैसे स्थिर व जड़ हो गई थी। उसका स्वरुप किसी भयंकर कोबरे जैसा दिखाई देता था मानो किसी ने उसकी हत्या करके मीलों लम्बी घाटी में फेंक दिया हो। अब न पहले जैसा बहते पानी का नदी- शोर था न ही कोई हलचल। (हारनोट 69)

कहानी में सतलज नदी पर बाँध बनाने के लिए लोगों की जमीनें जबरदस्ती खरीदी जा रही थी। गाँव के गाँव विस्थापित कर दिया गया था। सुमन को अब नदी की मीठी आवाज सुनाई नहीं देती। वह देखता है कि नदी किस प्रकार घुट- घुट कर मर रही है। बाँध के वजह से नदी के स्थान पर बहुत बड़ी झील बन गई है। वहाँ कई गाँव समा चुके थे। कहानी में लेखक दिखाते हैं- नदी का सौदा हो गया था। उसका पानी बूँद- बूँद बिक गया था। उसके बहाव, उसकी निरन्तरता और उसके निर्मल जल से सनी लहरों पर कम्पनी का कब्जा हो गया था। न जाने कितनी पीढ़ियों से अपनी- अपनी जमीन पर रचे – बसे लोग, उनके घर- आँगन, बाहर – भीतर स्थापित देवताओं की छोटी-छोटी देहरियाँ, गौशालाएँ, उनकी कच्ची भीतों में सारी पशुओं की रम्भाहटें देखते ही देखते वहाँ दफन हो गई थी (हारनोट 76)

नदियों पर बाँध बनने से जिस प्रकार नदियों का अस्तित्व संकट में आ गया है, पर्यावरण पर इसका गहरा प्रभाव पड़ रहा है। प्रदीप जिलवाने की कहानी 'भ्रम के बाहर' में भी लेखक ने जलपरी के माध्यम से पर्यावरणीय संकट एवं नदियों के विनाश की पीड़ा को व्यक्त किया है। जिस नदी में साल भर पानी रहता था, बाँध की वजह से अब वह बरसाती नदी बन चुकी है। नदियों पर कारखानों के रासायनिक गंदगी मिलने से नदी दुषित हो गई है। कहानी में जलपरी अपनी व्यथा सुनाते हुए कहती है- कल घूमते – घूमते नदी से आगे तक निकल गई थी, तो वहाँ पानी इतना विषैला था कि मेरी सांसे लगभग बंद हो गई थी। मैं तत्काल पलट कर भाग आई। थोड़ी दूर वापस आई तो कुछ मछलियों ने बताया कि उधर आगे जाकर बहुत सी फैक्टरियो का विषैला रसायन और अपशिष्ट नदी में सीधे जाकर मिलता है, जिससे उस तरह की सारी मछलियाँ पानी में हर साल मर जाती है। (जिलवाने 236)

विकास की अंधी दौड में इंसान पूरी धरती को अपने तरीके से बनाने, बिगाड़ने या संवारने में लगा हुआ है। इंसान यह भूल चुका है इस धरती पर वह अकेला नहीं है। सृष्टि पर जितना अधिकार इंसानों का है उतना ही अन्य जीवों का भी। इस बात को समझाते हुए कहानी में जलपरी कहती है- विवेक! मनुष्य को यह समझने की सख्त आवश्यकता है कि यह दुनिया सिर्फ उसी के लिए या उसी के होने या न होने से नहीं है। यह धरती चींटी और चिड़िया की भी उतनी ही है, जितनी मनुष्य की है। यह धरती बाघ, चीते, हिरण, हाथी, खरगोश की भी है। पेड़ों की भी है, पेड़ पर रहने वाली कीड़ों की भी है। (जिलवाने 236)

आज शहर की नदियाँ नालों में परिवर्तित हो चुकी है। नदी के मरने, उसके तड़पने की आवाज इंसान सुन नहीं रहा है। कहानी में विवेक अपने बचपन की नदी तलाश करता है, जलपरी की तलाश करता है, किन्तु उसे कोई नहीं मिलता। वह सोचता है शायद नदी के मरते ही जलपरी भी मर गई होगी। नदी की ऐसी दशा मनुष्य के द्वारा फैलाए गए प्रदूषण की वजह से है।

जल, जंगल और जमीन पर जबसे कम्पनियों का अधिकार हुआ है, जल, जंगल और जमीन पर आधारित करोड़ों लोगों को अपना व्यवसाय, अपने स्थान छोड़कर विस्थापित होना पड़ रहा है। जल, जंगल और जमीन पर कम्पनीवालों के अधिकार होते ही पर्यावरण के विनाश की प्रक्रिया शुरु हो जाती है। जयश्री राय की कहानी 'खारा पानी' गोवा के समुद्री जीवन पर आधारित उन मछुआरों की कहानी है जिसके समुद्र पर अब कम्पनी वालों का अधिकार हो गया है। समुद्री मछली पर जीवन यापन करने वाले मछुआरों को विस्थापित होना पड़ रहा है। साथ ही बड़े- बड़े जहाजों के कचरे और उससे रीतते तेल की वजह से समुद्र का जल दुषित हो रहा है। समुद्री इको सिस्टम नष्ट हो रहा है। लेखिका यह दिखाती है कि समुद्र किनारे पाँच सितारा होटल बन रहा है। कंक्रीट के जंगल उभर रहे हैं, इसके लिए तटों पर बसे सैकड़ों वर्ष पुराने गाँवों को उजाड़ा जा रहा है। उन लोगों से उनकी सभ्यता, संस्कृति, आजीविका सभी छीना जा रहा है। सैलानियों के द्वारा फैलाये गए प्रदूषण से समुद्री जीव मर रहे हैं। कहानी में रामा कहता है- कुदरत ने हमें जो दिया था, हम उसी में संतुष्ट थे। सर पर आकाश था, नीचे धरती का बिछौना..... अपने जल, जंगल, जमीन से हमें सब कुछ मिल जाता था, दो वक्त की रोटी, नींद और सुकून.... मगर अब तो सब छीन गया। न गरीबों के सर पर आकाश रहा, न पाँव के नीचे जमीन...... आजादी, उन्नति, आधुनिकता के नाम पर सब झपट ले गए।

विकास के नाम पर जिस प्रकार हमने जंगलों का दोहन किया है, इसी का दुष्परिणाम है कि आज हमें चक्रवात, बाढ़ जैसे प्राकृतिक आपदाओं का अधिक शिकार होना पड़ रहा है। 'कजरी और एक जंगल' ऐसे ही पर्यावरण के चिंता को केन्द्रित करती कहानी है, जिसमें जंगल को देवता माना गया है। एक विश्वास है कि यह जंगल लोगों की हर परिस्थिति में जान बचाता है। कजरी अपने पिता के साथ जंगल के मुहाने पर ही एक झोपड़ी में रहती है। उसे जंगल से बड़ा प्यार है। उसके पिता भी रोज जंगल से सुखी लकड़ियाँ, कुछ फल और फूल लेकर आते हैं। लकड़ियों को बाजार में बेचकर ही उनकी जीविका चलती है। लेकिन इस जंगल पर अवैध व्यापारियों की नजर पड़ गई है, वह जानवरों का शिकार करते हैं, पेड़ों को काटकर तश्करी करते हैं। कजरी इन लोगों को एक

बार देखती है और अपने बाबा से कहती है – बाबा देखों, ये लोग जंगल के पीछे ही पड़े हैं, जब देखो तब ये आते हैं और जानवरों को मार देते हैं और फिर उनकी खाल बेच देते हैं। कभी चोरी से पेट काटकर लकड़ियाँ ले जाते हैं। (भार्गव 45)

कजरी का गाँव और आस-पास के गाँव जब पूरी तरह तूफान के चपेट में आ जाता है और कई गाँव जलमग्न हो जाता है तो कजरी ऐसे तूफान और बाढ़ का कारण भी मनुष्य को ही मानती है, वह कहती है- पता है बाबा, ये जो लोग रातों रात जंगल और पेड़ काट रहे हैं, यह सब इसी वजह से हो रहा है। तूफान तो पेड़ों के बड़े-बड़े चेहरे से ही डरता है। उसने देखा कि लो अब तो कोई खतरा ही नहीं है, क्योंकि गाँव वालों ने तो मूर्खों की तरह सारे पेड़ काट दिए है, इसीलिए उसे अब कोई नहीं रोक सकेगा। तभी तो तूफ़ान की गर्जना, बारिश और तेज हवाओं के साथ मिलकर फिर इतनी आक्रमक हो जाती है, हम चाह कर भी कुछ नहीं कर पाते हैं। पता नही ये गाँव वाले कब जंगल और पेड़ों की महत्ता को समझेंगे। (भार्गव 46-47)

लोग जंगल तो काट ही रहे हैं, विकास के नाम पर सरकार भी उद्योगों के विकास के लिए जंगलों को काटकर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को जमीन मुहैया करा रही है। वह बड़े- बड़े पूँजीपतियों से नये – नये समझौते कर जंगल को कम्पनियों के नाम कर रही है। सेज (SEZ) के नाम पर जंगल और पहाड़ को बर्बाद किया जा रहा है, गाँव के गाँव उजाड़े जा रहे हैं, पेड़ काटे जा रहे हैं| सिमेंट और क्रेसर मशीन लगवाकर पर्यावरण नष्ट किया जा रहा है। 'मुरारी शर्मा' अपनी कहानी 'प्रेतछाया' में ऐसे ही गाँव का चित्रण करते हैं, जहाँ विकास के नाम पर जंगल का दोहन किया जाता है। देवधाम के नाम पर पहाड़ में मंदिर की स्थापना की जाती है और देखते ही देखते मंदिर के आस-पास की भूमि पूँजीपतियों के नाम हो जाती है। विधायक भी इस काम में भरपूर मदद करते हैं- विधायक के कहने पर इस सड़क को प्रधान मंत्री ग्रामीण सड़क योजना में डाल दिया गया। जंगल में ही आरा मशीनें लगाकर देवदार के पेड़ों को काट-काट कर स्लीपर बनाए गए। सैकड़ों देवदार के स्लीपर गाड़ियों में भरकर रातों-रात गायब कर दिए गए। (शर्मा 47)

कहानी में देवीराम नाम का प्रकृति प्रेमी है। उसी ने गाँव वालों की मदद से 120 बीघे जमीन में बान, देवदार और काफल के पौधे लगवाये थे। यह जंगल उसका घर है और सारे पेड़ उसके बच्चे। किन्तु, आज जिस तरह से विकास के नाम पर मंदिर ट्रस्ट और पूँजीपति वाले पेड़ों को काट रहे हैं, उनकी आँखों से आँसू की धारा बह निकलती है। -''उसने बच्चों से भी बढ़कर इन पेड़ों की देखभाल की थी। वह यह कभी बर्दास्त नहीं कर सकता था कि पैसों के लालाच में अंधा पुजारी हरे-भरे पेड़ों को काट डाले।'' (शर्मा 48) कहानी में जंगल को बचाने की मुहिम चलायी जाती है। पूरे गाँव वाले देवी राम की मदद के लिए आ जाते हैं। विमला इन सबमें लीड रोल निभाती है। वह लोगों से खुले तौर पर चुनौती लेती है। देवी राम विमला से कहता है – ''भगवान तेरा भला करे बेटी...इस जंगल को मैनें बच्चों की तरह पाला है। अपनी आँखों के सामने इन डाल बुटों को उजड़ते कैसे देखूँ....इन पर कुल्हाड़ी चलते मैं नहीं देख सकता।'' (शर्मा 49) सरकार उस जमीन को सीमेंट फैक्टरी लगाने के लिए अनुबंध कर चुकी है। ठेकेदार को तो बस मुनाफे से मतलब है। मंदिर की आड़ में वे जंगल और पत्थर का सौदा कर रहे हैं। विमला मिटिंग में कहती है – ठेकेदार ने मंदिर की आड़ में नाले के पास क्रेशर लगा दिया है। मंगतू प्रधान की जेसीबी दिन रात जंगल में तबाही मचा रही है। सोमू कारदार के टिप्परों पर पत्थर शहर में ले जाकर बेचे जा रहे हैं। और विधायक...वो भी बंजर जमीन को सोने के भाव सीमेंट फैक्टरी को देकर करोड़ों कमाना चाहता है। (शर्मा 50)

सबको पता है कि सीमेंट कारखाना लगता है तो फिर करीब 100 बीघे क्षेत्र में फैले गाँव का उजड़ना तय है, फिर भी कुछ लोग पैसे के लालच में अपनी जमीन बेचने के लिए राजी है। कहानी में पर्यावरणविद अपने भाषण में इसके दुष्परिणाम को बताते हुए लोगों को सचेत करते हुए कहते हैं- दूसरी ओर स्पेशल इकॉनोमिक जोन बनाने की तैयारी की जा रही है... बड़ी- बड़ी कम्पनियों के साथ जल विद्युत परियोजनाएँ और सीमेंट कारखाना लगाने के लिए धराधर एमओयू साईन किये जा रहे हैं। ये सभी कारखाने और परियोजनाएँ इन पहाड़ों के लिए ग्रहण के समान है जो यहाँ की हरियाली को चटकर जाएगी...पहाड़ खोखले हो जायेंगे। (शर्मा 51)

प्राकृतिक संतुलन का आधार जंगल है, जंगलों के विनाश के कारण ही कहीं अतिवृष्टि तो कहीं अनावृष्टि देखी जा रही है। भूमंडलीय ताप में वृद्धि का कारण भी जंगलों का नाश होना है। वायु की शुद्धता जंगल पर निर्भर है। किन्तु आज वैज्ञानिक उन्नति एवं जंगल के व्यवसायीकरण ने जंगल का विनाश कर डाला है। कहानी में जंगल इस मानव सभ्यता से बार – बार प्रश्न कर रहा है- देखो, पूरा - का – पूरा परबत मेरी देह से उखाड़कर लारियों में भरकर कहाँ ले जाया जा रहा है? मेरी धरती के पेट को क्यों चीरा जा रहा है? मेरी अस्थियों के अंदर सुरंग कौन खोदे जा रहा है? वो देखो, दूर से नजदीक आते हुए मेरी काया को रौंदते बुलडोजर, मेरे मस्तिष्क को खोदती मशीनें, मेरी नशों को छेद-छेद कर किए जा रहे विस्फोट। मेरी छाती पर चलती हुई, समूचे बदन को रौंदती-खूँदती-खोदती- खुखेरती मेरा खून पीती हुई बढ़ी चली आ रही यह फौज किन हमलावरों व लुटेरों की है? (मीणा 31)

हम मानव को जंगल के इस सवाल का जवाब देना होगा। जिस जंगल से हमारा जीवन जुड़ा है आज उस जीवन को ऐशो-आराम देने के लिए हम जिस प्रकार जंगलों का विनाश कर रहे हैं, एक प्रकार से यह हमारा ही विनाश है।

सूचना क्रांति के युग में चारों तरफ विकिरण का जाल फैला हुआ है। मोबाईल के आने से जहाँ पूरी दुनिया मुट्ठी में आ गई है, वहीं हम पूरी तरह से विकिरण के चपेट में आ गए है। आज मैदान से लेकर ऊँचे पहाड़ियों के घने जंगलों तक मोबाईल टावरों की पहुँच हो चुकी है। विकिरण के कारण जहां हम कई बिमारियों की चपेट में आ रहे है, वहीं कई जीवों का जीवन भी नष्ट हो चुका है। एस. आर. हारनोट की कहानी 'भागादेवी का चाय घर' वैश्वीकरण के उपरान्त फैले कम्पनियों के मायाजाल से उत्पन्न पर्यावरणीय संकट की कहानी है। कहानी कम्पनी के आने से नदी, झरने, जंगल के विनाश के साथ – साथ मोबाईल टावर के लगने से फैलने वाले विकिरण के दुष्प्रभाव को बयां करती है। कहानी में भागादेवी कम्पनी वालों का प्रतिरोध करती है। वह इस बात पर जोर देती है कि मनुष्य की रक्षा के लिए हर पशु-पक्षी का जिन्दा रहना जरूरी है। जंगल का बचा रहना जरूरी है। लेखक कहता है- जंगल का बचे रहना जरूरी है। बुरांश का खिले रहना जरूरी है। मोरों का नाचना जरूरी है। बर्फ का गिरना जरूरी है। देवदारूओं का जिन्दा रहना जरूरी है। कितनी सारी जरूरते हैं जिन्हें भागा बचाये रखना चाहती है। ये बचाव आज के क्रूर और हत्यारे होते समय से है। (हारनोट 17)

भागा देखती है कि अब कम्पनी वालों की नजर पहाड़ों पर है। वह पूरे पहाड़ पर टावर बिछाना चाहते हैं। अपने उत्पाद का विस्तार चाहते हैं। इन टावरों के विकिरण से उसके सर पर दर्द होता है। उसे महसूस होता है जैसे कुछ अदृश्य विकिरणें उस पर आक्रमण कर रही है। कम्पनी वाले भागा के शरीर पर विज्ञापन लगवाना चाहते हैं। शरीर पर छपे हर हिस्से के विज्ञापन की अलग – अलग कीमत लगाते हैं। भागा का पति भी कम्पनी की बातों में आ जाता है। अपने शरीर को विज्ञापन के लिए बेचे जाते देख भागा बाघिन बन जाती है। लेखक लिखते हैं- भागा अपने पति की आँखों में झांकती है। वे गहरे उन्माद, जुनून और मद से भरी हुई है। पुतलियों पर उसे कम्पनी के लोग नाचते दिख रहे हैं। वे भयंकर असुरी मुखौटा पहने हुए तांडव कर रहे हैं। वे सभी को भूमंडलीय बाजारी पैरों तले रौंदते हुए उन विशाल टावरों में लगी उल्टी छतरियों में पसर रहे हैं। (हारनोट 25)

वह पति को चांटा मारती है और पूरे कम्पनी वालों का विरोध करती है। लेकिन सच तो यह है कि आज हर कोई बाजारवाद के पीछे भाग रहा है। पैसे के लालच में अपनी जमीन और घर के छतों को कम्पनी के हवाले कर देते हैं। इसकी उन्हें मोटी कीमत भी मिलती है।

निष्कर्ष :

आज अपने भोग एव सुख की प्राप्ति के लिए हम प्रकृति के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं, इसका खामियाजा हमें तो भुगतना पड़ेगा ही, हमारी भावी पीढ़ी इससे और ज्यादा नुकसान झेलेगी। प्रकृति अपना बदली जरूर लेगी। आज असमय बारिस, बाढ़, भूकम्प, सुनामी केवल प्राकृतिक घटना न होकर मनुष्य सभ्यता के लिए भारी चेतावनी है। अगर आज भी हम नहीं सुधरे तो हमें भविष्य में अपना सब कुछ खोने के लिए तैयार रहना होगा। आज के कुछ रचनाकार अपने इस दायित्व को समझ रहे हैं और अपनी कहानियों के माध्यम से पर्यावरण चिंता को अभिव्यक्ति दे रहे हैं, किन्तु सच तो यह है कि अभी भी पर्यावरणीय समस्या केवल समस्या बनी हुई है, विमर्श का रूप नहीं ले पाया है। अतः जरूरत है कि पर्यावरणीय विमर्श पर अधिक से अधिक रचनाएँ आए ताकि सामाजिक क्रांति लाई जा सके।

संदर्भ :

1. शर्मा, मुरारी. 'प्रेतछाया', पहाड़ पर धूप. अंतिका प्रकाशन, 2015.
2. भार्गव, डॉ. रश्मि. 'कजरी और एक जंगल', मधुमती. मार्च-अप्रैल-2012.
3. हारनोट. एस. आर. 'भागादेवी का चाय घर'. किर्लें. वाणी प्रकाशन, 2019.
4. मीणा, हरिराम. 'जंगल में आतंक'. माँदर पर थाप. सं. अजय मेहताब. अनुज्ञा. 2019.
5. हारनोट, एस. 'एक नदी तड़फती है'. पहल. अंक-122, जून-जुलाई, 2020.
7. जिलवाने, प्रदीप. 'भ्रम के बाहर'. पहल. अंक-122, जून-जुलाई, 2020.

''मरंग गोडा नीलकंठ हुआ'' उपन्यास में विस्थापन तथा प्रदुषण विमर्श''

प्रोफेसर डॉ. साताप्पा शामराव सावंत
अध्यक्ष, हिंदी विभाग.
विलिंग्डन महाविद्यालय, सांगली.

सारांश:

उपन्यास में विवेचित पात्र सगेन पढ़ाई के दौरान झारखंड आंदोलन से जुड गया है। अपनी शिक्षा पूरी करने के पश्चात् वह जादूगोंडा में 'बेरोजगार विस्थापित संघ' की स्थापना करके आदिवासियों के हक अधिकार के प्रति अभियान चलाता है। वह एक सेमिनार मे परमाणु संयंत्रो तथा परमाणु बमों के संहारकता तथा विकीकरण की समस्या पर चिंता प्रकट करता है। परमाणु उर्जा कंपनी की नौकरी के प्रशिक्षण के दौरान संगेन भी पुरे नियम विकीकरण, अल्फा, बिटा, गामा, किरणें और उतकों को भेदने की क्षमता की गहन जानकारी प्राप्त करता है। जॉन नामक पात्र के साथ सगेन कुछ डॉक्टर मित्रो की सहायता से मरंगगोडा के आसपास गांव टोलो में स्वास्थ सर्वेक्षण करवाते हैं। परिणाम के आधार पर लडाई आगे बढती है। लडाई को और तेज और प्रभावी बनाने हेतु आंदोलनों पर डॉक्युमेंटरी फिल्म बनाने वाले आदित्य श्री को मरंगगोड मे आमंत्रित कर ''बुध्दा विपस इन जादूगोंडा'' बनाई जाती है। वे इस डॉक्युमेंटरी को अंतरराष्ट्रीय मंचों कार्यक्रमों में प्रदर्शित करके विकीरण के विरोध जनमत तयार किया जाता है।

बीज शब्द : प्रदुषण, विस्थापन, आदिवासी।

हिंदी उपन्यास साहित्य में आदिवासी उपन्यास साहित्य का अपना अलग स्थान रहा है। हिंदी आदिवासी उपन्यास साहित्य धारा में आदिवासी जनजीवन के विविध आयामों पर बेबाकी के साथ प्रकाश डाला गया हैं। इस श्रृंखला में मनमोहन पाठक, वीरेंद्र जैन, संजीव प्रकाश मिश्र, मैत्रेयी पुष्पा, मधुकर सिंह, राकेश कुमार सिहं, मंगल सिंह मुंज, शरद सिंह रामनाथ शिवेंद्र, रणेंद्र, महुआ मांझी आदि उपन्यासकारों के उपन्यासों का योगदान रहा हैं। महुआ माझी द्वारा लिखित ''मरंग गोडा नीलकंठ हुआ'' उपन्यास में चित्रित विस्थापन तथा प्रदुषण विमर्श पर प्रकाश डाला जा रहा हैं।

''मरंग गोडा नीलकंठ हुआ'' उपन्यास में विस्थापन तथा प्रदुषण विमर्श''

विवेचन उपन्यास जून, 2012 ई में राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली की ओर से प्रकाशित हुआ हैं। विस्थापन - प्रदुषण और विकीरण से प्रभावित संघर्ष करनेवाले - आदिवासी समुदाय पर लिखा प्रथम उपन्यास रहा हैं। विवेच्य उपन्यास आदिवासी - जीवन की बारीकियों के साथ जंगल जीवन के यथार्थ तथ्यों का प्रभावी चित्रण प्रस्तुत करता हैं। प्रस्तुत उपन्यास में झारखंड राज्य के सिंहभूम इलाका चित्रण केंद्र स्थान पर हैं। जहॉंपर युरेनियम की खदानें हैं। जहॉंपर रेडियों धर्मि का प्रकोप सतत जारी रहा हैं।

इसी इलाके में अपने ढंग का बिलकुल अलग ढंग का अनोखा सारडा का घना जंगल भी हैं। जहॉं सात सौं पहाडों तथा उसके पठारों एवं मैदानी इलाकों में व्याप्त हैं। प्रस्तुत इलाका आदिम प्रकृति, ताजगी मूल्यवान खनिजों और साल वृक्षों के लिए मशहूर हैं। लेकिन कुदरत की यह सौगात आदिवासी जनजीवन के लिए शाप का खतरा बन गया हैं। विशेष रुप से स्वाधीनता के पश्चात सारंडा के जंगल का विनाश लगातर जारी हैं। इस विनाश का सीधा संबंध सरकार की उपभोक्तावादी नीति के साथ जोडा जाता हैं। जिसकी वजह से आदिवासियों की जैव संसाधनों को विनाश किया जा रहा हैं।

महुआ माजी ने विवेचन उपन्यास में भारत के झारखंड राज्य के सिहंभूम के आदिवासियों तक इसे सीमित नहीं रखा। यह उपन्यास जापान, ऑस्ट्रोलिया और विश्व के विभिन्न खंडो में निवास, आश्रम बनानेवाले आदिवासी समुदाय के साथ सीधा जुड जाता हैं। इसी परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत उपन्यास अपने परिसर तथा जन जीवन की सक्ती विशेषताओं के कारण अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करनेवाला उपन्यास कहा जा सकता हैं। प्रसिध्द आलोचक वीरेंद्र जैन ने विवेचन उपन्यास के बारे में अपना मत प्रतिपादित करते हुए लिखा हैं। महुआ माजी का उपन्यास ''मरंग गोडा नीलकंठ हुआ'' अपने नए विषय में एक उल्लेखनीय पहलकदमी है। जब हिंदी की मुख्यधारा के लेखक हाशि के समाज को लेकर विभाग उदासीन हो तब आदिवासियों की दुर्दुभ और जीवन संघर्ष पर केंद्रित यह उपन्यास बडी रिक्तता की भरपाई हैं। इस उपन्यास में महुआ माजी युरेनियम की तलाश से जुडी जिस संपूर्ण प्रक्रिया को उजागर करती हैं। वह हिंदी उपन्यास का जोखिम के इलाके में प्रवेश है। महुआ माजी ने गहरें शोध, सर्वेक्षण और समाजशास्त्रीय दृष्टि का सहारा लेकर इस उपन्यास के माध्यम सें जरुरी हस्तक्षेप किया हैं।'' 1

लेखिका महुआ माजी के विचारों में स्वतंत्र भारत के स्वतंत्रता के पश्चात सरकार की विकास योजनाओं के चलते अपने हो जमीन तथा जंगल से विस्थापित होने आदिवासियों की पीडा को प्रभावी वाणी में अभिव्यक्ति दी हैं। विकास तथा विस्थापन का दौर केवल झारखंड ही नहीं बल्कि जहां भी खनिज संपदा की उपलब्धता देखी गई वहॉं पर खेल खेला गया। सन 1973 ई. में सरकार ने केंद्र पता व्यवसाय को राष्ट्रपति कृत घोषित कर दिया। इस नीति के फलस्वरुप आदिवासियों से रोजगार छीना गया,

उसके बाद सन 1976 ई में बिहार सरकार ने विश्व बैंक के सहयोग ''वन विकास निगम'' की स्थापना की जिसके कारण वनों को राष्ट्रीय संपत्ति घोषित कर दिया। इन्हीं वनों पर आदिवासियों का जीवन आश्रित है। जंगलों के समस्त वृक्षों को काटकर वहाँ व्यावसायिक दृष्टिकोन से ज्यादा लाभदायक तथा जल्द बढ़नेवाले सागवान, युकलिप्टस आदि वृक्षों को रोपा गया। इन पेडों से आदिवासियों को न तो कोई सांस्कृतिक जुडाव था और नहीं कोई आर्थिक लाभ रोजमर्रा को सामान्य चीजों से भी आदिवासियों वंचित कर दिया गया। साथ ही कोयला, लोह, अयस्क, तांबा, युरेनियम जैसे खनिजों के लिए आदिवासियों जंगलों से विस्थापित भी किया गया। प्रस्तुत उपन्यास में एक आदिवासी पान के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति प्रस्तुत करते हुए लिखा गया है - ''जंगल के बिना हम जिएॅंगे कैसे? हमारी झोपड़ी खटिया बनाने की लकडी और रस्सन्न जंगल से आती है। .... जब धन नहीं होता तब जंगली फल, मूल कंद आदि खाकर ही तो हम अपना पेट भरते है। लोह, तसर,गुटी, करंज के बीज, दोना पत्तल आदि बेचकर चावल नमक इत्यादी खरीदते हैं...... साल भर की लकड़ी और पत्तों के बिना शादी ब्याह से लेकर जन्म मृत्यु तक का कोई भी संस्कार संभव हैं क्या? .... जंगल में घूसने नहीं दिया तो हम अपने पशुओं को चराएगें कहाँ? खेत के चारों और बाड़ा लगाने हेतु टहनियाँ कहाँ से लाएॅंगे? हल, कुदाल, कुल्हाडी या हंसुआ जैसी खेती के औजारों से प्रयुक्त होनेवाली लकडियों का जुगाड कहाँ से करेंगे? सूप, टोकरा या चटाई कैसे बुनेगें। डियंग बनाने का रानु और बीमारों को ठीक करने की जडी बुटियाँ भी तो जंगल से आती है। ... बच्चे जंगल से आते जाते हैं। 2

लेखिका ने विवेचन उपन्यास में विकास तथा विस्थापन की चर्चा पर प्रकाश डालते हुए उसे विकीरण की समस्याओं और उसके परिणामों तक पहुंचाने की कोशिश की है। परमाणु ऊर्जा संपन्न स्थापित किए गए हैं। इन खदानों तथा परमाणु ऊर्जा संयंत्रो और उसके कचरे से होनेवाला विकीरण बहुत ही गंभीर और जानलेवा समस्या है। आज भारत मे ही नहीं बल्कि पुरी दुनिया मे ऐसी कई युरेनियम खदाने तथा परमाणु भट्टियाँ विकास के नाम पर स्थापित हुई है, कई स्थानों पर इसका काम भी चल रहा है, किंतु इन भट्टियों से निकलनेवाला परमाणु कचरा बेहद गंभीर खतरा बन बया है। परमाणु भट्टियों और उसके कचरे की चपेट में दुनिया के अलग अलग प्रदेश आ गए हैं। इस तरह विकीरण की चर्चा के परिप्रेक्ष्य में यह उपन्यास वैश्विक बन गया है।

प्रस्तुत उपन्यास में आदिवासी इलाखों में पर्यावरण का प्रभावी अंकन हुआ है। युरेनियम खनन, नाभिकीय उर्जा उत्पादन, विकीरणयुक्त कचरा तथा आदिवासी इलाको में डंम्पिंग ये युरेनियम विकीरण से प्रभावित व्याधि, रोगों के प्रति पाठक, सरकार का ध्यान आकर्षित करना लेखिका का उदेश्य रहा हैं। परमाणु संयत्रों तथा परमाणु कचरे के चलते धीमी गति से कई पीढियों का संहार हो रहा है। प्रस्तुत उपन्यास में विवेचित सगेन तीन पीढ़ियों के संहार का गवाह है। परमाणु उर्जा विभाग द्वारा नियंत्रित युसी आई एल विभाग बिना सुरक्षात्मक उपाय मसलन दस्ताने, विशेष ड्रेस आदि के बगैर खनिको को युरेनियम की खदानो में उतारता है। युरेनियम की पीली धूल खनिकों के कपडों जुतों पर पूत जाती है। इस धूल को को बेपरवाह गैर जानकर खनिकों के कपडों और जुतांे पर पूत जाती है। इस धूल को बेपरवाह गैर जानकर खनिक अपने घर ले जाता है। मजदूरों की पत्नियाँ युरेनियम धूल भरे कपड़ों को नंगे हाथों से धोती है, जिसके परिणाम स्वरुप कैंसर जैसी जानलेवा मृत्यु शिकार आदिवासी बन रहे हैं। युरेनियम विकीकरण प्रभाव चित्रण प्रस्तुत करते हुए लेखिका ने लिखा है- ''हैरानी होती है कि आखिर मरंग गोडा में ही क्यों रही है ऐसी बीमारियाँ? ... पडोसी जनमजय के बेटे का सिर अस्वाभाविक रुप से बड़ दिखा तो ---- तेतरी की बेटा भी लगभग वहीं हालत थी। फर्क सिर्फ इतना था कि सिर धड की तुलना मे बहुत छोटा था। निरंतर लंबे होते जा रहे थे। उँकुरा के आठ साल के बेटे के सूखे हाथ पॉव बाकी देह हर वक्त बिस्तर से लंगी रहती''3

उपन्यास में विवेचित पात्र सगेन पढ़ाई के दौरान झारखंड आंदोलन से जुड गया है। अपनी शिक्षा पूरी करने के पश्चात् वह जादूगोंडा में 'बेरोजगार विस्थापित संघ' की स्थापना करके आदिवासियों के हक अधिकार के प्रति अभियान चलाता है। वह एक सेमिनार मे परमाणु संयंत्रो तथा परमाणु बमों के संहारकता तथा विकीकरण की समस्या पर चिंता प्रकट करता है। परमाणु उर्जा कंपनी की नौकरी के प्रशिक्षण के दौरान संगेन भी पुरे नियम विकीकरण, अल्फा, बिटा, गामा, किरणें और उतकों को भेदने की क्षमता की गहन जानकारी प्राप्त करता है। जॉन नामक पात्र के साथ सगेन कुछ डॉक्टर मित्रो की सहायता से मरंगगोडा के आसपास गांव टोलो में स्वास्थ सर्वेक्षण करवाते हैं। परिणाम के आधार पर लडाई आगे बढती है। लडाई को और तेज और प्रभावी बनाने हेतु आंदोलनों पर डॉक्युमेंटरी फिल्म बनाने वाले आदित्य श्री को मरंगगोड मे आमंत्रित कर ''बुध्दा विपस इन जादूगोंडा'' बनाई जाती है। वे इस डॉक्युमेंटरी को अंतरराष्ट्रीय मंचों कार्यक्रमों में प्रदर्शित करके विकीरण के विरोध जनमत तयार किया जाता है।

विकीरण की भयावहता का अंदाज इस बात से लगाया जा सकता है कि यदि परमाणु उर्जा संयंत्र दुर्घटना से फट जाता है, तो उसके परिणाम कितने गंभीर हो सकते है, इसका अनुभव अमेरिका और रुस के परमाणु संयंत्र के फटने से दुनिया को हुआ है। विशेष उल्लेखनीय बात यह है की, चेरनोबिल हादसे से संयंत्र में मौजूद 190 टन युरेनियम के चार प्रतिशत से भी कम विघटित तत्व रियेक्टर के बाहर निकले थे। लेखिका युरेनियम की दाहता पर प्रकाश डालते हुई लिखती है - ''परमाणु संयंत्रों में एक हजार मेगा वैट

बिजली पैदा करने से करीब 27 किलोग्राम रेडिओ धर्मी कचरा उत्पन्न होता है और उसे निष्क्रिय होने मे एक लाख साल लग जाते है‘‘। 4

उपन्यास के अंत में सगेन लागुरी माओर (मरंगगोडाज ऑर्गनाइझेशन अगनेस्ट रेडिएशन)की स्थापना करता है - जिसके द्वारा तमाम दुनिया में युरेनियम रेडिएशन के खतरे और उसके कुप्रभाव से धरती के तापमान में होनेवाले असंतुलन और उसके दुष्परिणाम की चर्चा की गई है। विकास की ऑधी दौड में पर्यावरण और धरती के अपरिमित दोहन को रोकने की कामना उपन्यास के अंत में की गई है।

उपसंहार

महुआ मांजी द्वारा लिखित ‘‘मरंग गोडा नील कंठ’’ उपन्यास मे विस्थापन तथा प्रदुषण विमर्श का अध्ययन करनेपर प्राप्त निष्कर्ष इस प्रकार है - भले ही प्रस्तुत उपन्यास आदिवासी जनजीवन पर लिखा गया है। लेकिन यह रचना अपनी परिधि मे देश और दुनिया को अपने में समेटती दिखाई देती है। यथार्थ में यह वैश्विक उपन्यास है।

यह उपन्यास कथित विकास के छलावे भ्रम का पर्दाफाश कर देता है। प्रस्तुत उपन्यास मे वन, वन और खनिज संपदा का अपरिमित दोहन, विस्थापन, युरेनियम विकीरण, परमाणु अस्त्रों, आण्विक उर्जा के दुष्परिणाम, वैश्विक ताप वृध्दि जैसी गंभीर समस्याओं से अवगत कराता है।

संदर्भस्त्रोत

1. महुआ मांजी - मरंग गोडा नीलकंठ हुआ -प्रस्तावना वीरेद्र जैन प्र.- 10
2. महुआ मांजी - मरंग गोडा नीलकंठ हुआ प्र. 5
3. महुआ मांजी - मरंग गोडा नीलकंठ हुआ प्र. 120
4. महुआ मांजी - मरंग गोडा नीलकंठ हुआ प्र. 380

"हिंदी के स्वातंत्र्योत्तर पहाडी आंचलिक उपन्यासों में चित्रित उत्सव पर्व त्यौहार"

प्रा. डॉ. मनीषा बाळासाहेब जाधव
सहाय्यक प्राध्यापक (हिंदी विभाग)
कला व वाणिज्य महाविदयालय,
117, शुक्रवार पेठ, सातारा – 415001
मो. 8888411566
mbj2010@rediffmail.com

सारांश:

"पहाडी आंचलिकता" का सूक्ष्म अर्थ है सिर्फ उबड-खाबड और पथरीली चट्टानों से युक्त भूमी का वर्णन ही नहीं अपितु वहाँ के अज्ञानी, अशिक्षित शोषित, पीडित, उपेक्षित, दुखी मानव मन का चित्रण भी है जो उनकी मानसिकता की पर्तो को खोलता है | "पहाडी अंचल" “आंचलिकता” का नया और अनछुआ प्रकार है उसपर कुछ लिखना या वहाँ जाकर उनकी जानकारी पाना जैसे मुश्किल कार्य को कई लेखकों ने पुरा किया है |

स्वातंत्र्योत्तर कालखंड में "पहाडी आंचलिकता" का दौर शुरु हुआ | उसकी गति धीमी होने पर भी महत्वपूर्ण है | पहाडी अंचलों में यातायात का अभाव, अज्ञान, अंधश्रध्दा का प्रभाव होने पर भी आज तक आंचलिक उपन्यासकारों ने पहाडी भौगोलिकता की उँचाई, प्राकृतिक सुषमा, वहाँ का सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक जीवन, लोकसभ्यता, संस्कार, मनोरंजन के साधन, वेशभूषा, देवी-देवता, उत्सव पर्व तीज त्यौहार, प्रथा परंपरा आदि का विचार किया है |

बीज शब्द: आंचलिक, पहाडी, शोषण, उपेक्षित|

प्रस्तावना –

भारत में स्वातंत्र्योत्तर काल के हिंदी साहित्य में उपन्यास विधा लोकप्रिय रही है | उपन्यास "मानव जीवन" की पर्तो को खोलकर हमारे सामने रखता है | हिंदी उपन्यासकारों ने लोकसंस्कृति और लोकजीवन को साहित्य में स्थान देकर " जनवादी साहित्य" को बढावा दिया है| स्वातंत्र्योत्तर काल में हिंदी उपन्यास विधा ने एक नया प्रयोगधर्मी मोड लिया है| इसी कारण हिंदी उपन्यासों में नई धरती, नया राग, नया बोध, नई भूमि की आवाज सुनाई देने लगी है| अनदेखी, अनगोढी, अनछुई जमीन को तलाश ने का काम और उपन्यासकारों ने वहाँ जाकर वही के जनजीवन को यथार्थताँ के साथ चित्रित करने के कार्य हिंदी उपन्यासकारों ने किए है | कई दुर्गम भूभागों की यात्रा करके वहाँ के अदिवासीय जनजीवन को भी तलाश ने का कार्य उपन्यास लेखकों ने किया है | पहाडी प्रदेशों में जहाँ अदिवासी रहते है वहाँ यातायात के साधनों की कमी है| वहाँ के लोग प्रगति से कोसों दूर है | वहाँ विज्ञान की हवा अभी तक पहुँच नहीं पाई है| ऐसे पहाडी आदिमों के भूभागों की यात्रा करके वहाँ के वास्तव जीवन पर उपन्यास लिखे है|उपन्यासकारो ने अदिवासीयों के जीवन की इसमें अनुभूति और संवेदना को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है|

आंचलिक उपन्यास

हिंदी उपन्यासों के कई प्रकार है | इनमें से आंचलिक उपन्यास यह एक महत्वपूर्ण प्रकार है| इस प्रकार के उपन्यास में किसी अंचल या प्रदेश ग्रामीण वातावरण एवं संस्कृति का चित्रण किया जाता है जैसे ‘अंचल’ यानी एक ‘सीमित क्षेत्र’ या ‘जनपद’ या ‘कस्बा’ | अंचल का अर्थ "विशिष्ट भूखंड" डॉ. नंददुलारे वाजपेयी के अनुसार उपन्यास वह है जिसमे अविकसित अंचल विशेष के आदिवासियों के अथवा अदिम जातियों का चित्रण हो |[1] अत: स्वातंत्र्योत्तर आंचलिक उपन्यासों में युगीन जीवन के साथ पिछडे हुए उपेक्षित, अछूत जीवन को वाणी प्राप्त हुई है | फणीश्वरनाथ रेणु के "मैला अंचल" को शुध्द आंचलिक उपन्यास माना है तो इसका (आंचलिकता का) उद्भव नागार्जुन के ‘बलचनमा’ से मानते है लेकिन मूलत: देखा जाए तो प्रेमचंद, वृंदावनलाल वर्मा, अमृतलाल नागर, निराला आदि के उपन्यासों में आंचलिकता के दर्शन होते है | डॉ. इंदिरा जोशी के अनुसार "आंचलिक उपन्यास किसी विशिष्ट भाग अथवा प्रदेश विशेष को केंद्र बनाकर लिखा जाता है जिसमें जन-जीवन का चित्रण किया जाता है |"[2] डॉ. इंदिरा जोशी, डॉ. रांगेय राघव और हिंदी के कई विद्वानों ने "मैला अंचल" को हिंदी का प्रथम आंचलिक उपन्यास माना है | इसलिए रेणुपूर्व युग, रेणुयुग और रेणुत्तोर युगों में आंचलिक सहित्य का विकास देखा जाता है |

पहाडी आंचलिक उपन्यास -

अंचल[1] शब्द के अर्थ को व्यापकता देते हुए जनजाति मूलक अंचल, नदी अंचल, सागरांचल, पहाडी अंचल, विशिष्ट स्थानांचल जैसे अनेक आंचलिक उपन्यास लिखे गए | आंचलिक उपन्यासों में भारतवर्ष के विविध प्रांतों के अंचल में स्थित पिछडी जनजातियों (आदिवासीयों) की सामाजिक, आर्थिक राजनितिक, धार्मिक परिस्थितियों को दिखाने का प्रयत्न किया है |

हिंदी उपन्यासकारोंने "पहाडी अंचल" को देश को भी आंचलिकता का एक अंग माना है | देश के भौगोलिक भू-भागों की विभिन्नताओं के अनुसार पहाडी इलाका आज भी पिछड़ा और अछूता है | यहाँ के लोग अपनी परंपराओ का पालन करते हुए सबसे अधिक मूल्यवान जीवन पध्दती से चिपके हुए है | वे इस जीवन पध्दती को किसी भी कीमत पर छोड़ने को तैयार नहीं है | इन लोगों की जीवनशैली को खोजने का काम पहाडी आंचलिकता ने किया है | पहाडी भूभागों को विशिष्ट क्षेत्र मानकर और वहाँ पर निवास करनेवाले आदिम (अदिवासी) जनजातियों का चित्रण करना "पहाडी आंचलिकता" है जिसका आधार पहाडी जनजीवन है| सही अर्थो में "पहाडी आंचलिक उपन्यास वह उपन्यास हे जिसमें पात्रों के निर्माण में प्रकृति सहज सहयोग देती रहती है और जनपद के लोगों के जनजीवन का संवेदनक्षम चित्रण होता है | "

हमारे देश के कुछ क्षेत्रों में बाईस प्रतिशत भू-भाग पहाडों और जंगलों से घिरा हुआ है और इन पहाडी भूभागों में बसी हुई 414 जनजातियाँ है जिनको अभी तक सरकार द्वारा चलाई जा रही विकास योजनाओं से जादा लाभ नहीं हुआ है | "सन 1971 की जनगणना के अनुसार आदिवासी लोगों की जनसंख्या 29 लाख 54 हजार अर्थात उस समय की देश की कुछ आबादी के सात प्रतिशत आदिमों (आदिवासी) की आबादी है |"[3] आदिम जातियों में अज्ञान, अंधविश्वास अधिक मात्रा में दिखाइ देता है | ये आदिम (आदिवासी) अपने इस मर्यादित समूह (कबीलाई जीवन) जीवन में एक अलग विश्व का निर्माण कर चुके है और देश के विकास योजनाओं से दूर है | ये जनजातियाँ जंगलों पर आधारित वनैपजों, शिकार, मधुमक्खी पालन, खेती आदि के आधार पर जीवनयापन कर रहे है जिनका चित्रण करनेवाली रचनाएँ "पहाडी आंचलिक उपन्यास है" |

"पहाडी आंचलिकता" का सूक्ष्म अर्थ है सिर्फ उबड-खाबड और पथरीली चट्टानों से युक्त भूमी का वर्णन ही नहीं अपितु वहाँ के अज्ञानी, अशिक्षित शोषित, पीडित, उपेक्षित, दुखी मानव मन का चित्रण भी है जो उनकी मानसिकता की पर्तो को खोलता है | "पहाडी अंचल" "आंचलिकता" का नया और अनछुआ प्रकार है उसपर कुछ लिखना या वहाँ जाकर उनकी जानकारी पाना जैसे मुश्किल कार्य को कई लेखकों ने पुरा किया है |

स्वातंत्र्योत्तर कालखंड में "पहाडी आंचलिकता" का दौर शुरु हुआ | उसकी गति धीमी होने पर भी महत्वपूर्ण है | पहाडी अंचलों में यातायात का अभाव, अज्ञान, अंधश्रध्दा का प्रभाव होने पर भी आज तक आंचलिक उपन्यासकारों ने पहाडी भौगोलिकता की उँचाई, प्राकृतिक सुषमा, वहाँ का सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक जीवन, लोकसभ्यता, संस्कार, मनोरंजन के साधन, वेशभूषा, देवी-देवता, उत्सव पर्व तीज त्यौहार, प्रथा परंपरा आदि का विचार किया है |

आज हम इस शोधपत्र के माध्यम से पहाडी आंचलिक उपन्यासों में चित्रित उत्सव-पर्व-तीज-त्यौहार पर प्रकाश डालेंगे | ये पहाडी आंचलिक उपन्यास और उनके लेखक इस तरह है| जैसे शिवशंकर शुक्ल लिखित "मोगरा", सत्यप्रकाश पांडेय लिखित "चंद्रवदनी भगवतीप्रसाद शुक्ल लिखित "खारे जल का गाँव" नरेंद्र वर्मा लिखित "सुबह की तलाश", हिमांशु जोशी लिखित "कगार की आग", शैलेश मटियानी कृत "गोफुली गफुरन", राजेंद्र अवस्थी लिखित "जाने कितनी आँखे, शानी लिखित "शालवनों के द्वीप" तथा शिवप्रसाद सिंह लिखित "शैलूष शिवानी लिखित" भैरवी, राजेंद्र अवस्थी लिखित "जंगल के फूल" और सूरज किरण की छाँव" उपर्युक्त पहाडी आंचलिक उपन्यासों में बस्तर, अबुझमाड, उत्तरांचल, पूर्वांचल, हिमांचल नैनीताल, अलमोडाअंचल, विध्यांचल, बुंदेलखंड, छत्तीसगड, सुखापहाड, कुर्मांचल आदि भागों में स्थित माडिया गोंड, ओरछा, करनट, शिल्पकार, मुस्लिम बंजारा मुंडा आदि कई पहाडी अंचल के लोकजीवन का वर्णन किया है | आज हम यहाँ इस शोधपत्र में उपर्युक्त पहाडी आंचलिक उपन्यासों में चित्रित उत्सव-पर्व-त्यौहारों पर प्रकाश डालकर वहाँ के आदिम जनजाति का समाज जीवन देखेंगे |

पहाडी आंचलिक उपन्यासों में चित्रित उत्सव -पर्व -त्यौहार -

मानव का सामाजिक विकास उत्सव के कारण ही होता है | इसी कारण भारत देश में उत्सव, त्यौहारों का सबसे अधिक महत्व है | जैसे-जैसे धर्म का विकास हुआ नई देवी - देवता, नए संप्रदाय, नए अवतारों को मान्यता दी गई वैसे - वैसे उत्सवों की संख्या बढ़ने लगी | उत्सव, त्यौहारों के मूल में धार्मिक भावना ही दिखाई देती है | पर्व- त्यौहारों का सीधा संबंध रीति - रिवाज से है| हिंदू संस्कृति एवं समाज व्यवस्था में हर दिन का कुछ-न-कुछ विशेष महत्व रहता है | नागरी समाज की अपेक्षा ग्रामीण एवं पहाड़ी समाज जीवन में उत्सवों - पर्वों की प्रथा अधिक लक्षित होती है | महादेवशास्त्री जोशी जी ने उत्सव के चार भेद माने हैं – "1) देवताओं के सम्मान के लिए उत्सव, 2) देवताओं की कृपा के लिए उत्सव, 3)धर्म प्रवर्तक एवं महात्माओं के पुण्यस्मरण के लिए उत्सव, 4)प्राकृतिक एवं पंचमहाभूतों के लिए उत्सव|"[4] इसके साथ-ही-साथ पितृ पूजा, ऋतुपरिवर्तन पूजा, गण तथा ग्राम देवता, खेती कर्म आदि संबंधित भी उत्सव होते हैं | स्थानीय परिस्थिति, जाति, संस्कृति, सामाजिकता के संकेत, विश्वास तथा प्रथा आदि के कारण उत्सवों - त्यौहारों में विविधता दिखाई देती है | मगर ये सभी उत्सव -पर्व समाज जीवन का अंग बने हैं | सभी लोग उल्हास आनंद के साथ हर उत्सव मनाते हैं | इसी कारण महादेवशास्त्री जोशी कहते हैं, "जिस धार्मिक समारोह में लोगों को हर्ष, आनंद और मन:प्रसाद की अनुभूति मिलती है उसे "उत्सव" कहा जाता है|"[5] उत्सव -पर्व-त्यौहारों में सांस्कृतिकता एवं

भावात्मकता तथा एकता दिखाई देती है| धार्मिक भय की भावना, अंधविश्वास, श्रध्दा, किंवदंति कथा, उत्सव-पर्व के साथ जुडी हुई हैं |

देश -प्रेम विकसित करना, मानिसक शांति की प्राप्ति, यात्रा करना, धार्मिक शिक्षा देना, सामुहिक एकता, जीवन में चेतना जागृति करना, मनोरंजन करना, थकावट दूर करना, दुख से छुटकारा पाना, संस्कृति का ज्ञान देना आदि कारणों से उत्सव मनाए जाते हैं| लोकगीतों की परंपरा में प्रत्येक उत्सव के लिए निश्चित और निर्धारित गीत रहते हैं | ज्यादातर देवी - देवता के नाम पर उत्सव मनाए जाते हैं | हिंदी के स्वातंत्र्योत्तर आंचलिक उपन्यासकारों ने इस पर सोचा है - दीपावली, होली, मकर संक्राति, इरपूपांडुम, नुकानोरदाना पांडुम, काकसार पर्व, थौलमाता, बिदाई पर्व, लाडूकाज, नंदा मैया का मेला, शिव - पार्वती का मेला, नवरात्र, रामनवमी, सिरी पंचमी, वन मोहत्सव, टेसू पर्व, कारसदेव पर्व, हुडका बैल पर्व आदि उत्सव-पर्व पहाडी जनजातियों में मनाए जाते हैं | पहाडी अंचलों में स्थित जनजातियाँ भौतिक प्रगति, विज्ञान की धारा से सुदूर अंचल में अपना अप्रगत जीवनयापन कर रही हैं | मनोरंजन के साधनों का अभाव, सामुहिकता की भावना, धर्म की रक्षा के कारण पहाड़ीजन आज भी अपनी सांस्कृतिक विरासत की रक्षा कर रहे हैं| हम आलोच्य उपन्यासों के उत्सव – पर्व - त्योहारों पर सोचेंगे |

"मोंगरा" में छत्तीसगढ के रइपुरा गाँव का चित्रण हुआ है | यहाँ लोग दीपावली और होली का त्यौहार धूमधाम से मनाते हैं | यहाँ होली उत्सव पर बांस बजाना, गीत गाना आदि होता है| दीवाली में चारों ओर दीपों का उजाला कर रंग-बिरंगे कपड़े पहनकर लोग उत्सव मनाते हैं | औरतें -और पुरुष गाना गाकर आपना आनंद प्रकट करती हैं, जैसे-"थनवारिन ने अपने साथ की लडकियों से कहा चलो गोई गाएं फिर सभी लडकियों ने

"सुअना रेसुअना, भई मोरे सुअना
पहली गवन के मैं डेहरी बइठारेंव
कि गोसइया गये रन जूझ ...|"[6]

यह गाना अपनी कमर झुकार ताली बजाते हुए शुरु कर दिया | इस अवसर पर सुआ गीत प्रकार गाया जाता है |

"चंद्रवदनी" में उत्तराखंड पावन पर्वतांचल के हिंडोली खाल पर्व, नवरात्र आदि उत्सव पर्वों का चित्रण किया है | हिंडोलाखाल पर्व में ढोल और दमों की गूँज तीव्र होती है | हिंडोलाखाल पर्व में जुलूस निकालते हैं, "प्रौढ, वृध्द और स्त्रियाँ जुलूस के सबसे पीछे होती हैं तथा ढोल दमौं जिस ताल पर बजते, उसी ताल पर नाचते, कूदते नौजवान भैसों पर दनादन प्रहार करते हुए तामसिक एवं रौद्र रुप का प्रदर्शन करते हैं"|[7] इस तरह यह मेला रौद्र लीला का रुप दिखाता है अत: नवरात्र उत्सव के अवसर पर भक्तों से पैसे लेकर भक्तों के स्तर बनना, यह धन कमाने की प्रथा दिखाई देती है | स्पष्ट है यहाँ सांप्रदायिकता की दग्धता एवं झूठी धार्मिकता में पहाडी अंचल जल रहा है |

"खारे जल का गाँव" में विंध्याचल में स्थित मकर संक्रांत के समय गोदावल मेला लगता है | इसमें शिव-पार्वती का विवाह होता है आदि रुप में यहाँ उत्सव पर्व मनाते हैं | उन पर्वों में सभी जाति के लोग शामिल होते हैं | साल में एक बार सोननदी के पास के देवगाँव के गोदावल कुंड पर "गोंदावल मेला"आयोजित किया जाता है, जिसमें सभी धर्मों के लोग सम्मिलित होते हैं | जातीय भेदभागव यहॉ नहीं होता | "दो-दो चार चार का गोल बांधकर मर्द - औरंते, बच्चे-बूढ़े-प्रौढ़ गोदावल कुंड़ में पुण्य स्नान करने के लिए चल पडते हैं | अत: ये लोग मकर संक्राति के लिए तिल के लड्डू, लाई-फूटा, खिचडी अपनी -अपनी पोटली में बांधकर मेले में जाने की तैयारी करते हैं |" [8]

"सुबह की तलाश" में ग्रामोत्सव मनाया जाता है | गाँव के स्कूल में ही जलसा होता है| अत: इस ग्रामोत्सव में स्कूल के लडकें मूकभिनय-ढोला-मारु करते हैं जो छत्तीसगढ की प्रसिध्द गीत-कथा है | उसे देखने के लिए आसपास के गाँव के लोग आते हैं अत गाँव मे नवरात्र उत्सव भी मनाया जाता है | पहले दिन जंवारा के गीत सारे गाँव में गाए जाते हैं और गाते गाते गवैयों पर देवता भी चढ जाते हैं | इस तरह यह मेला उत्सव धार्मिक अंधश्रध्दा को दर्शाता है |

"कगार की आग" "देवीधूरे" का मेला मनाया जाता है देवीधूरे के मेले में गोमती और धरी साथ - साथ गई थीं, दोनों सहेलियों ने मेले में "सारी – सारी रात झोंटे गाए थे | हुडके की ताल तर थिरकती रही थीं – उडती रही थीं हवा में |"[9] अत: यहाँ पहाडी लोग नारियाँ मेले में उत्साह से सम्मिलित होते हें और मेले का आनंद लुटते हैं | लोहाघाट में "फूलडोल" का मेला मनाया जाता है | "मेले में जाकर खुशाल ने खुले हाथ से खर्च किया | गोमती के लिए फंदे खरीदें, चूड़ीयाँ खरीदीं, माथे पर लगाने के लिए बड़ी-बड़ी लाल बिंदियाँ खरीदीं | चटक – मटक रेशमी रुमाल !"[10] इस तरह मेले में अनेक चीजें खरीदती है तथा पुरुष भी मेले का पूरा आनंद उठाते हैं, लगता है यहाँ त्यौहार खुशियों का ही "पर्व" है |

"गोपुली गफूरन" में अलमोड़ा की शिल्पकारीन जाति की व्यथा-कथा है |उनमें स्थित नंदा मैया का मेला, हुडका बैल आदि उत्सव -पर्व दिखाई देते हैं | नंदा मैया के मेले में सभी लोग सम्मिलित होते हैं | गोपुली कहती है "देबा दिदी, बस उस बरस

जलेबी जैसी जलेबी खाई थी - नंदा मैया के कौतुक में |"[11] अत: मेलों में मिठाइयाँ खाना, पहाडी नारी का शौक है तो देबुली गोपुली से कहती है, "मैने तो जलेबी यहीं सेराघाट में खाई है, उत्तरायणी के मेलों में, वो भी तेल की |"[12] तो "हुडकाबैल" मेले को सामुहिक श्रम की उपासना का मेला कहा जाता है | "जिस खेत में गोडना शुरु होता है - पूर्व की तरफ से एक किनारे बौल लगानेवाले लोकनायक खडे रहते हैं | भूमि-देवता, पशु - देवता और अन्य देवताओं की आराधना के बाद, अब बफौलों की वीरगाथा शुरु होती है| सारे पुरुषों और औरतों को एक लय में कर दिया है संगीत भरी गाथा ने|"[13] इस तरह यह मेला श्रम की थकावट दूर करनेवाला मेला है |

"जाने कितनी आँखे" में खम्हार खेडा गाँव में देवी मेला मनाया जाता है| सारा गाँव देवी को कुछ ना कुछ भेंट चढ़ाता है | बुंदेलखंड के अहीर और कुरमियों के आराध्यदेव "कारसदेव" का मेला मनाया जाता है | कारसदेव के सम्मान में जो समारोह होता है उसमें सारे पहाड़ीजन उपस्थित रहते हैं | अत: कारसदेव को रिझाने के लिए पंवारे गाए जाते हैं | बुंदेलखंड में टेसू पर्व साधारणतया कार्तिक में मनाया जाता है | इस उत्सव में गाँव के किसी भी लडके को टेसू बनाया जाता | टेसू का सारे गाँव में जुलूस निकलता है, हर घर वह टेसू जाता है | "इस साल सुवेगा टेसू बनी | उसके साथ दो सहेलियाँ चलीं | पीछा किया गाँव भर के लडके - लडकियों ने | घर चाहे मुसलमान हो चाहे हिंदू टेसू को दान देना जरुरी है|"[14] अत: यहाँ पहली बार नारी टेसू बनी है इस तरह पहाडी नारी हर उत्सव पर्व में सम्मिलित होकर पूरानी प्रथा को तोडकर आनंद उठाती है |

"शाल वनों का द्वीप" में अबूझमाड के माड़ीया गोंड़ो की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि चित्रित की है | यहाँ माता बिदाई तथा काकसार पर्व मनाते हैं| काकसार पर्व जीवनसाथी तलाश ने का पर्व है | इसी कारण ये लोग काकसार पर्व की प्रतीक्षा करते हैं | इसमें प्रेमी-प्रेमिओं का मिलना, एक-दूसरों को पसंद करना, वैवाहिक बंधन होना, उसके बाद गाँव में विवाह का सिलसिला शुरु होना, अत: इसमें गोत्र देवता की पूजा करना, बलि चढ़ाना तथा प्रार्थना करना, नगाड़े के ध्वनि बजाना, भोजन करना, लुस्के के शरीर में देवता का प्रवेश होना, नृत्य करना, गाना गाना, नृत्य मे युवकों द्वारा युवतियों को आकर्षित करना, अंत में एक - दूसरे की अनुमति से झाड़ीयों की ओर जाना| "काकसार की सबसे बड़ी विशेषता तथा विचित्रता यही है की वहाँ आकर्षण का केंद्र युवक होता है युवती नहीं | नृत्य के दौरान प्रत्येक नर्तक इस बात पर प्रयत्नशील रहता है कि ज्यादा-से-ज्यादा आकर्षक वहीं दिखे ताकि युवती भी आकर्षित होकर पास चली आए नाच के लिए उसके संग की कामना करे|"[15] इस तरह ये पर्व युवतियों को पति चुनने का अवसर देता है |

माता बिदाई समारोह ओरछा में प्रकोप के फैलने पर मनाया जाता है | सारा गाँव मंदिर में इकट्ठा होता है | प्रकोपित लोगों का घुटनों पर बैठना, लस्के (मांत्रिक) में माता -दाई का संचार होना, जुलूस का शीतला माता मंदिर के पास पाहुँचना, कोपित व्यक्तियों में से किसी एक को देवी के पास बुलाना, बलिदान के रुप में एक रुपया, एक मुर्गी, बकरा, सूअर देने का आदेश होना, उपस्थित भीड द्वारा गाँव से देवी को बिदा करना इससे बीमारी का हटना, लोगों के हाथ में सूअर, मुर्गी, बकरा आदि का होना, भीड में हलचल शुरु होना, देवी के माथे पर टिका लगाना, लस्के द्वारा कोपित व्यक्तियों को भेंट देना, बलिदान स्थल पर बलि देना, अंत में घोटुल में शराब पीकर विराट भोजन का आयोजन करना | इस बारे में लेखक लिखते हैं, "माता बिदा के लिए आज सारा गाँव मंदिर के सामने इकट्ठा हो गया है | हर हृदय आभार और श्रध्दा से भरा हुआ | जो अछूते रहे वे तो कृतज्ञताभार से नत हैं, जिन पर कुपित होने के बाद भी माता दया कर, कई उनके मन के आभार व श्रध्दा को बता सकना साधारण बात नहीं|"[16] इस तरह यहाँ पहाडी जनों में उत्सव पर्व का स्थान अत्यंत श्रध्दात्मक रहा है |

'शैलूष' में विध्यांचल के रेवतीपुर के उत्सव पर्वो का चित्रण हुआ है | ये लोग रामनवमी, नवरात्र आदि उत्सव मनाते हैं | नवरात्र के समय सती मइया के मंदिर के पास मेले का आयोजन किया जाता है तो रामनवमी पर्व में सभी लोग उपस्थित रहते हैं | "कब तक पुकारुं" में होली, दीवाली पर्व मनाकर खुशियाँ लूटाते हैं | होली के उत्सव पर नाच-गाने का आयोजन करते हैं | 'अरण्य' में कुर्मांचल अलमोडा के उत्सव-पर्व के दर्शन होते हैं | यहाँ अंचलों में सामुहिकता दिखाई देती है जिसके बल पर सब उत्सव पर्वो का आनंद उठाते हैं | वनमहोत्सव, हरेल का मेला, नवरात्र, सिरी पंचमी, देवीधूर का मेला आयोजित करते हैं | अलमोडा अंचल का "वनमहोत्सव" सदियों पुरावा पर्व है | लेखक लिखते हैं, "गाँव गराम के बच्चों ने नए उत्साह के साथ "दक्षणायन का स्वागत किया |कन्याओं ने, बहू बेटियों ने वृक्षों की वंदना की वन महोत्सव का सदियों पुराना पर्व यों प्रारंभ हुआ |"[17] अत: दशमी के दिन 'फाटकशिला मेला" शुरु होता है और सिरी पंचमी का त्यौहार भी बड़े उत्साह से मनाया जाता है | देवीधूर मेले में हजारों की संख्या में बुढें, बच्चें, औरतें, मर्द सजधजकर आते हैं | रंगीली औरतें मर्द सजधजकर आते हैं | "रंगीली औरते, रंगीले मरदों के झुंड-झुंड बैरा गा रहे थे, औरतें उसकी बाहें थामकर नाचने के लिए लालायित रहती|"[18] इस तरह यहाँ वनमहोत्सव तथा अन्य उत्सव पर्वों में नारियाँ तथा पुरुष अपार खुशियाँ लूटाते हैं अत: वनमहोत्सव एक अनोखा पर्व लगता है जिसकी आज भी आवश्यकता लक्षित होती है | इसके सहारे वृक्षों का संवर्धन होगा | प्राय: वृक्ष प्रेमी पहाडीजनों के यहाँ दर्शन होते हैं |

'भैरवी' में कुमायूँ अंचल में स्थित शिवरात्री के मेले का वर्णन मिलता है | बीहड के जंगल में "बड़े मेले" का आयोजन किया जाता है, जिसमें हिंदू- मुसलमान सभी सम्मिलित हाते हैं वे सभी शिव के भक्ा होते हैं | यह मेला सांप्रदायिक एकता का प्रतीक है|

'जंगल के फूल' में लाडूकाज, दीवारी, कारापांडुम, इरपूपांडुम, नुकानोरदाना पांडुम आदि उत्सव पर्व मनाते हैं | लाडूकाज पर्व को गोंड वर्ष में एक बार मनाते हैं, इसमें नारायण देवता की पूजा करके भूत- प्रेत चुडैल से गाँव की रक्षा की प्रार्थना की जाती है | दीवारी उत्सव में 'घोटुल' के सदस्य नाचगाने में मग्न होते हैं | कारापांडुम त्यौहार के समय रातभर नाचगाना होता है और प्रात:काल में नारदेवी के पास पशुओं की बलि दी जाती है | 'इरपूपांडुम' भी इसतरह मनाया जाता है | नुकानोरदाना पांडुम में सब लोग देवता को इस तरह प्रार्थना करते हैं - "हे देवता, इसी तरह हमारे गाँव हर साल सोना उगलें |"[19] इस अवसर पर देवता को बलि चढाई जाती है | यहाँ स्पष्ट है की उत्सव- पर्व जैसे धार्मिक संस्कार के समय बलि देकर देवी - देवता को प्रसन्न कराने की प्रवृत्ति अज्ञान, अंधश्रध्दा का प्रतीक हैं |

"सूरज किरन की छाँव" में बंजारा, मुंडा जनजाति में स्थित उत्सव पर्व का चित्रांकन हुआ हैं | ये पर्व देवी देवता से संबंधित रहे हैं | यहाँ हरपूपांडुम, मरुका पांडुम, नुकानोरदाना पांडुम मनाते हैं | बंजारी इस त्यौहार का इस प्रकार वर्णन करती है – "नुकानोंरदानाड़ पांडुम का त्यौहार था | गाँवभर की लडकियाँ रीना नृत्य गा रही थी|"[20]यहाँ लड़कियाँ नाच -गाकर अपने प्रिय उत्सव मनाती हैं| यहाँ पर "रीना" आदिवासी युवतियों का प्रिय नृत्य है | इस तरह यहाँ उत्सव पर्व के अवसर पर महिलाओं का विशेष नृत्य गान होने के कारण उत्सव का महत्व दिखाई देता है |

निष्कर्ष -

आलोच्य उपन्यासों में वर्णित त्यौहारों का उद्देश्य सांप्रदायिक एकता बनाना, वृक्ष संवर्धन करना, कुरीति को मिटाना, विवाह की पूर्व पृष्ठभूमियाँ बनाना, सामाजिक एकता को बढावा देना रहा है | आज वर्तमान समाज व्यवस्था में इन सभी गुणों की आवश्यकता है अत: इन त्यौहारों के कारण अच्छे गुणों का विकास होना स्वाभाविक है तो इन त्यौहारों में बलि देने की प्रथा मानवहित के लिए ठीक नही हैं| पशू हत्या एक पाप है | इन उत्सव -पर्व त्यौहारों में सभी पहाडी जन सम्मिलित होते हैं अत : इस मौके पर पुरुष तथा नारियों का एक साथ गाना, नाचना और श्रम की थकावट दूर करना, सामुहिक भोजन करना, रोजमर्रा के भोजन से अलग स्वादिष्ट भोजन होना, मेले में नारियों का अनेक शृंगार वस्तुएँ तथा नए कपडें खरीदना, देवी-देवताओं की आराधना करना आदि क्रियाएँ इनको अपना दुख भूलाकर आनंद प्रदान करती हैं | यहाँ इन उत्सव पर्वो के मूल में धार्मिक भावना का प्रभाव ज्यादा दिखाई देता है अत: ये उत्सव - पर्व त्यौहार राष्ट्रीय एकात्मता बढ़ाने तथा वृक्षसंवर्धन के लिए महत्वपूर्ण माने जाते हैं | इसी त्यौहारों के कारण पहाड़ी लोग अदिवांसी विकास गति में प्रवाहित हो सकते हैं, मगर इन उत्सवों को राष्ट्रीय सतर पर स्थान मिलना आवश्यक है | उत्सवप्रियता मनुष्य की प्रवृत्ति है | नए कपड़े पहनना, गीत गाना, नृत्य करना, मेले में शामील होना, मिठाइयाँ तथा वस्तु खरीदना आदि के दर्शन यहाँ होते हैं | यहाँ परंपरागत ढंग से उत्सव मनाने की प्रवृत्ति है | कई उत्सव मानव के लिए उपयुक्त हैं, जिसमें जीवनसाथी चुनने की प्रक्रिया होती है जैसे- टेसू पर्व, गोदावल मेला, नुकानोरदाना पांडुम | आज के व्यस्त जीवन में भी खुशियाँ बाँटने के लिए, सुखी जीवन के लिए इसी तरह के उत्सवों की अनिवार्यता लक्षित होती है |

संदर्भ ग्रंथ - सूची

1) सारिका (पत्रिका),1969 पृ.91
2)हिंदी आंचलिक उपन्यास - डॉ. इंदिरा जोशी, (देवसागर प्रकाशन, जयपूर,
प्र. स. 1985) पृ. सं. 17
3) भारतीय अदिवासी - डॉ. गुरुनाथ नागगौंडा कॉन्टीनेंटल प्रकाशन, पुणे. प्र.स. 1979 पृ.14
4)मुलांचा संस्कृति कोश खंड- 1, संपा. महादेवशास्त्री जोशी (भारतीय संस्कृति कोश, पुणे.) पृ. 185
5) 'वही' पृ. 186
6) मोगरा - शिवशंकर शुक्ल, राजपाल ॲन्ड सन्स, दिल्ली प्र.स. 1990, पृ. 5-6
7) चंद्रवदनी - सत्यप्रसाद पाण्डेय - नैशलन पब्लिशिंग हाऊस हरियागंज,दिल्ली. प्र.स. 1971 पृ. स. 16.
8) खारे जल का गाँव - भगवतीप्रसाद शुक्ल,स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद.प्र.स. 1972, पृष्ठ - 9
9)कगार की आग - हिमांशु जोशी - भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली. प्र.स. 1976, पृ.5
10) 'वही' - पृ.36

11) गोफूली गफूरन - शैलेश महियानी, सरस्वती विहार, दिल्ली – 32 प्र.स. 1971, पृ.स. 15
12) ‘वही’ - पृ .सं. 16
13) ‘वही’ - पृ. स. 53
14) जाने कितनी आंखे - राजेंद अवस्थी - हिंदी प्रचारक संस्थान, पिशाचमोचन वाराणसी, दूवि. 1981, पृ. 120.
15) शाल वनों का द्वीप - शानी,नॅशनल पब्लिशिंग हाऊस दरियागंज, दिल्ली प्र.सं. 1971, पृष्ठ, सं, 61
16) “वही” - पृष्ठ सं. 49-50
17) अरण्य - हिमांशु जोशी - किताबहार, नई दिल्ली, द्वी.सं. 1993 पृ. 17
18) “वही” - पृ. सं. 117
19) जंगल के फूल - राजेंद्र अवस्थी - राजपाल ॲन्ड सन्स, दिल्ली, द्वि सं. 1996, पृ सं. 19

समकालीन कविता में पर्यावरण प्रदूषण

डॉ. आर. पी. भोसले
कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय,
पुसेगाव तहसिल खटाव, जि. सातारा.
ईमेल-bhosalerajendra501@gmail.com

सारांश -

धरती पर प्रकृति के विविध तत्वों के बीच संतुलन तभी बना रह सकता है। पेड -पौधे ऋतुओं का संचालन करते है, प्रदूषण का अवशोषण करते है और वातावरण को स्वच्छ एवं सुंदर बनाए रखते है। किसी भी देश के लिए वन-प्रदेश परिस्थिति, आर्थिक और पर्यावरणिक संपदा के अक्षुण्ण भंडार होते है। लेकिन हमारे देश का दुर्भाग्य यह है कि अनेकनिक कारणों से जंगल का भारी विनाश हो रहा है। कवि यह महसूस करते ही कि पेड कुल्हाडी का प्रहार चुपचाप सहता रहता है। एक वृक्ष काटने का अर्थ है कि सामूची परंपरा और संस्कृति का विनाश होना। कवि की चेतावनी है कि प्रकृति जो सबकी व्यवस्थापक है, हम इस व्यवस्था में रहना और इस प्रकृति की गोद में पलकर बडा होना चाहते है। तो हमें भी एक पेड लगाना और उसका संवर्धन करना। पेडों को कटने से हमेशा बचाना ही है। वृक्ष अपनी संपूर्णतः के साथ हमारे जन-जीवन में रचे बसे हैं। जनसंख्या विस्फोट, औद्योगिकीरण, शहरीकरण और तकनीकी विकास के कारण हमारे देश के वन और वनों की अमूल्य संपत्ति अब विनाश के कगार पर है। आज हम देख रहे है, मनुष्य की अदम्य आकांक्षाओं के बुलडोजर धरती की बेरहमी से रौंद रही है, कुचल रही है, खोद रही है और उजाड रही है।

बीजशब्द : प्रकृति, पर्यावरण, विस्फोट, औद्योगिकीरण, शहरीकरण, प्रदूषण

प्रस्तावना:-

पर्यावरण भी समकालीन कविता की केंद्रीय चिंता का एक उल्लेखनीय पक्ष है। यह आकस्मिक नहीं है कि समकालीन कविता में पर्यावरण -प्रदूषण से उत्पन्न चिंताएँ भी जहाँ-तहाँ झॉकती हैं। अनेक कवियों का मानना है कि आज की अनेक समस्याएँ प्राकृतिक संतुलन के बिगडने से पैदा हुई है। औद्योगिक और नागरीकरण की अंधा दौड ने प्रकृति को इतना क्षत- विक्षत किया है, उसका खामियाजा हमें कई स्तरों पर भुगतना पड रहा है। मौसम चक्र के गडबडाने से लेकर ओजोन की पर्त में छेद हो जाने के हादसे मामूली नहीं है और इसके दुष्परिणाम दूरगामी है। हिंदी के अनेक कवियों ने पर्यावरण संबंधी चिंता व्यक्त की है कि जब तकनीकी सभ्यता धरती से स्नायू यंत्र को छिन्न-भिन्न करेगी, प्रकृति की स्वाभाविकता को नष्ट करेगी, तब धरती और प्रकृति विक्षुब्ध होगी ही। कवि त्रिलोचन, केदारनाथ सिंह, रामदरश मिश्र, अरुण कमल, अशोक वाजपेयी, चंद्रकांत देवताले, एकांत श्रीवास्तव, ज्ञानेन्द्रपति, शिशुपाल सिंह, कमलेश भट्ट कमल, विनोद पदरज जैसे समकालीन कवियों ने अपनी कविताओं में इस तथ्य को बखूबी उभारने की कोशिश की है।

अपने समय एवं समाज के प्रति संवेदनशीलता रखनेवाले समकालीन कवियों की चिंता व्यक्त की है कि हमारी हवा प्रदूषित हो रही है, पानी और मिट्टी जहरीली हो गयी है, जंगलों का विनाश हो रहा है, पेड-पौधे अधिक मात्रा में कट गए है और इन सबसे मौसम निरंतर बदलता जा रहा है। कवि शिशूपाल सिंह ने महाराष्ट्र के भूकंप का कारण प्रदूषण की विकृति मानते हुए लिखा है-

> "फल रहा है प्रदूषण विकृति और विक्षोभ
> यथास्थिति से कहाँ मुक्ति
> कब तक चलेगा यह निर्मम चक्र
> नहीं चाहिए मुझे एक और लातुर।"[1]

हिंदी के अनेक कवियों ने हमारी शाश्वत प्रकृति है, जिसमें पहाड हैं, चट्टाने हैं, टीले हैं, पत्थर हैं, नदी- झीले हैं, पेड- पौंधे और वनस्पतियॉ हैं, उन सबके प्रति संवेदनाएँ प्रकट की हैं। प्रकृति में मनुष्य के जो अतिरिक्त हस्तक्षेप है, उनसे उत्पन्न समस्याओं के प्रति समकालीन कवि सचेत हैं। कवि ज्ञानेन्द्रपति के 'संशयात्मा' काव्य संग्रह की अनेक कविताएँ झारखण्ड के पहाडों का अरण्यरोदन सुनते हुए पहाडों की अंधाधुंध कटाई का चित्रण किया है -

> "अब आएँगे पर्वतों के पंख काटने वाले वज्रधर इंद्र के वंशज
> अपनी फटफटिया में भडभडिया में और फटाफट धडाधड
> चालू हो जाएँगे क्रशर, बारुद की गंध फैल जाएगी हवा में

उनके टूटने की गंध फैल जाएगी हवा में
उनके टूटने की गंध के ऊपर
और वे बोल्डरों में गिट्टियों में खंड-खंड हो जाएँगे।"[2]

नदी हमारे लिए माँ है, जीवन प्रदान करनेवाली है, वनस्पतियॉ देने वाली है और यहाँ तक कि हमारी संस्कृति को बनाने वाली भी है। आज ह्मारा देश पानी के भारी संकट का सामना कर रहा है। "कवि ज्ञानेन्द्रपति नदी को लेकर इतनी चिंता इसलिए प्रकट कर रहे है, ताकि गंगा या कोई भी नदी अब वैसी पावन, निष्कलुष और प्रदुषण मुक्त नहीं रहती है। हमारी नदियाँ, झीलें यहाँ तक की भूमिगत जल स्त्रोत भी प्रदूषित होते जा रहे हैं।"[3] कवि डॉ. लखनलाल सिंह को अपने गाँव में कहीं कोई नमी दिख नहीं पडती, सब कहीं एक अजीब तरह का सूखा दिख पडता है।

"सूख गई है मेरे गाव की नदी
बरसात में भी नहीं आती उसमें बाढ
सूख गया है मेरे गाव का पीपल का पेड
बसंत में भी नहीं आते हैं उसमें पत्ते।"

अपनी कविताओं में पर्यावरण विमर्श के प्रति बडा सरोकार प्रकट करने वाले कवि आरोहो जी वायू, जल, नभ, समुद्र और यहाँ तक कि संपूर्ण प्रकृति के प्रति भी संवेदनशील होना ही समकालीनता की पहचान मान लेते है। यह सर्वविदित है कि धरती पर प्रकृति के विविध तत्वों के बीच संतुलन तभी बना रह सकता है, जब धरती का कम से कम 33% जंगलों से भरे हो। पेड -पौधे ऋतुओं का संचालन करते है, प्रदूषण का अवशोषण करते है और वातावरण को स्वच्छ एवं सुंदर बनाए रखते है। "किसी भी देश के लिए वन-प्रदेश परिस्थिति, आर्थिक और पर्यावरणिक संपदा के अक्षुण्ण भंडार होते है। लेकिन हमारे देश का दुर्भाग्य यह है कि अनेकनिक कारणों से जंगल का भारी विनाश हो रहा है। कवि यह महसूस करते ही कि पेड कुल्हाडी का प्रहार चुपचाप सहता रहता है।"[4] एक वृक्ष काटने का अर्थ है कि सामूची परंपरा और संस्कृति का विनाश होना। कवि की चेतावनी है कि प्रकृति जो सबकी व्यवस्थापक है, हम इस व्यवस्था में रहना और इस प्रकृति की गोद में पलकर बडा होना चाहते है। तो हमें भी एक पेड लगाना और उसका संवर्धन करना। पेडों को कटने से हमेशा बचाना ही है। वृक्ष अपनी संपूर्णतः के साथ हमारे जन-जीवन में रचे बसे हैं। जनसंख्या विस्फोट, औद्योगिकीरण, शहरीकरण और तकनीकी विकास के कारण हमारे देश के वन और वनों की अमूल्य संपत्ति अब विनाश के कगार पर है। आज हम देख रहे है, मनुष्य की अदम्य आकांक्षाओं के बुलडोजर धरती की बेरहमी से रौंद रही है, कुचल रही है, खोद रही है और उजाड रही है।

आधुनिक युग में वायु प्रदूषण एक जटील समस्या बन चुकी है। अनेक कारखानों और विभिन्न प्रकार की गाडियों से मानव स्वास्थ्य को खराब करनेवाली कार्बनडाई ऑक्साईड, कार्बन मोनाऑक्साईड, हाईड्रोजन सल्फाईड, क्लोरिन, अमोनिया, आदि और औद्योगिक धूल और फैक्टरियों से निकलने वाले धुआँ और राख भी हमारी जीवन रक्षक वायु को प्रदूषित कर रहे है। बढते हुए वायू प्रदूषण के कारण ही ओजोन परत में छिद्र होने लगता है। यह ओजोन अल्ट्रावायलट किरणों को छानकर पृथ्वी पर आने से रोकती है। वायू प्रदूषण के कारण वायुमंडल द्वारा सूर्य की किरणों से उष्मा ग्रहण कर रोकने की क्षमता बढती जा रही है। वायुमंडल का तपमान बढने के कारण पहाडों और नार्थ पोल पर बर्फ के पिघलने तथा समुद्रतल के आयतन में वृद्धि होने का खतरा बढता जा रहा है।

वायू प्रदूषण के साथ-साथ ध्वनि प्रदूषण भी एक गंभीर समस्या बन चुकी है। शोर एक अदृश्य, परंतु प्रदूषण का अत्यंत घातक माध्यम है। जैसे-जैसे शोर बढ रहा है, वैसे ही मानसिक बिमारियाँ भी बढ रही है। शोर मानव द्वारा रचित प्रदूषण है और आज गिरफ्त बढती ही जा रही है। आज के कवि वर्तमान की क्रूर विडम्बनाओं का चित्रण करते समय अपने ऊपर अनेक दबावों को महसूस कर रहे है। इन सबके ऊपर वैश्वीकरण की नई संस्कृति का दबाव है। पूँजीवादी मानसिकता, वैश्वीकरण, बाजारवाद आदि के सम्मिलित रूप ने एक अमानवीयकरण को जन्म दिया है, जिसका बुरा असर न केवल मनुष्यों पर ही नहीं बल्कि नदी, पेड- पौधे, पशु-पक्षी, और यहाँ तक कि समूची प्रकृति पर भी प्रभाव पडा है। आज सचेतन प्राणी को अच्छे वातावरण में या जीवनदायी वातावरण में रहने का अवसर भी नहीं मिलता है। कवि एकांत श्रीवास्तव अपनी 'नागरिक व्यथा' शीर्षक कविता में इस स्थिति का चित्रण किया है-

"किस ऋतु का फूल सूँघूँ, किस हवा में सांस लूँ
किस डाली का सेब खाऊँ, किस सोते का जल पियूँ
पर्यावरण वैज्ञानिकों! कि बच जाऊ।"[5]

निष्कर्ष -

अंत में कहा जा सकता है कि पर्यावरण का प्रदूषण ही समाज में अन्य प्रकार के कई प्रदूषणों को जन्म दे रहा है। प्राकृतिक संतुलन को असंतुलिन न किया जाए, पेड, नदी, पहाड आदि को विकास के नाम पर विकृति के शाप न सौंपा जाए। यदि प्रकृति अनाचार को नहीं सह पायी तो इसके परिणाम संपूर्ण मानव समाज के लिए भयानक सिद्ध होंगे। आज समकालीन कवि चाहते है कि प्राकृतिक संतुलन को असंतुलित न किया जाए। भूमंडलीकरण, बाजारवाद, आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण की वापसी और उपभोक्तावाद के बुरे प्रभावों की छाया में आज की कविता जन्म लेती जा रही है।

संदर्भ सूची -

1. शिशुपाल सिंह, ‘एक और लातूर’ शीर्षक कविता से, गंध, मार्च, 1994, पृ. 47
2. ज्ञानेन्द्रपति, ‘संशयात्मा’, अभिव्यंजना, प्र.,प्र.सं. 2010, दिल्ली, पृ. 27
3. डॉ. बाबू जोसेफ, ‘समकालीन हिंदी कविता और कुमार अंबुज’, अमन प्र., प्र. 2010, कानपुर, पृ. 27
4. वही, पृ. 30
5. एकांत श्रीवास्तव, ‘अन्न है मेरा शब्द’, पृ. 104

हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श.

प्रा. डॉ. एम. ए. येल्लुरे,
बी.एस.एस. कला विज्ञान एवं वाणिज्य
महाविद्यालय, माकणी, ता. लोहारा,
जि. उस्मानाबाद.
Email ID – drmayellure@gmail.com.
मो. नं. 9403392105.

शोध सार:

आदिवासी साहित्य का अध्ययन, मनन, चिंतन और अनुशिलन के बाद अंत में निष्कर्ष रूप में कहते है कि, आदिवासी समाज सदियोंसे जातिगत भेदो वर्ण व्यवस्था, विदेशी आक्रमणो, अंग्रेजो और वर्तमान में सभ्य कहे जानेवाले समाज द्वारा दूरदराज जंगलो और पहाडो में खदेडा गया है. अक्षर ज्ञान न होणे के कारण यह समाज सदियोंसे मुख्य धारा से कटा रहा, आदिवासी की लोककला और उनका साहित्य ऐसे तो मौखीकी रहा है और इसका कारण रहा उनकी भाषा की अनुरूप लिपी का विकसित न हो पाना. यही कारण साहित्य जगत में आदिवसी रचनाकार और उनका साहित्य गैर आदिवासी साहित्य की तुलना में काम मिलता है.

बीज शब्द: आदिवासी, साहित्य, समस्या

प्रस्तावना :

आज भी आश्चर्य कि बात है कि, भारत में आदिवासी समाज में जितना अध्ययन, मनन, चिंतन विचार विमर्श होणा आवश्यक है, उतना नहीं हो रहा है. आदिवासी विमर्श 20 वी सदि के अंतिम दशकों में शुरू हुआ. आज भी इसके केंद्र में आदिवासीयों के जल जंगल जमीन और जीवन की चिंताएँ है. कहा जाता है कि, 1991 के बाद भारत में शुरू हुए उदारीकरण और मुक्त व्यापार की व्यवस्थाओंने आदिम काल से वंचित आदिवासियों की लुट कारस्थानी खोल दिया. आज भी बडी संख्या में झारखंड, छत्तीसगढ, दार्जीलिंग आदि इलाकों में लोग बडे पैजामे पर विस्थापनको जन्म दिया, इतनाही नही तो उन्होंने सचेत रुपये अपने समाज के सामाजिक, सांस्कृतिक हीतों के रक्षा के लिए आवाज उठाना प्रारंभ किया. और उन्हों अपने नेताओंकी पहचान की. साथ ही आदिवासी साहित्य की मुख्य विशेषता है.

सबसे महत्वपूर्ण बाब यह है कि, कई मुख्य धारा के लोग जहाँ आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक रूप में ताकतवर होते है, वही मुख्य धारा के अंदर और बाहर का जीवन व्यतीत कर रहे लोग कमजोर ही जाहीर है, क्योंकी आदिवासी लोग आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक तीनों दृष्टीयों से कमजोर होते है. तो जाहीर है, वही दुसरी ओर उसमें कही न कही मुख्य धारा की साजीश अथवा षड्यंत्र की भी प्रभावकारी, प्रभावली भूमिका होती है. इसका सर्वोत्तम उदाहरण भारत का आदिवासी समाज है, जो मुख्यता राजनीती और मुख्य धारा के निर्माणकर्ताओंका जिस तरह से शोषण किया जाता है उसका प्रत्यक्ष उदाहरण है 'संजीव की कहानी', 'पाँव तले की दूब' और भालचंद्र जोशी की 'पहाडोंपर रात' इन में दिखाया है कि किस प्रकार विकास के नाम पर आदिवासी समाज का एक लंबे समय से शोषण किया जा रहा है. प्रसिद्ध आदिवासी विचारक वाहरू सोनवणे मानते है कि इन लोगों के विकास के लिए बनाई जा रही नितीयाँ ऐसी नहीं होती है कि उन्हे किसी रूप में स्वीकार कर लिया जाए.

2) आदिवसी कहानी साहित्य :

इस आदिवासी कहानीयोंके अंतर्गत संजय कि 'कमरेड का कोट' विजेंद्र अनिल कि 'विस्फोट', विजयकांत कि 'बीच का संसार', अंजना रंजन दाग कि 'मुआवजा', मदन मोहन कि 'बच्चे बडे हो रहे है', रामस्वरूप अणखी कि 'जोहाड बस्ती', हृदयेश कि 'मजदूर', प्रेमपाल शर्मा कि 'सुभेदार', हृषिकेश सुलभ कि 'पत्थरकट', अरुण प्रकाश कि 'भैय्या एक्स्प्रेस' आदि कहानियाँ खेतिहर और दिहाडी मजदूरोंके जीवन संघर्ष का चित्रण करते हुए दिखलाती है कि किस प्रकार मुख्य धारा के अंदर रहते हुए भी वे हाशिये का जीवन व्यतीत करणे को विवश है.

'कमरेड का कोट' और 'बीच का संसार' जैसी कहानियाँ के नायक अपने उपर होनेवले आक्रमण का अहसास होने बाद ही अपने सुमदाय के लोगोंका नेतृत्व संभाल लेते है, और वे चाहते है कि, मुख्य धारा का समाज उनकी समस्यावों को समझे उन्हे उचित मजदुरी दे. 'कमरेड का कोट' इनके लोगोंके नेतृत्व के सवालों को गंभीरता के साथ उठाते है कि किस प्रकार कि लडाई का वास्तविक नेतृत्व मोर्चे पार लड रहे है. कार्यकर्ता के हाथ में हो अथवा पार्टी के नेतावोंके हाथ में जिन्हे संघर्ष की वास्तविक स्थितीयों और भयावता का पता है और उन्ही संघर्ष भूमिका भी जनभाषा 'ताई की बाली' की ... ''आलोकजी को सुकून मिला एका एक हम हिंदी एक तो एक तो जड सॅमजेन शकेता के बाल बोलने और लिखने पढणे नही सकता यु कैरी ऑन कहकर उन्होने

चारमिनार सिगरेट सुलगाली है. उन्हे बडे प्यार से एक सिगरेट कमलकांत की ओर भी थमाई, सिगरेट खाई ये कॉम्रेड.''1

अब आदिवासी जीवन पार बहुत लिखा जा रहा है, सोचा जा रहा है, बहस और संवाद की गुंजाईश बन गई है. धीरे धीरे यह एक विमर्श का रूप धारण करता जा रह है. 'कब तक पुकार' में जंगल की रुखडी का रोह लेनेवाले सुखराम के माध्यम से इंसानियात की रुखडी की पहचान शुरू हुई थी. उसकी कजरी प्यारी और चंदा जिसमें तेह रह छलकता रहा करता. जो उन्हे इन्सान बनाएँ हुए था, वे सभी गंगाजल की भान्ति पवित्र तथा सूर्य की किरनोंकी भान्ति प्रकाश और तेजोमय थी. इसका विकास इस दो दशक पूर्व के कथा साहित्य में दिखाई पड रहा है.

एक बात यहाँ देखना है कि "श्री प्रकाश मित्र के उपन्यास 'जहाँ बाँस फुलते है' को देखना होगा, जो सुदूर उत्तर पूर्व मिजो जनजाति एवं लुशाई पहाडीयोपर रहनेवाले आदिवसी जनजाति को केंद्र में रखता है. यहाँ भी यही तथ्य उभरता है – "भूख का मारा मिजो वरशोन्तक इंतजार करता है, फिर जंगल को साफकर धान लगया जाता है. फसल जब तैयार होने को होते है तो अपनी झोपडी बन जाता है. एक दिन इलाके के पुराने जमीनदार ... अपने साथीयोंके साथ आकर धमकाते है. इनके घरोन्को उजाड फसल काटकर ले जाते है और खेतीलायक जमीन दो चार साल के लिए कब्जा कर लेते है.''2

3) आदिवासीयों द्वारा आदिवासी विमर्श :

मित्रो पिछले दो दशको में हिंदी संसार में आदिवासी लेखको, विशेषकर झारखंड क्षेत्र के लेखकोने अपनी पैठ और पहचान बनाई है. आज आदिवासी की धार आँन्चलिक क्षेत्रिय और राष्ट्रीय स्तर तक असरदार बन चुकी है. हेरॉल्ड एस. टोप्पो और रामदयाल मंडा ने पत्र-पत्रिकाओमें अपनी नियमित उपस्थिति के जरिये 'जंगल गाथा' से लेखक-पत्रकार के रूप में अपनी विशिष्ठ पहचान बनाई है. इतनाही नही तो सामाजिक-राजनीतिक विश्लेषण के लिहाज से एन. ई. होरो, निर्मल मिंज रोज केरकेट्टा, प्रभाकर तिर्की, सूर्यसिंह बेसरा और महादेव टोप्पो आदि का योगदान अर्थपूर्ण और महत्वपूर्ण है. आज पत्रकारिता में विवेचन साक्षात्कार या रिपोर्ताज की शैली में अपने संवाद को प्रभावी बनाने लिहाज से वासवी, दयामनी, बरला, सुनिल मिंज और शिशिर टूडूने अपनी प्रभावी उपस्थिती दर्ज करवाई है. इन में अपने समाज वर्ग राजनीतिक-संस्कृतीसे बाहर की दुनिया की मसलोन्के बारे में खामोशी दिखती है. और यही कारण है कि देश और दुनिया की बेहतरि के लिये इनकी रचनाएँ और सपने अपने परिवार तक सीमित है. अगर आदिवासी विमर्श को साहित्य लेखन की धरातलपर देखे तो आदिवासी रचनाशिलता मुख्यरूपसे – कविता, कहानी, उपन्यास और संस्मरण के धरातलपर प्रकट होती है.

4) आदिवासी की अस्मिता :

यह विमर्श सबसे नवीनतम है. अनेक वर्शोन्से हाशिये पर रखे गये आदिवासी समुदाय को आज साहित्य जगत में जगह मिल रही है. और इसमें भी अच्छीबात यह है कि, इस दिशा में खुद इस समुदाय के लोगोंके द्वाराही पहल की जा रही है. इसलिये इस दृष्टीसे समकालीन कवि अपनी कविताओ में आदिवासियोन्के जीवन उनकी स्थितियो उनके संघर्ष की, उनकी आकान्क्षाओ और उनके सपनोको कविता में अभिव्यक्त कर रहे है. आदिवासी साहित्य विधाओमें 'कविता' सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधा रही है.

निष्कर्ष :

आदिवासी साहित्य का अध्ययन, मनन, चिंतन और अनुशिलन के बाद अंत में निष्कर्ष रूप में कहते है कि, आदिवासी समाज सदियोंसे जातिगत भेदो वर्ण व्यवस्था, विदेशी आक्रमणो, अंग्रेजो और वर्तमान में सभ्य कहे जानेवाले समाज द्वारा दूरदराज जंगलो और पहाडो में खदेडा गया है. अक्षर ज्ञान न होणे के कारण यह समाज सदियोंसे मुख्य धारा से कटा रहा, आदिवासी की लोककला और उनका साहित्य ऐसे तो मौखीकी रहा है और इसका कारण रहा उनकी भाषा की अनुरूप लिपी का विकसित न हो पाना. यही कारण साहित्य जगत में आदिवसी रचनाकार और उनका साहित्य गैर आदिवासी साहित्य की तुलना में काम मिलता है. अंततः स्पष्ट रुपसे कहे तो गलत नही होगा की वे लोग लगातार कोशिश में है कि, संबंधित समाज या समुदाय में उनकी भी एक सुंदर और सुस्पष्ट एक पहल और अपनी पहचान बने.

संदर्भ ग्रंथ :

1) संजय - 'कमरेड का कोट', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली. सन 1993.
2) भालचंद्र जोशी – पहाडोपर रात : पहल – 40, जुलाई, सितम्बर 1990.
3) वीर भारत तलवार – आदिवासी विमर्श धर्म, संस्कृती और भाषा का सवाल कहा है?
4) हरिराम मीना – अस्मिता ही नही अस्तित्व का सवाल :
5) रमणीका गुप्ता – आदिवासी स्वर और नई शताब्दी
6) गंगा सहाय मीना – आदिवासी साहित्य विमर्श : चुनौतियाँ और सम्भावनाये
7) निर्मला पुतुल – नगाडे की तरह बजते शब्द.

जनजाति समाज और पर्यावरण के संबंध का भौगोलिक अध्ययन

डॉ. संदीप रुपरावजी मसराम
सहाय्यक प्राध्यापक – भूगोल विभाग,
वसंतराव नाईक शासकीय कला व समाजविज्ञान संस्था,
पंडित नेहरू मार्ग, संविधान चौक, नागपूर ४४०००१.
इमेल – sandip.masram84@gmail.com
मोबाईल क्रमांक – ८९८३७१८१३१

सारांश –

भारत यह भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक विविधता का देश है। यहा पर भूदृश्य, क्षेत्र, जलवायू, मिट्टी, वनस्पती, प्राणी इन भौगोलिक कारको में स्थान अनुसार परिवर्तन दिखाई देता है। भौगोलिक कारको का मानव के जीवनपर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव पडता है। विश्व के मानव समाज में भारत की सभ्यता प्राचीन सभ्यताओ मे से एक है। सभ्यता विभिन्न समाज के विचारों से जन्म लेती है। समाज यह मानव के समुदाय के मध्य होने वाली आंतर्क्रिया तथा अंतर्संबंध का अमूर्त रूप है। प्राचीन युग से मानव का जंगल से सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक रिश्ता रहा है। भारत में जनजाति समुदाय की जीवनयात्रा में जंगलो का अनन्यसाधारण महत्व है। जनजाति समुदाय के लोग जल, जंगल और जमीन को पुजते है। जनजाति समुदाय के अधिसंख्य लोगो की उपजीविका तथा आर्थिक क्रियाए जल, जंगल और जमीन पर निर्भर होती है। ईसिलीये जनजाति समाज जल, जंगल और जमीन को आराध्य मानते है तथा उनको पुजते है। प्रस्तुत संशोधन पत्र में जनजाति समाज तथा पर्यावरण में मध्य के भौगोलिक संबंध का अध्ययन किया गया है| जनजातिय दृष्टीकोन से भी जल, जंगल और जमीन का अध्ययन करना भी जरुरी है। प्रस्तुत संशोधन पत्रमें जनजातीय दृष्टीकोन से भारत के पर्यावरण का अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन से स्वस्थ पर्यावरण बनाये रखने में जनजाति समाज की भूमिका महत्वपूर्ण रही है।

बीज संज्ञा – जैवविविधता, परिस्थितीकी तंत्र, वनौषधी, शाश्वत विकास, वनसंरक्षण, वनसंवर्धन.

प्रस्तावना-

मानव अपने विकास के लिये प्राकृतिक साधनो का मर्यादा से अधिक विदोहन कर रहा है। आधुनिक युग में मानव से जंगल को धोका निर्माण हुवा है। जिससे प्राकृतिक पर्यावरण का संतुलन बिघड रहा है। ऐसे ही प्राकृतिक पर्यावरण का संतुलन बिघडते रहा तो प्रकृती का अंत का कारण मानव बन सकता है। जिससे काई सारी प्रजातीया और मानव का अस्तित्व भी नष्ट हो सकता है। ढेर सारी जीव प्रजातीया नष्ट हो चुकी है और कुछ प्रजातीया नष्ट होने के कगार पर है। प्राचीन भारतीय ज्ञान तथा इतिहास का अध्ययन करने पर इस समस्या का हल मिल सकता है। जंगलो में रेहने वाले जनजाति समाज प्राकृतिक पर्यावरण तथा जीवो के साथ ख़ुशी से रेहने की कला से अवगत है। जनजाति समाज जंगल से संसाधन लेते है उसी के साथ जंगलो का अस्तित्व स्वीकारते हुये जंगलो को पुजते है और सन्मान तथा संरक्षण देते है। प्रकृती के साथ उनका ये एक अलिखित समझोता है जिसको जनजाति समुदाय में रेहने वाले सभी व्यक्ती मान्य करते है। जनजाति समाज के जंगल के साथ के अलिखित समझौते, मान्यताए तथा नियमो को लिखित स्वरूप में परिवर्तीत करने की आवश्यकता है।

अध्ययन का उद्देश -

जंगलो के संसाधानो का अतिरिक्त उपयोग हो जाना यह गंभीर समस्या है। प्राचीन भारत के सभ्यता में मानव के जीवन की शुरुवात तथा उनके जीवन का अंत जल, जंगल और जमीन से होता था। जल, जंगल और जमीन भौतिक घटको का उचित इस्तेमाल, संवर्धन तथा संरक्षण भारत के जनजाति समाज ने जिम्मेदारी से किया है। अतः जनजाति दृष्टीकोन से जंगलो का अध्ययन करना अध्ययन का उद्देश है। भारत के जनजाति समाज और जंगल के मध्य संबंध का ज्ञान तथा भौगोलिक अध्ययन इस संशोधन पत्रका मुख्य उद्देश है। साथ में ही इस संशोधन पत्रके अध्ययन के गौण उद्देश निम्नलिखित है।

भारत के जनजाति समाज के सामाजिक एवं सांस्कृतिक विधी में जंगल के प्रभाव का अध्ययन करना।

भारत के जनजाति समाज के आर्थिक कार्यो में जंगल के प्रभाव का अध्ययन करना।

भारत के जंगलो का वनसंरक्षण, वनसंवर्धन एवं वनो का शाश्वत विकास में जनजाति समाज के भूमिका का अध्ययन करना।

अध्ययन का महत्व -

जनजाति समाज के अध्ययन के लिये जो भी संदर्भ साहित्य उपलब्ध है वो काफी नही है। जनजाति समाज का संपूर्ण सत्य जानने के लिये उनके नजरीये से वस्तुस्थिती का अवलोकन करना जरुरी है। जनजाति समाज के वयोवृद्ध व्यक्तियो से चर्चा

करके उनका जंगल विषयक ज्ञान को लिखित रूप से संग्रहित करना अनिवार्य है। इस ज्ञान के संख्यात्मक एवं गुणात्मक सामग्री का अभिलेख निर्माण होना जरुरी है।

प्रस्तुत अध्ययन से जंगल के साथ जंगल के जैवविविधता तथा परिस्थितीक तंत्र का अध्ययन होगा। जंगल व्यवस्था के संरक्षण में जनजाति समाज से जानकारी प्राप्त कर सकते है। जिससे न केवल मानव समाज का अपतू संपूर्ण वन प्रदेश को भविष्य में लाभ होगा। जंगल के वनौषधी के अस्तित्व के आधार पर दुर्लभ वनौषधी, खतरे में आयी गई वनौषधी, लुप्त होने के कगारपर आयी वनौषधी तथा लुप्त हो गई है वह वनौषधी इस तरह से वर्गीकृत किया जा सकता है। जो वनौषधी का अस्तित्व खतरे में है और जो वनौषधी लुप्त होने के कगार पर है उनका संरक्षण तथा संवर्धन किया जा सकता है।

परिकल्पना –

प्रस्तुत संशोधन पत्रके अध्ययन द्वारा जंगल सुधार प्रयास तथा पर्यावरणीय अवनती समस्या हल करने के लिये जनजातिय परंपरागत विधी एवं उपायो से बदलाव की संभावना का अनुसंधान करना है। समाज के नई पिढी को वनौषधी का आकलन तथा वनौषधी का सही तरीके से उपयोग करने की विधी पूर्वजो से सिखने की चुनौती है। प्राचीन भारतीय मौखिक ज्ञान को लिखित रूप में परिवर्तीत करना जरुरी है। अनुसंधान कर के इस ज्ञान को मूर्त स्वरूप देना एक समस्या हो सकती है । वनक्षेत्र अवासीय क्षेत्र से दूरस्थ होते है । वहा पोहोचने के लिये यातायात के मार्ग तथा यातायात के साधनो की सुगमता उपलब्ध नही है। जनजाति समाज की अपनी भाषा है । जनजाति समाज के पास का ज्ञान हमे उनके भाषा में ही प्राप्त होगा । उस ज्ञान को अन्य भाषा में अनुवाद करके उसका उपयोग करना संभव है । अनुसंधान तथा अध्ययन करने के लिये निम्नलिखित परिकल्पनाए है ।

भारतीय जनजाति समाज के पास प्रकृती का मौखिक ज्ञान है ।
जनजाति समाज का जंगल के साथ सामाजिक सांस्कृतिक संबंध है ।
परंपरागत तरीके से अगर जंगल के संसाधानो का उपयोग किया जाये तो मानव का शाश्वत विकास संभव है ।
जंगल के संसाधानो का परंपरागत तरीके से उपयोग करने की कला जनजाति समाज को अवगत है।
जनजाति समाज के लोग प्राकृतिक संसाधानो का शोषण नही करते है
मानव का हस्तक्षेप कम रहने वाले जंगल क्षेत्र में स्वस्थ परिस्थितीक तंत्र है ।

विधीतंत्र –

प्रस्तुत लघु अनुसंधान के लिये गौण आधार सामग्री का उपयोग किया जाने वाला है। उपलब्ध संदर्भीय किताबे, समाचार पत्र, इंटरनेट, विभिन्न संकेत स्थल, नियतकालिक किताबे, संशोधन ग्रंथ, संशोधन पत्र इत्यादी से प्राप्त सूचनाओका उपयोग किया गया है। प्राप्त साहित्य सामग्री को वर्गीकृत करके समाज विज्ञान के दृष्टी से वर्णन किया है।

जनजाति समाज और पर्यावरण -

परिस्थितीक तंत्र के सभी जीवो का स्वस्थ पर्यावरण महत्वपूर्ण स्थान है । भारत के वन प्रदेश में विभिन्न वनस्पती, पशु, पक्षी तथा जीव जन्तुओ का अधिवास है । जंगली वनौषधी, मौसमी फल - फुल, सागवान की तथा अन्य मूल्यवान लाकडिया, तेंदूपत्ता, शेहद, मोह फुल ऐसी कई सारे संसाधन का उपभोग विशिष्ट विधी के साथ जनजाति समुदाय कर रही है । इन लोगो से जंगल तथा जंगल में रेहने वाले जीवो को कोई धोका नही है । मानव के साथ पशु पक्षी भी उनके परिवार का अविभाज्य अंग है। भारत का जनजाति समाज प्राकृतिक पर्यावरण के साथ सामंजस्य से रेहते आये है। यहा के लोगो ने वन्य जीवो के साथ रेहने का पारंपारिक तरीका आत्मसात किया है। दैनंदिन जीवनक्रम में जनजाति समुदाय जंगलो से संबंधित सामाजिक संसाकृतिक कार्य करते है। उनके खान पान, पोशाख, रहनसहन, मनोरंजन, कला, नृत्य, छोटे बडे समारोह, पारंपारिक धार्मिक विधीया, स्वास्थ उपचार जंगल से संबंधित संसाधानो पर निर्भर है । इन सभी करको का लिखित साहित्य निर्माण करना भविष्य के लिये अनिवार्य है । प्रकृति के संसाधानो के सही उपगोग का पारंपारिक ज्ञान वयोवृद्ध जनजाति लोगो के पास हो सकता है । उनका जीवित अस्तित्व जब तक है तब तक इस ज्ञान को लिखित साहित्य परिवर्तीत करना जरुरी है । प्राकृतिक संसाधानो के उपयोग की सीमा का निर्धारण करना जनजाति समाज से सिखना आवश्यक है ।

प्रस्तुत संशोधन पत्रके लिये आदिवासी बहुल प्रदेश को चुना गाय है। भारत का जंगल फैला हुवा है। भारत के भौगोलिक प्रदेश में विभिन्न जनजाति लोगो का सदियो से वास्तव्य है। इन लोगो के जिंदगी में वन तथा वानोसे उत्पन्न होने वाले संसाधानो का महत्व अधिक है। इन संसाधानो पर जनजाति लोगो की उपजीविका आधारित है। जनजाति समुदाय का समाजिक जीवन भी जंगल से प्रभावित है। उनके जन्म से लेकर मृत्यू तक की विधिया, त्योहार, रित - परंपरा, आंतर्क्रिया, उपजीविका तथा व्यवसाय प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भौतिक पर्यावरण पर निर्भर होती है। जंगल भौतिक पर्यावरण का अभेद हिस्सा है। इसीलिये जनजाति समाज और पर्यावरण के मध्य संबंध का भौगोलिक अध्ययन करने आवश्यक है ।

भारत में अंग्रेज आने से पेहले वन क्षेत्र का प्रमाण अधिक था। आज के समय भारत में जंगलो का क्षेत्र प्राचीन युग से कम हुआ है। भारत में औसत न्यूनतम वनो का प्रमाण होना चाहिये उस से भी कम प्रमाण है। विभिन्न विकासात्मक कार्यो के लिये वन कटाई करना पडता है लेकीन उसी वक्त काटे गये वनो की संख्या में नये पेड लगाना भी जरुरी है। काटे गये पेडो की संख्या के अनुपात से वृक्षारोपण एवं वृक्षसंगोपन की क्रिया नही हुई जिससे भौतिक पर्यावरण का संतुलन बिघड गया है। लेकीन जनजाति क्षेत्र में भूमी एवं वनो का अनुपात सामान्य है। जंगल संरक्षण के लिये जनजाति समाज ने समय समय पर आवाज उठाई है। जंगल संरक्षण तथा संवर्धन में जनजाति समाज का योगदान अनन्यसाधारण है। वनसंरक्षण तथा वनसंवर्धन में जनजाति समाज के भूमिका का अध्ययन करना आवश्यक है।

जनजाति समाज की सामाजिक सांस्कृतिक परंपरा का जंगलो के साथ गहन संबंध है। जंगल के विषय पर इस से पेहले अनुसंधान हुवा है। वन संसाधानो की प्राप्ती के लिये जंगल का अध्ययन अंग्रेजोने किया है। जनजाति समाज जंगल को पुजते है। उनके सामाजिक अतःक्रिया जंगल के साथ होती है। इसिलिये वे लोग जंगलो के शाश्वत विकास को ध्यान में रखकर वन संसाधन को अपने उपयोग के लिये प्राप्त करते है। साथ में वे यह भी सुनिश्चित करते है की, जंगल में रेहने वाले अन्य सभी वन्य जीवो को वन संसाधनो की प्राप्ती हो। अतः जनजातिय दृष्टीकोन से भी जल, जंगल और जमीन का अध्ययन करना भी जरुरी है। प्रस्तुत संशोधन पत्रमें जनजातीय दृष्टीकोन से भारत के जंगल का अध्ययन करने का प्रस्ताव है। वन संरक्षण, वन संवर्धन तथा वनो का चिरंतन विकास के लिये पारंपारिक रित से जनजाति समाज द्वारा उपयोग में आने वाली जनजातिय पद्धती का अध्ययन सामाजिक भूगोल के दृष्टीकोन से करना आवश्यक है।

भारत में वनो के विषय पर विभिन्न विद्याशाखाओमें अनुसंधान हुवा है। वनसंसाधन तथा वनौषधी आयुर्वेद से लेकर जीव विज्ञान तक अध्ययन का विषय है। जंगल में रेहने वाले जनजाति समाज के लोगो को कई सारे वनौषधी का पारंपारिक ज्ञान है तथा अपने व्यावहारिक जीवन में वे वनौषधी का उपयोग भी करते है। विभिन्न वनौषधीया तथा उनका सही से उपयोग करना जनजाति लोगो की खोज है। ऐसे खोज का पेटंट जनजाति लोगोको मिलता है तो वे अपना आर्थिक सामाजिक जीवन सुखकर बना सकते है। पेटंट तथा उसको पंजीकरण करने की विधी सभी आदिवासी लोगो को पता नही। पेटंट के बारे में उनको ज्ञान देने की जरुरत है।

जंगल के मौसमी वनसंसाधन से जनजाति लोगो को आर्थिक फायदा मिलता है। फल, फुल, वनौषधी, पत्ते, बेल, गोंद, लकडी,लकडी की खाल जैसे मौसमी वन संसाधन समय के साथ खराब होते है। इन मौसमी वन संसाधानो पर प्रक्रिया करने वाली प्रणाली जनजाति क्षेत्र में विकसित करना जरुरी है। जिससे वनक्षेत्र में उत्पन्न होने वाले संसाधन के लिये बाजार निर्माण करना संभव है।

निष्कर्ष –

जंगल का संवर्धन करना यह मानव जाती के लिये भविष्य आवश्यक है। जंगल से संबंधित गंभीर खतरे तथा आपदा से बचने के लिये प्रबंधन करने में ऐसी नितीया सहायक हो सकता है। पर्यावरणीय अवनती से बचने के लिये या उसका प्रभाव कम करने अनुसंधान का अहवाल काम में आ सकता है। प्राचीन भारतीय ज्ञान का समाज को पता चलेगा। भारत के प्राचीन ज्ञान का आधुनिक ज्ञान से मिलाप कर के नये अनुसंधान को प्रेरित किया जा सकता है। इस ज्ञान में अनुसंधान तथा तकनिकी सहायता से निर्माण होने वाले ज्ञान को राष्ट्रहित में उपयोग किया जा सकता है। जनजाति समाज के विकास के लिये निती बनानी है, तो सबसे पेहले उनके विचार, भावना को सन्मान देते हुये उनसे चर्चा की जाये।

जंगल से प्राप्त संसाधन के अतिरिक्त उपयोग के कारण कम होते जा रहे है। साथ में ही जंगल से प्राप्त संसाधानो का सही उपयोग का तरीका सबको अवगत नाही है। जनजाति समाज के चुनिंदा लोगो को जंगल संसाधन तथा वनौषधी का ज्ञान है। उनसे इस मौखिक ज्ञान को लिखित ज्ञान में बदलना चुनौती है। कार्य करते वक्त भाषा भी एक समस्या है। जनजाति समाज की अपनी भाषा अलग प्रकार की है। जंगल, वनौषधी पर तथा जनजाति समाज पर मानववंशशास्त्रीय दृष्टीकोन से अलग अलग अध्ययन हुवा है। जनजाति समाज के उनके अनुभव से लिखे गये साहित्य उपलब्ध नही है। इस लिये आधार सामग्री का निर्माण तथा संग्रह शुरुवात से करना आवश्यक है। जनजाति समाज और पर्यावरण के बीच सदियो से सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक संबंध है और चिरंतन रहेगा।

संदर्भग्रंथ -

१. Bhatt D, Kumar R, Joshi GC, Tewari LM (2013). Indigenous uses of medicinal plants by the Vanraji tribes of Kumaun Himalaya, India. J Med. Plant Res. 7(37): 2747-2754

२. Joshi AK, Juyal D (2017). Traditional and Ethnobotanical uses Premna barbata Wall. Ex Schauer in Kumaun and Garhwal Regions of Uttarakhand, India and Other Western Himalayan Countries- A Review. Int. J. Pharmacogn. Phytochem. Res. 9(9): 1213-1216.

३. Joshi R, Satyal P, Setzer W (2016). Himalayan Aromatic Medicinal Plants: A Review of their Ethnopharmacology, Volatile Phytochemistry, and Biological Activities. Medicines. 3(1): 6.

४. Kumari P, Joshi GC, Tewari LM (2012). Biodiversity status, distribution and use pattern of some ethno-medicinal plants. Int. J. Conserv. Sci. 3(4): 309-318.

५. Pala NA, Negi AK, Todaria NP (2010). Traditional uses of medicinal plants of Pauri Garhwal, Uttrakhand. N. Y. Sci. J. 3(6): 61-65.

६. Prasad S, Tomar J (2020). Distribution and utilization pattern of herbal medicinal plants in Uttarakhand Himalaya: A case study. J. Med. Plants Stud. 8(3): 107-111.

"सुमित्रानंदन पंत का काव्य पर्यावरण चेतना के परिप्रेक्ष्य में"

डॉ. कृष्णात आनंदराव पाटील
हिंदी विभागाध्यक्ष,
श्री शिव-शाहू महाविद्यालय, सरूड।
मोबाईल नं. 9130749494
ई-मेल- Gurupriyangi@gmail.com

शोध सारांश:

मनुष्य और प्रकृति एक दुसरे से जुडे हुए है। मनुष्य को खुद का विकास तो करना ही चाहिए, लेकिन प्रकृति को ध्यान में रखना भी जरूरी है। प्रकृति ठीक हो तो जीव सृष्टि ठीक रहेगी तथा वह ठीक नहीं रहेगी तो हर जीव का अस्तित्व ही खतरे में रहेगा। प्रकृति चित्रण पर काफी लेखन हुआ है, हो रहा हैं। मगर, हिंदी साहित्य के अंतर्गत छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत का काव्य सूक्ष्म तथा सर्वश्रेष्ठ माना जा सकता हैं। उन्होंने प्रकृति की हर हलचल को बारीकी से काव्य में अभिव्यक्त किया हैं। अधिकांश रूप से हिंदी कवियों ने प्रकृति का बाह्य चित्रण किया है। किंतु, प्रकृति को मानवी रूप में देखकर चित्रण किया हुआ दुर्लभ है, जो सुमित्रानंदन पंत के काव्य में हुआ है। पंत जी ने अपने काव्य में प्रकृति के सूक्ष्म से सूक्ष्म हलचल का चित्रण किया हुआ नजर आ जाता है।

बीज शब्द - पर्यावरण, चेतना, काव्य आदि।

प्रकृति और मनुष्य का रिश्ता काफी पुराना है। वह दोनों भी एक-दुसरे के बगैर अधुरे माने जाते है। प्रकृति पर सभी का अधिकार है। उसकी सुंदरता को देखना और उसका उपभोग लेना मनुष्य अपना अधिकार समझता आया है। प्रकृति सभी के लिए समान रूप से उपलब्ध है। मगर, मनुष्य प्रकृति की देखभाल करने में गंभीर नहीं है। इसी कारण प्रकृति के परिवर्तन को लेकर केवल अपना देश ही नहीं बल्कि पुरा विश्व चिंतित और भयभीत नजर आता है। इसके लिए जिम्मेदार के तौर पर मनुष्य ही नजर आ रहा है। मनुष्य ने हर क्षेत्र में प्रगति को कई सीढियाँ पार की है, मगर उन्होंने प्रकृति पर सोच-विचार बहुत कम किया नजर आ जाता है।

आज प्रकृति पर अनेक काव्य निर्माण हुआ हैं लेकिन यह कहना गलत नहीं होगा कि जिस किसी ने पहला काव्य लिखा होगा वह प्रकृति पर ही लिखा होगा। प्रकृति और मानव के संबंध को लेकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने लिखा है- "वन, पर्वत, नदी, नालें, निर्झर, कछार, पटपर, चट्टान, वृक्ष, लता, झाडी, फूस, शाख, पशु-पक्षी, आकाश, मेघ, नक्षत्र, समुद्र इत्यादि भी ऐसे ही सहचर रूप है।" स्पष्ट है की मानव और प्रकृति का एक दूसरे से गहरा रिश्ता है। दुनिया भर के साहित्य में प्रकृति चित्रण हुआ है वैसे हिंदी साहित्य भी प्रकृति चित्रण का सागर है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक के हिंदी कवियों और लेखकों ने प्रकृति चित्रण का काव्य लिखा है और आज भी लिख रहे हैं। हिंदी साहित्य में छायावादी काव्य प्रकृति चित्रण का आदर्श काव्य माना जा सकता है। छायावाद के आधारस्तंभ प्रकृति के चितेरे सुमित्रानंदन पंत का काव्य सर्वोत्कृष्ट प्रकृति चित्रण का काव्य माना जाता हैं। पंत जी का कालखंड सन 1900 से 1970 का माना जाता हैं। उनका जन्म प्रकृति की कोख में बसे उत्तरांचल के 'कौसानी' नामक गाँव में हुआ था। उन्हें बचपन में अपने माँ की ममता का साथ बहुत कम मिला ओर प्रकृति का अधिक मिला। अपने जन्मगाँव कि प्रकृति ने उन्हें बचपन से हि आकर्षित किया इसलिए उनके व्यक्तित्त्व पर प्रकृति का गहर असर रहा। पंत स्वयं कहते थे कि काव्य कि प्रेरणा उन्हें प्रकृति से हि मिलती रही। उमाकांत गोयल जी ने सटिक लिखा हैं-"पंत काव्य में प्रकृति के मनोरम रूपों का मधुर और सरस चित्रण मिलता है। 'आँसू की बालिका', 'पर्वत प्रदेश में पावस' आदि कविताओं में प्रकृति के मनोहर चित्र विद्यमान हैं, जिनमें कवि की जन्मभूमि के प्राकृतिक सौंदर्य का वैभव दिखायी देता है।" पंत मानवी सौन्दर्य से अधिक आकर्षित दिखाई देते हैं। उन्ही के शब्दों में-

"छोड द्रुमों की मृदू माया, तोड प्रकृति से भी माया,
बाले, तेरे बाल जाल में, कैसे उलझा दूँ लोचन?
तज कर तरल तरंगों को, इन्दधनुष्य के रंगो को
तेरे भू-भंगों से कैसे, बिंधवा दूँ निज मृग-सा मन?"

प्रस्तुत काव्य पंक्ति में कवि का प्रकृति के प्रति सहज अनुराग और उसकी सूक्ष्म दृष्टि नजर आती है। पंत की 'नौका विहार' कविता में प्रकृति का स्थिर और संश्लिष्ट चित्रण हुआ है देखिए-

"नौका से उठती जल हिलोर, हिल पडते नभ के ओर छोर,
समने शुक की छबि झल-मल, पैरती परी-सी जल में कल,
रूपहलें कुचों में हो ओझल!

लहरों के घूँघट से झुक-झुक, दशमी का शशि निज तिर्यक मुख,
दिखलाता, मुग्धा-सा-रूक-रूक।"

पंत जी ने प्रकृति का मानवीकरण रहस्यमयी और अनोखा किया हुआ दिखाई देता है। आधुनिक काल के कवियों में सबसे सटिक और सहज प्रकृति का मानवीकरण पंत जी ने अपने काव्य में किया हुआ नजर आता है। पंत जी ने संध्या, प्रात, चंन्द्रिका, छाया भाँति खुद अपना परिचय देते हैं। सचेतन बादल को लेकर चित्रण देखने लायक हैं-

"कभी चौकडी भरते मृग से भू पर चरण नहीं धरते।
मत मत्तगंज कभी झूमते सजग शशक नभ को चरते।"

पंत जी ने 'ज्योत्स्ना' में प्रकृति का विराट चित्रण किया है। कविता में सागर अपनी विराट बॉहे फैलाकर इन्दु-करों से अलिंगन की इच्छा व्यक्त करता हैं-

"अगनित बाहें बढा उदधि ने इन्दु-करों से आलिंगन"

हिंदी साहित्य में बादल, भौंरे, कोकिल, चातक आदि को लेकर बहुत सुंदर चित्रण अन्य कवियों ने भी किया हैं लेकिन रंग, ध्वनि, गंध, स्पर्श और स्वाद को लेकर पंत जैसे मिलना कठिण हैं। पंत जी नील लहरों पर सांध्य किरण के बुझते हुए आलोक का चित्रण करते हैं-

पंत छायावाद के प्रमुख कवि रहे हैं। छायावादी कवियों को लेकर डॉ. कृष्णदेव झारी का मतंव्य सटिक लिखा है कि "प्रकृति के साथ जैसा आत्मीयता का संबंध छायावादी कवियों ने स्थापित किया, वैसा पूर्वयुगों में कहीं नहीं हुआ था। प्रकृति के कण-कण को उन्होंने एक सचेतन व्यक्तित्त्व प्रदान किया। पुष्पलता, पशु-पक्षी, तृण-गुल्म सब मानव की तरह हँसने और अपने हृदय के रहस्यों को मानव के सम्मुख प्रकट करने लगे। चराचर प्रकृति मानव के साथ मिल कर एकरूप हो गई।" काव्यों में मानव और किसी प्राणी से एकात्म्य सहजता से नजर आयेगा लेकिन मानव और प्रकृति का एकात्म्य पंत के काव्य में अनोखा हैं। कवि सुमित्रानंदन पंत 'छाया' को समदु:खी मानकर कहते हैं-

"हाँ सखि, आओ बाँह खोल हम लगकर गले जुडा लें प्राण,
फिर तुम तम में, मैं प्रियतम में हो जावें दुत अन्तर्धान।"

"सुमित्रानंदन पंत के काव्य में प्रकृति चित्रण" इस विषय का विवेचन और विश्लेषण करने के पश्चात हम बडी विनम्रता से कह सकते हैं कि प्रकृति और मानव एक दुसरे के पुरक हैं। मानव को अपना विकास तो करना ही चाहिए लेकिन प्रकृति को ध्यान में रखना भी आवश्यक हैं। प्रकृति ठीक हो तो जीव सृष्टी ठीक रहेगी और अगर वह ठीक नहीं रहेंगी तो हर जीव का अस्तित्व ही खतरें में रहेगा। प्रकृति चित्रण पर काफी लेखन हुआ है हो रहा हैं लेकिन हिंदी साहित्य के अंतर्गत छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत का काव्य सूक्ष्म और सर्वश्रेष्ठ माना जा सकता है। उन्होंने प्रकृति की हर हलचल को बारीकी से काव्य में अभिव्यक्त किया है।

निष्कर्ष

साधारणत: कवियों ने प्रकृति का बाह्य चित्रण किया नजर आता हैं लेकिन प्रकृति को मानवी रूप में देखकर चित्रण किया हुआ दुर्लभ हैं जो सुमित्रानंदन पंत के काव्य में हुआ हैं। पंत जैसा प्रकृति का सच्चा जानकार और ज्ञाता कवि मिलना कठीन हि नहीं असंभव भी लगता हैं। पंत जी ने अपने काव्य में प्रकृति के सूक्ष्म से सूक्ष्म हलचल का चित्रण किया हुआ नजर आता हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. सुमित्रानंदन पंत का काव्य, डॉ. शैलेंद्र
2. पर्यावरण और साहित्य, प्रो. रणसिंग
3. कविता और पर्यावरण, श्रीमति उषा शर्मा

हिंदी साहित्य में पर्यावरण विमर्श

डॉ. संतोष बबनराव माने
शिवराज महाविद्यालय,
गडहिंग्लज ,कोल्हापुर.
(महाराष्ट्र)
मो.9552093972

शोध सार-

आज का वैज्ञानिक युग भौतिक साधनों को लेकर हमे आकर्षित करता रहा है|इन साधनों की प्राप्ति करके अपने भोग विलास को पूरा करने में जादा सक्रिय मनुष्य जीव ही है |वैसे इस सृष्टि में लाखो,करोडो जीव- जंतु हैं,पर मनुष्य जीव को छोडकर किसी अन्य जीव ने सृष्टि या पर्यावरण को बाधा नहीं पहुचाई है| प्रकृति ने इस सृष्टि के जीवों को खेलने,भोगने के लिए अपना निर्माण किया है परंतु आज मनुष्य ने अपने खुद के स्वार्थी जीवन को भोगने के लिए खुद के साथ अन्य जीवों के जीवन को भी हानी

पहुँचाने का प्रयास शुरु किया है|प्रकृति या पर्यावरण का यह पेड काटता मनुष्य अपनी मनुष्यता को भूल रहा है|सृष्टि के सारे जीव खतरे में है और इसका बचाव सिर्फ प्रकृति,पर्यावरण की रक्षा और विकास पर ही संभव है|

बीज शब्द: साहित्य, पर्यावरण,प्रकृति

प्रस्तावना-

इस 21 वी सदी में पर्यावरण की हालत इतनी कमजोर होती दिखाई देती है की आज सारा विश्व,सृष्टि ज्वालामुखी के द्वार पर खडी है|मनुष्य-मनुष्य,समाज-समाज,देश-देश में द्वंद्व भी है और अंतद्वंद्व भी है| विज्ञान को साकार करने मे या प्रगति की राह पर दौडने वाला युग साक्षर है या निरक्षर यह प्रश्न निर्माण हुआ है| अपने गृह अर्थात पृथ्वी पर यह पर्यावरण विराजमान है| हमे ज्ञात है कि कभी पहले इस पृथ्वी पर 43% प्रतिशत जंगल था| इस पृथ्वी पर संतुलित जीवों को रहने के लिए 34 प्रतिशत जंगल होना चाहिए, परंतु आज 28 प्रतिशत के कम जंगल बचे है| इससे स्पष्ट है कि अन्य जीवों के साथ मानव जीव भी संकट मे आया है| प्रकृति अथवा पर्यावरण मे हवा, पानी, जंगल, नदी, पहाड, के साथ अन्य जीवों पर मानव जीवन बसा है| फिर भी पृथ्वी पर गांव शहर के बढते विकास के साथ आद्योगिकरण, भूमंडलीकरण से जंगल खत्म होते जा रहे है| प्रकृति के इस पर्यावरण को खत्म करके मनुष्य अपनी भौतिक सपनों को पूरा कर रहा है| भौतिक साधनों को प्राप्त करने के लिए वह पर्यावरण को हानी पहुँचाकर उसे नष्ट करता यह वैज्ञानिक युग आगे बढा रहा है| परिणाम प्रदूषण जैसी महासमस्या मे जल, थल, हवा आ चुकी है| जब से मानव-जाति का आरंभ होकर साहित्य साधना का निर्माण होता रहा है| तब से हमारे महान ऋषियों, आचार्यो, संतो, कविओ, लेखकों ने पर्यावरण को बचाने के लिए मनुष्य को सावधान करने का प्रयास किया है|

हिंदी साहित्य में भी पर्यावरण का महत्व बताने का प्रयास आरंभ से होता रहा है| पर्यावरण के लिए अंग्रेजी भाषा में Environment शब्द प्रचलित है| "इसमे किसी जीव के चारों ओर उपस्थित समस्त जैविक तथा अजैविक पदार्थों को पर्यावरण के अंतर्गत सम्मिलित किया जाता है| इस प्रकार जल, वायु, भुमि उनके पारस्परिक संबंध, अन्य वस्तुओं जैसे जीवों, सम्पति तथा मनुष्यों के आपसी संबंधों को मिलाकर ही पर्यावरण का निर्माण होता है|" 1 इसी पर्यावरण पर जीव या जीवन आधारित है| पर्यावरणों के साधनों में वन, जल, वायु, खनिज, खाद्य, उर्जा और भुमि महत्वपूर्ण रही है| हर एक साधन इस इस पर्यावरण का मूलभूत अंग है| इन्ही अंगो को काटकर ही मनुष्य विज्ञान युग के शिखर की ओर बढ रहा है| आज यह सभी साधन प्रदूषण की समस्या से त्रस्त है| परिणाम सृष्टि का जीव और जीवन खतरे में आ चुका है| जीवन के इस चक्र को संतुलित रखने के लिए पृथ्वी पर पेडों का जादा होना जरुरी, जंगलों का स्थान बढना आवश्यक है| कभी हमारा भारत देश वनो से ओतप्रोत था| परन्तु देश-विदेश आक्रमण, सत्ता, खिलवाड से यह वन कम होते जा रहे है| "देश में कुल 19 फिसदी वन है जिनमें से 11 फिसदी घने तथा 8 फिसदी छितरे हैं| राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार कम से कम 33 फिसदी भुमि पर वन होने चाहिए|" 2 आज इस देश में 28 फिसदी से भी कम वन बचे है| परिणाम इस देश में पर्यावरण के जो साधन है हवा, पानी, नदी सब प्रदूषित है| इसीकारण अनाज देनेवाली यह भुमि कमजोर बनती जा रही है|

" माँ तो तुम उनकी भी हो
पर वे दुर्बुध्दि भस्मासुरी बेटे तुम्हारी
नहीं जानते
नहीं मानते इस रिश्ते को
वे तुम्हारा दूध पीने की जगह

तुम्हारे स्तन काटकर
उनका मुलायम मास खा जाना चाहते है|" 3 - रणजित

गौन खनिजो की लालसा ने पहाड, भुमि, मैदानो को नष्ट किया जा रहा है| बडे-बडे महल, कारखानों का निर्माण हो रहा है| पानी और इंधनों के लिए इस भुमि को काटा जा रहा है| वैश्वीकरण के इस युग में मनुष्य ने अपनी काम वासनाओं को पूरा करने के लिए पर्यावरण का शिकार करना शुरू किया है| मनुष्य की सारी इन्द्रियों की इच्छा कामवासना ही है| अन्य जीवों को छोडकर यह राक्षसी वृत्ती सिर्फ इन्सान के पास है| इसका कारण मनुष्य के पास दिमाग है सोच है जो अन्य जीवों के पास नही है ऐसा हमारा मानना है| प्रकृति ने सिर्फ इन्सानो को सोचने के लिए दिमाग दिया है इसे हम शाप या वरदान भी कह सकते है| यह भुमि (पृथ्वी) मनुष्य का पेड, पौधे, पशु, पक्षी, प्राणी यहा तक की वायु, जल, उर्जा, अनाज का निर्माण करके सबका पालन पोषण करती है| आज हमने इसी सजीव पृथ्वी-भुमि को निर्जीव बनाने का संकल्प लेकर बढ रहे है|

औद्योगिकरण, वैश्वीकरण, भुमंडलीकरण के इस विकास युग मे सारे विश्व में तापमान बढने की समस्या निर्माण हुई है| पृथ्वी के बढते तापमान का कारण पर्यावरण प्रदूषण है| आज इस प्रदूषण से सारी जीव सृष्टि नष्ट होने की कगार पर है| पर्यावरण प्रदूषण में देखा जाए तो बढते शहर, उद्योग से जंगल समाप्त हो रहे है| "धरती के तापमान में 0.5 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि दर्ज की गई है तथा अगले सौ सालों में इसमें 5.8 डिग्री सेल्सियस तक की वृद्धि हो सकती है| भारत का तापमान हर सदी में 0.57 डिग्री सेल्सियस की गति से बढ रहा है| 2050 तक यह तीन डिग्री सेल्सियस बढ जाएगा|" 4 आज विश्व में बर्फ पिघलकर पानी का स्तर बढने की चिंता है| पानी के बढते स्तर से अनेक देशों के शहर डुबने की स्थिति पैदा हुई है और इसका कारण बढता तापमान ही माना जाता है| प्रदूषण के कारण दूषित पानी, जहरिली वायु, तापमान बढता जा रहा है| जिससे नई-नई बिमारी के साथ मानव हानि बढी है| "1953 में जापान के मिनामाटा शहर में प्रदूषित मछलियाँ खाने पर सैकड़ों लोगों को मौत का शिकार होना पडा| इस दूघटना से लगभग दो हजार लोग प्रभावित हुए| लगभग 50 से जादा लोगों की मृत्यु हो गई और लगभग 700 लोग स्थाई तौर से अपाहिज हो गए|"5 बडे-बडे कारखानों से निकलनेवाली हवा, प्रदूषित पानी से नदियों का पानी भी दूषित हुआ है जो इस प्रकार के हादसे बढते आ रहे है| बाढ, अकाल बदलते मौसम से मानव जीवन बिमारीयो मे फसता जा रहा है| फिर भी पर्यावरण बचाव यह सिर्फ विषय बनकर ही रहा है उसे कृतित्व में लाना असंभव बनता जा रहा है|

बढती आबादी से इस भुमंडलीकरण को रोकना, युद्ध को रोकने के बराबर हुआ है| आज हर एक राष्ट्र अपने आप को शक्तिशाली बनाने की चाहत रखता रहा है इसलिए उसने भूमि, सागर, अवकाश में भी कब्ज़ा करने के प्रयास में है| पर्यावरण सुरक्षा यह उसे नाममात्र के बराबर लगता है| आज मनुष्य का जीवन भौतिक साधनों से विकसित है| "वाहनों की संख्या बढ जाती है, जीवशेषीय इंधनों के स्फोट के साथ वायु-प्रदूषण में खास तोर से कार्बन डायऑक्साइड, नायट्रोजन ऑक्साइड में पच्चीस प्रतिशत की वृद्धि हुई है|"6 तंत्रज्ञान के विकसित साधनों से ऑक्साइड की मात्रा कम हो रही है| नायट्रोजन, कार्बन डायऑक्साइड निर्माण करनेवाले यंत्र मनुष्य ने बनाये है परन्तु उन्हें नष्ट करनेवाले पेडों को भी मनुष्य काट रहा है यह मानव जाति मे बडा आश्चर्य है| हमारे देश के साथ अन्य देश भी बढती आबादी से खेती विकास को महत्व दे रहे है| अनाज उत्पत्ति बढाना मकसद है परन्तु इस मकसद को दिखाकर वनों, पहाडों को नष्ट किया जा रहा है और इस मकसद में मनुष्य की विकृत कामवासना ही रही है| बढते तापमान से हादसे बढ रहे है, कभी कारखानो में, बस में, रेल में, गाँव में तो कभी वन में आग लगती है और लाखों जीव मारे जाते है|

इस औद्योगिकरण युग में मानव जाति या अन्य जीवों को अगर बचाना है तो पहले हमें हमारे भौतिक साधनों से दूर होना आवश्यक है| भौतिक साधनों के बिना हम रह नही सकते यह बात सच भी है परन्तु उन साधनों की संख्या या उपयोग कम कर सकते है| जल हवा के प्रदूषण को हम रोकते है तो यह जीव सृष्टि बच सकती है इसलिए पर्यावरण निर्माण हर एक देश का मिशन होना चाहिए| प्रत्येक व्यक्ति पेड का निर्माण करता है तो आनेवाली हमारी जाति भी जीवन का आनंद लेगी| पर्यावरण विकास में देश, संस्थाए योजना बनाते है लेकिन यह योजनाएं सजीव नहीं निर्जीव साबित हुई है| "पेड लगाना एक बात है मगर उस लगे पेड को जिन्दा रखना असल बात है| अपने देश 62 वनमहोत्सव मनाए जा चुके है| रिपोर्ट बताती है की खरबों पेड लगाए गए| मगर सच्चाई कुछ और है| पेड तो पहले वाले भी नहीं छोडे -सब कुल्हाड़ी को भेट चढ गए|"7 इस दौर में मनुष्य ने कृत्रिम साधनों को अपनाने के लिए प्रकृति को तोडना शुरू किया| कभी वन को नष्ट करके उद्योग खडा हुआ तो कभी पेड काटकर दलन-वलन को विकसित किया| रस्ते विकास के अभियान में बचे पेड भी कट रहे है| बरगद, पीपल जैसे महान पेड भी नही छुटे| पेडों को काटकर चलनेवाली यह सृष्टि कब रेगिस्तान बनेगी यह उसे पता होकर भी पता नही होगा| इस धरती के प्रकृति ने हमें बडे-बडे पेड-पौधे दिए| हमारे पूर्वजो ने इसे विकसित भी किया| यह पेड फुल, फल, अनाज, देते है| पर्यावरण प्रदूषण से यह नष्ट होने की आशंका है|

निष्कर्ष में यह सच है की पर्यावरण प्रदूषण बढ चुका है,बढ रहा है| पर्यावरण बचाव योजनाएं बनती भी है तो वह एक विषय बन कर चल रही है| आज विश्व के हर एक मनुष्य को पर्यावरण की सुरक्षा को लेकर चितां होनी आवश्यक है| पहले महायुध्द

और दूसरे महायुध्द से किस तरह जीव-पर्यावरण हानि हुई है सबने देखी, सुनी है| फिर भी आज सारा विश्व तिसरे महायुध्द की ओर बढ रहा है| रहीम ने सच ही कहा है "रहीमन पानी राखिए, बिन पानी सब सुन" अर्थात पानी अथवा जल का दुसरा नाम जीवन है| तो पहले हमें नदी, सागरों को प्रदुषण से बचाना है| पानी को ही प्रदूषण से बचाते है तो पेड-पशु-पक्षी-जीव का जीवन भी प्रदूषण मुक्त होगा| पहले तो जल हवा ही शुद्ध थी जिसकारण अनेक पशु-पक्षी प्राणी थे| मनुष्य की आयु भी बढी थी| आज प्रदूषण के कारण से ही मनुष्य की आयु कम हुई है यह बात समजना सहज ही है| बढती आबादी को नियंत्रीत रखना यह एक अच्छा सुझाव है| साथ ही भौतिक साधनों को कम करना यह भी संभव है| अब से हर एक व्यक्ति पेड लगाकर उसे विकसित करता है| तब पर्यावरण में सुधार आकर ही रहेगा, तभी हमारी नई पीढी भी प्रकृति का आनंद ले सकेगी| करोडों जीवों में मनुष्य के पास है दिमाग है| अगर वह अपनी सोच के बल पर पेड लगाना शुरू करे तो जल, हवा भी प्रदूषण मुक्त होगी| तभी मनुष्य को प्रकृति के साथ साथ अपने जीवन का आनंद प्राप्त होगा| तो हम सब को यही कहना होगा-

"में तुम्हे अपने लिए बचाना चाहता हूँ पृथ्वी
अपने बच्चों के लिए
उनके बच्चों के लिए
सब बच्चों के भावी बच्चों के लिए" - 'रणजीत'

संदर्भ ग्रंथ –

1. पर्यावरण अध्ययन - अनुभा कौशिक , सी.पी.कौशिक. पृष्ठ-1
2. पर्यावरण संरक्षण - सुमेर चंद पृष्ठ-107
3. पर्यावरण और विकास - डॉ.रणजीत,डॉ.भारतेदुं प्रकाश पृष्ठ-5
4. पर्यावरण संरक्षण - सुमेर चंद पृष्ठ-106
5. पर्यावरण अध्ययन - अनुभा कौशिक , सी.पी.कौशिक. पृष्ठ-134
6. पर्यावरण और विकास - डॉ.रणजीत,डॉ.भारतेदुं प्रकाश पृष्ठ-11
7. पर्यावरण संरक्षण - सुमेर चंद पृष्ठ-7

आदिवासी संवेदनाओं की दास्तां: 'जंगल जहा शुरू होता है'

डॉ. संतोष तुकाराम बंडगर,
लाल बहादूर शास्त्री कॉलेज, सातारा
ईमेल santoshbandgar45@gmail.com
Mob. 09921990771

सारांश-

साहित्य समाज को नयी दशा व दिशा प्रदान करता है। दलितों, स्त्रियों, आदिवासियों के शोषण का विरोध में सामाजिक, राजनीतिक के साथ साहित्यिक आंदोलन की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही है। उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की प्रक्रिया में जल, जंगल एवं जमीन पर अतिक्रमण शुरू हुआ। इसी कारण आदिवासियों के अस्तित्व एवं अस्मिता के प्रश्न का जन्म हुआ। आदिवासी का संघर्ष और प्रतिरोध का फल ही आदिवासी साहित्य हिंदी साहित्य को मिली देन है। संजीव के कथा साहित्य में मध्य भारत की आदिवासी जनजीवन का चित्रण मिलता हैं। उनका 'जंगल जहाँ शुरू होता है' इस उपन्यास आदिवासी के भयावह सत्य को उजागर करता है। सामुहिकता, लोकतांत्रिकता, समानता, स्वतंत्रता यह सिर्फ लोकतंत्र में है। वास्तव में इसका फायदा आदिवासी को मिला नहीं। पूँजीपति वर्ग भोले-भाले आदिवासियों को अपने चंगुल में फँसाकर सब छीन लेते है। उन्हें शहरों में जाकर कारखानों में मजदूरी, विभागों में मजदूरी-दिहाड़ी करनी पड़ती हैं। इन सभी जगहों पर आदिवासियों की आय तो नहीं बढ़ी, लेकिन शोषण को जरूर बढ़ावा मिला। इसी भयानक वास्तविकता का चित्रण कथाकार संजीव ने जंगल जहा शुरू होता है।

कुंजी शब्द-

लोकतांत्रिकता, समानता, स्वतंत्रता, भूखमरी एवं अत्याचार, हक़दार, अस्तित्व एवं अस्मिता संथाल, थारू, मुण्डा, बोंडा, उराँव, जनजाति, चारागाह, पूजा स्थल

भूमिका-

समाज में प्रतिबिंबित घटनाओं को आधार बनाकर साहित्यकार साहित्य का नव सृजन करता है। इसके माध्यम से वह समाज को नयी दशा व दिशा प्रदान करता है। बीसवीं सदी के अंत में भारत में नए सामाजिक आंदोलन उभरकर सामने आए। दलितों, स्त्रियों, आदिवासियों द्वारा नई एकजुटता के माध्यम से अपने प्रति शोषण का विरोध किया और संपूर्ण जनजाति की मुक्ति के लिए एक सामूहिक अभियान चलाया। सामाजिक, राजनीतिक के साथ साहित्यिक आंदोलन भी इस अभियान का मुख्य घटक था। दलित और स्त्री विमर्श इसी का परिणाम है। आदिवासी विमर्श भी दलित और स्त्री विमर्श की प्रेरणा की देन है।

1990 के बाद उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की तेज़ होती प्रक्रिया के साथ जिस तरह से आदिवासियों के जीवन में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हस्तक्षेप को बढ़ाया और इसके कारण उनके जल, जंगल एवं जमीन से सम्बंधित पारंपरिक अधिकारों का अतिक्रमण शुरू हुआ। आदिवासी क्षेत्रों में इसके खिलाप सामाजिक और साहित्यिक संघर्ष को तेज़ हुआ। इसी कारण आदिवासियों के अस्तित्व एवं अस्मिता के विकट प्रश्न को जन्म दिया। इसी बेचैनी ने आदिवासियों की अस्तित्व एवं अस्मिता की धारा ने आदिवासी विमर्श को जन्म दिया। परिणामस्वरूप हिंदी साहित्य में आदिवासियों की समस्याओं पर लेखन की दिशा में ने नया जन्म दिया। इसमें आदिवासी और गैर आदिवासी लेखकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। समकालीन हिन्दी साहित्य में आदिवासी विमर्श पर बहस और चर्चा हो रही है। आदिवासी विमर्श और आदिवासी साहित्य हिंदी साहित्य पटल पर अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुका है। आदिवासियों के सालों के शोषण के बाद संघर्ष और प्रतिरोध का फल ही आदिवासी साहित्य हिंदी साहित्य को मिली देन है। आदिवासी समाज और साहित्य पर आह भी चर्चा हो रही है। लेकिन आदिवासी समाज और आदिवासी साहित्य का संघर्ष आज भी है। आज भी आदिवासी समाज समस्याओं से जूझ रहा है। इसका मुख्य कारण आदिवासी वर्ग समाज के मुख्य प्रवाह से अपरिचित रहा है।

हिंदी कथा-साहित्य में आदिवासियों की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक स्थिति, रीति-रिवाजों, परंपराओं, कलाओं व प्रथाओं के साथ-साथ आदिवासी संस्कृति, दर्शन, जीवन शैली, प्रकृति और उनकी समस्याओं का सजीव चित्रण मिलता हैं। इसमें हिंदी कथाकार शीर्षस्थ हरिराम मीणा, निर्मला पुतुल, वंदना टेटे, अनुज लुगून, ज्योति लकड़ा सुनील मिंज, जेवियर कुजूर, गंगा सहाय मीणा, केदार प्रसाद मीणा, निर्मला पुतुल, रमणिका गुप्ता, संजीव, निर्मला राकेश कुमार सिंह आदि साहित्यकारों हिंदी आदिवासी साहित्य महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

संजीव के कथा साहित्य में मध्य भारत की संथाल, थारू, मुण्डा, बोंडा, उराँव, आदि जनजातियों का यथार्थ चित्रण हुआ है। संजीव अपने कथा साहित्य में आदिवासी समाज की समस्याओं, संघर्षों एवं सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन मूल्यों के साथ उनमें

पाई जाने वाली रूढ़ परम्पराओं और अंधविश्वासों का निष्पक्ष रूप से वर्णन करते हैं। आजादी के बाद भी आदिवासी समाज, विस्थापन, भुखमरी, बेरोजगारी जैसी गंभीर समस्याओं से जूझ रहा है। संजीव आदिवासी, वंचितों के प्रवक्ता रहे है। संजीव ने अपने लेखन के बारे में स्वयं कहा है, ''देश के लाखों, दलित, दमित, प्रताड़ित, अवहेलित जनों की जिजीविषा और संघर्ष का मैं ऋणी हूँ। जिन्होंने वर्ग, वर्ण, भाषा, सम्प्रदाय के तंग दायरों को तोड़ते हुए शोषकों, दलालों, कायरों के विरूद्ध मानवीय अस्मिता की लड़ाई लड़ी है और लड़ रहे हैं। मेरा लेखन उससे ऋण मुक्ति की छटपटाहट भर है"[1] समाज की विविध समस्याएँ ही संजीव की प्रेरणाएँ रही हैं। समाज व्याप्त विसंगतियों ने संजीव को लेखन के लिए उदीप्त किया है। समाज, देश और मनुष्यता के प्रति समर्पित हर शख्स उनकी सहानुभूति का पात्र है। संजीव के कथा साहित्य में आदिवासी समाज की रूढ़ परम्पराओं एवं अंधविश्वासों का भी निष्पक्ष रूप से वर्णन हुआ है।

संजीव का उपन्यास 'जंगल जहाँ शुरू होता है' जंगल में स्थित आदिवासी के भयावह सत्य को उजागर करता है। लोकतांत्रिक हिस्सा होने के बावजूद आदिवासी समाज को जंगल में जीवनयापन करने को मजबूर है। संघर्षमय की स्थितियों का सामना करना उनके जीवन का हिस्सा बन चुका है। संजीवजी का यह उपन्यास डाकू निमूलन की समस्या को लेकर उग्गार करता है। इस संदर्भ में गिरीश कशिद लिखते हैं, ''संजीव के उपन्यासों में व्यवस्थागत विसंगतियों के साथ पिछडे अंचलों बहुमुखी शोषण का भी विकराल रूप विद्यमान है। पूंजीपति व्यवस्था और नौकरशाही ने समय समय नए रूप धारण कर शोषण को बनाए रखा है। अंग्रेज तो चले गए लेकिन आजाद देश में नवअंग्रेज पैदा हुए हैं। ग्राम व पिछडे अंचलों में शोषण का मध्ययुगीन रूप कायम है बदला है तो शोषणतंत्र। संजीव के उपन्यासों में शोषण के विविध रूपों का चित्रण मिलता है।''[2] उपन्यास 'जंगल जहाँ शुरू होता है।' में जंगल के विविध रूपों और अर्थ-छवियों का चित्रण मिलता है। थारू जनजाति, सामान्य जन, डाकू, पुलिस और प्रशासन, राजनीति, धर्म, समाज और व्यक्ति…और सबके पीछे से, सबके अन्दर से झाँकता, झहराता जंगल और जंगल को जीतने का दुर्निवार संकल्प।उपन्यास के केन्द्र में है 'मिनी चम्बल' के नाम से जाना जानेवाला पश्चिमी चम्पारण, जहाँ अपराध पहाड़ की तरह नंगा खड़ा है, जंगल की तरह फैला हुआ है।

उपन्यास की शुरुआत इस क्षेत्र के डी.एस.पी. कुमार से होती है जो इस क्षेत्र में डाकू उन्मूलन अभियान 'ऑपरेशन ब्लैक पाइथॅन' में डाकुओं के उन्मूलन के लिए आते हैं। यह प्रदेश 'मिनी चम्बल' के नाम से विख्यात पश्चिम चम्पारण को केंद्र में रखकर लिखा गया उपन्यास है। ऑपरेशन का मूल उद्देश्य डाकुओं की गिरफ़्तारी, अवैध हथियारों को सीज करना, जनता के खोए हुए विश्वास को फिर से बहाल करना है। पश्चिम चम्पारण बिहार राज्य का सबसे पश्चिम में एक जिला है जो पश्चिम में उत्तर प्रदेश के कुशीनगर और उत्तर में नेपाल से लगा हुआ है। जंगल जहाँ शुरू होता है उपन्यास का मुख्य उद्देश्य समाज में फैली भ्रांतियाँ, सामाजिक, आर्थिक राजनैतिक, जनतांत्रिक समस्याओं के परिणाम स्वरूप डाकू बनने पर मजबूर हो जा रहे हैं या कष्टकारक जीवन जीने को मजबूर किसान का हैं। बिसराम अपनी लड़की के मर जाने पर विलाप करते हुए वहाँ की यथार्थ एवं दारुण स्थिति का वर्णन करता है, "हमार तो हर तरीका से मौवत लिखल बा, ए बेटी! जिमींदार से, डाकू से, देवता-पिता से भूत भवानी से पुलिस लेखपाल से, भूत-भवानी से, पुलिस-लेखपाल से..."[3] आदिवासी समाज शिक्षा का अभाव एवं संकुचित मानसिकता के गुलाम के कारण आज भी दुसरों की गुलामी करते आए है। उनकी मज़बूरी का फायदा इसी व्यवस्था ने उठाया है।

उपन्यास का कथानक बिसराम थारू, उसका छोटा भाई काली, बिसराम बहु, बेटियाँ छोटा सा परिवार लेकिन दुखी परिवार के इर्द गिर्द घुमती हैं। इस संदर्भ में संजीव लिखते है, "आदिवासी समाज के प्रति मीडिया और साहित्य के दो तरह के दृष्टिकोण है, एक तो आँख मूँदकर आह-वाह करना और दूसरा उन्हें सुधारने का बीड़ा उठाने वाली स्वयं शक्तियों का। मेरे शोध और अकादमिक बहसें इस विषय पर महत्त्वपूर्ण रही हैं। मैं अपनी उम्र के पाँच साल से लेकर दो हजार पाँच तक किसी न किसी रूप में आदिवासियों के बीच रहा हूँ। जितना उन्हें समझ पाया हूँ उन्हीं विचारों को मैं अपने साहित्य में स्थान देता हूं I"[4] सामाजिक असमानता के चलते थारुओं के जीवन में सुख हो या न हो, उनके जीवन का दुःख जरूर भागीदार है। बिसराम थारू इसी जनजाति का ही प्रतिनिधित्व करता है। डाकू, पुलिस के साथ ही साथ गाँव के अन्य सम्पन्न भी गरीब, असहाय आदिवासियों पर जुल्म करते रहते है। फेंकन अपने ही गाँव के सुन्नर पांडेय के घर काम करते थे। फेंकन जाति से दुसाध था। उसकी पत्नी बहुत सुंदर थी। वह कोइलरी में रहकर पढ़ी-लिखी थी। पड़ाइन उससे जलती थी। उन्होंने सुन्नर पांडेय के साथ मिलकर अपने भाई द्वारा उसपर बलात्कार करवाया। काली जब उन्हें सजा दिलवाने के लिए थाने जाता हैं। लेकिन उन्हें वहाँ से भगाया जाता है। डाकू सरगना परशुराम के पास उन्हें न्याय नहीं मिलता। उसे वहा से वापस लौटाया जाता है। इस संदर्भ में संजीव लिखते है,"लाचार फेकन थाने गया, मगर कुछ हुआ नहीं। फिर पता चला कि वह परशुराम यादव के पास गया था, जिसने उसे यह कहकर लौटा दिया कि वह चमारों, दूसाधों, धोबियों, कुम्हारों, लोहारों और नोनियाओं का केस नहीं लेता।"[5] गाँव के पंचों के पास जाता है। गाँव में पंचायत बैठती है। सबको बुलाया जाता है। परंतु वहाँ भी इनके साथ न्याय नहीं होता है और यह कहकर इन्हें ही दोषी करार दे दिया जाता है कि भला ऊँची

जाति का पुरुष नीच जाति के साथ बलात्कार कैसे कर सकता है। इसी घटना के कारण तथा भूखमरी एवं अत्याचार की असीमित पीड़ा को झेलता काली डाकू बनने की ओर अग्रसर होता है। क्रूर परिस्थितियाँ सच्चे ईमानदार काली को विपरीत दिशा में ले जाती है, तब वह हर उस पीड़ा का बदला लेता है।

थारू समाज के पिछड़ने का मुख्य कारणों में अंधविश्वास का स्थान अग्रणीय है। केवल थारू ही नहीं, यह पूरा क्षेत्र इसके गिरफ़्त में इस प्रकार फँस चुका है कि इसमें से निकलना मुश्किल है। मुरली पांडेय एक प्रतिष्ठित अध्यापक थे जो गाँधी जी से प्रेरित थे। ये समय-समय पर असहाय, गरीब आदिवासियों, दलितों के हक के लिए खड़े रहते थे। मुरली पांडेय लगातार कोशिश करते हैं पर वे भी असहाय हो जाते हैं। इन सब पिछड़ने के कारणों से काली भी दुखी है। वह अपने समाज की स्थिति को देखते हुए कहता है, “हम थारू वैसी ही कंगाल की जिंदगी जी रहे हैं- औरत भी, मर्द भी। इतिहास अगर कुछ रहा भी हो तो, सड़-गलकर बदबू दे रहा है। बदबू को ढकने के लिए हमने तरह-तरह के तरीके अपनाए-थारू गाय का दूध नहीं पीते, थारू हिरण का मांस नहीं खा सकते वगैरह-वगैरह, मगर लाज कि उघरती ही गई। अच्छा हुआ कि सरकार ने हमें ट्राइबल्स मान लिया।”[6] काली और उसका परिवार ही नहीं हजारो परिवार इस समस्या से पीड़ित है।

डी सी पी कुमार के द्वारा डाकू-उन्मू लन की दिशा में काली, परशुराम, को समर्पण के लिए प्रेरित करता है। काली के स्वभाव एवं परिस्थितियों से अवगत कुमार मानवीय धरातल आत्मसमर्पण के लिए तैयार कुमार प्रेरित करते हैं, लेकिन काली के अपने परिवार के दुर्देव्य स्थिति, समाज एवं प्रशासन की व्यवस्था से त्रस्त वह आत्मसमर्पण का रास्ता नहीं चुनता। क्योंकि जब उनका परिवार पीड़ित था तब काली के परिवार प्रशासन द्वारा न्याय मिलता तो वह डाकू बनने के लिए मजबूर नहीं होता। काली उस समाज का प्रतिनिधित्व करता है, जो सदियों से शोषित एवं पीड़ित है। काली डकैती तो करता है, लेकिन विचारयुक्त हो सही-गलत के फर्क को समझता है।

सामुहिकता, लोकतांत्रिकता, समानता, स्वतंत्रता आदि ऐसे जीवन मूल्य जिनके आधार पर आदिवासी संस्कृति अपना अलग अस्तित्व रखती है। सामूहिकता भी आदिवासी संस्कृति की पहचान रही है। सारा गाँव, जंगल खेत, चारागाह, पूजा स्थल सबकी मिल्कियत होती है पर्व त्यौहार, नाचगान, गीत संगीत आदि का आनंद सामूहिकता में लेते हैं। भलेही संस्कृति के आधार पर आदिवासी समाज श्रेष्ठ हैं लेकिन वर्तमान परिस्थितियों को देखा जाए तो थारू समाज को वो सुविधा नहीं मिल पाती हैं, जिसके वे हक़दार हैं। आदिवासियों के ही जंगल जमीन, कोयला, खदान लेकिन इन पर ही इनका नाम मात्र का भी अधिकार नहीं है। पूँजीपति वर्ग भोले-भाले आदिवासियों को अपने चंगुल में फँसाकर सब कुछ छीन लेता है और बदले में सिर्फ तिरस्कार ही उन्हें मिलता है। शहरों में जाकर कारखानों में मजदूरी करने लगे, वन विभागों में मदूरी करने लगे। इन सभी जगहों पर आदिवासियों की आय तो नहीं बढ़ी, लेकिन शोषण को जरूर बढ़ावा मिला। इसी भयानक वास्तविकता का चित्रण वरिष्ठ कथाकार संजीव ने जंगल जहा शुरू होता है। इस उपन्यास में किया है।

निष्कर्ष-

वरिष्ठ कथाकार संजीव हिंदी साहित्य में वंचितों के प्रवक्ता रहें हैं उनकी लगभग सभी रचनाएँ आदिवासी, घुमंतू, वंचित, शोषित समाज की दशा एवं दिशा को वाणी प्रदान कराती है। जंगल जहा शुरू होता है उपन्यास में आदिवासी जनजाति को किसी प्रकार इसी समाजव्यवस्था ने गैरकानूनी मार्ग अपनाने को मजबूर किया है। डाकू, पुलिस के साथ ही साथ गाँव के अन्य सम्पन्न भी गरीब, असहाय आदिवासियों पर जुल्म करते रहते है। फेंकन की सुंदर पत्नी थी जो कोइलरी में रहकर पढ़ी-लिखी थी उसपर बलात्कार होता है। काली जब काली जब बलात्कारी को सजा दिलवाने के लिए थाने जाता हैं। लेकिन उन्हें वहाँ से भगाया जाता है। डाकू सरगना परशुराम के पास भी उन्हें न्याय नहीं मिलता। तब वह खुद डाकू बनता है। आदिवासी जंगल जमीन, कोयला, खदान के मालिक है लेकिन इन पर ही इनका नाम मात्र का भी अधिकार नहीं है। पूँजीपति वर्ग आदिवासियों को अपने चंगुल में फँसाकर सब छीन लेते है। आदिवासी वर्ग को अपनी रोजी-रोटी के लिए विस्थापन, लूटमार, डकैती आदि गैरकानूनी मार्ग अपनाना पडता है।

कोई अपने भूख मिटने के लिए, अन्याय का बदला लेने के लिए तो कोई तो कोई अपनी सामाजिक-आर्थिक स्थैर्य के लिए यह मार्ग अपनाता है लेकिन हमारी व्यवस्था सबसे ज्यादा लोगों को मजबूरन इस मार्ग अपनाने के लिए बाध्य करते

संदर्भ-

1. संजीव, संजीव की कथा यात्रा: पहला पड़ाव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2008 पृ. 10
2. गिरीश काशिदः कथाकार सजीव, शिल्पायन प्रकाशन 2008, पृ. 255
3. संजीव, जंगल जहाँ शुरू होता है, दूसरी आवृति 2015, राधाकृष्ण पेपर बैक्स, दिल्ली, पृ. 21
4. संजीव,संजीव के नजरों में आदिवासी समाज, भारतीय साहित्य और आदिवासी समाज, संपा. माधव सोनटक्के, वाणी प्रकाश, नई दिल्ली पृ. सं. 11
5. संजीव, जंगल जहाँ शुरू होता है, दूसरी आवृति 2015, राधाकृष्ण पेपर बैक्स, दिल्ली,, पृ. 92
6. वही, पृ. 137

अल्मा कबूतरी (उपन्यास) : कबूतरा आदिवासी जाति की यथार्थ दासता

श्री. नीलेश वसंतराव जाधव
शोधछात्र हिंदी विभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर।
(niljadhav9182@gmail.com)
(दुभाषा नंबर- 9922273961)

सारांश :

प्रस्तुत उपन्यास मैत्रयी पुष्पा द्वारा लिखित है। जिसमें झाँशी के आस-पास बुंदेलखंड पहाड़ियों में भटकती कबूतरा नामक आदिवासी जन-जाति के यातनाओं को मुखरित किया है, साथ ही उनकी जीवन पद्धति, संस्कृति एवं रोज़मर्रा की जीवनगत गतिविधियों का सटीकता से वर्णन किया है। दर्रदर भटकती इस जनजाति की जीविकोपार्जन का एकमात्र साधन चोरी करना है। इस उपन्यास में दो समाजों का चित्रण हुआ हैं। एक कबूतरा आदिवासी समाज है तो दूसरा सभ्य समाज है, कबूतरा समाज पर सभ्य समाज हमेशा अपना अधिपत्य बानए रखना चाहता है। सभ्य और शिक्षित समाज का यह अमानवीय रूप कैसे कबूतरा जनजाति को अपने शिकंजे में दबाए रखना चाहता है, यह कहानी केंद्र में है।

बीज शब्द- आदिवासी, समाज…. आदि।

भारत वर्ष में अनेक जातियों के समुदाय निवास करते हैं। अनेकता में एकता का नारा भी लगाया जाता है। भारत की सामाजिक संस्कृति में हर एक संप्रदाय अपने समाज का अस्तित्व बनाए रखने में प्रयत्नशील दिखाई देता है। वैसे तो प्रत्येक जाति-समुदाय का अपना एक अलग महत्त्व होता है। वैसा ही भारत की सामाजिक एवं संस्कृतिक धरोहर में आदिवासी समाज भी अपन महत्त्व और अस्तित्व रखता है। आदिवासी शब्द से सामान्यत: हम यह तात्पर्य लगा सकते है कि - जंगल के मूल निवासी। ये जातियाँ जंगलो में रहती हैं और इनकी सभ्यता का इतिहास लगभग पाँच हजार वर्ष पुराना है। जिसे आदिवासी जन समुदाय संभाले हुए है। इन क्षेत्रों पर इनकी स्वतंत्र सत्ता हुआ करती थी। भारत में जैसे-जैसे साम्राज्यवादी शक्तियाँ अपने राज्य की सीमा बढ़ाने हेतु प्रयास रत रही। वैसे-वैसे इन आदिवासी समुदायों के संसाधनों पर आक्रमण तथा अतिक्रमण कर इनका शोषण होना शुरू हो गया।

'आदिवासी' शब्द 'आदि' तथा 'वासी' इन दो शब्दों के योगा से बना है – जिसमें 'आदि' का अर्थ-आरंभ और 'वासी' का अर्थ- वास करने वाला। अर्थात 'आदिवासी' – आरंभ से जंगल में वास करने वाली प्राचीन प्रजाति है। इन्हें गिरिजन, वनवासी, भूमिपुत्र, वन्यजाति, जंगली, वनपुत्र आदिम नामों से भी संबोधित किया जाता है। आदिवासियों को परिभाषित करते हुए जेक्ब्स तथ स्टर्न लिखते है- "एक ऐसा ग्रामीण समुदाय या ग्रामीण समुदयों का ऐसा समूह जिसकी समान भूमि हो, समान भाषा हो, समान संस्कृतिक विरासत हो और जिस समुदाय के व्यक्तियों का आर्थिक दृष्टि से एक दूसरे साथ ओत प्रोत हो, जनजाति कहलाता है।"[1]

आदिवासी के विषय में रमणिका गुप्ता लिखती है, कि "आदिवासी आर्यो से पूर्व का मनुष्य समूह है। वह इस भूमि का मूल मालिक है। सही अर्थ में वह ही क्षेत्राधिपति है।"[2] आधुनिक हिंदी साहित्य में प्रत्येक समाज का चित्रण प्रतिबिंबित हुआ है। इक्कीसवी सदी के साहित्य में कई नयी विचारधाराओं का प्रस्फुटन हुआ है। जिसमें स्त्री, दलित, किन्नर, किसान और आदिवासी आदि विमर्शो की उत्पत्ति का एका मात्र लक्ष्य यही था कि, समाज में स्थित हशिए पर चढ़े समाज को दृष्टिक्षेप में लाकर इन विमर्शों द्वारा मानव जाति का उन्नयन करना। मैत्रेयी पुष्पा द्वारा लिखित 'अल्मा कबूतरी' प्रस्तुत उपन्यास में कथाकार ने एक नए विषय को समाजोंन्मुख रखा है। जिससे समाज के बहुतांश लोग अनभिज्ञ हैं। लेकिन मानव जीवन की वास्तविक अनुभूति याने यथार्थवादी चित्रण जिसमें मानव जीवन में संघर्षित घटनाओं तथा भुगतें भावनाओं का अनुभव है। मैत्रेयी पुष्पा ने समाज में घटित सभी प्रकारों के क्रियाकलाप तथा अनुभावों को ज्यों का त्यों यथार्थ रूप में चित्रित किया है जिसमें वे सफल हुई हैं। यथार्थ समाज से जुड़ा होता है। इन दोनों का नाता अटूट है और एक के बीना दूसरे का अस्तित्व ही नहीं बनता। इसके बारे में विचारवंत डॉ. त्रिभुवन के अपनी किताब में लेखा है कि, "सामाजिक यथार्थवाद का अर्थ होता है समाज की वास्तविक अवस्थाओं का यथार्थ चित्रण परंतु साहित्य के अंदर किसी भी वस्तु का चित्र उतार कर देना कठिन होता है क्योंकि साहित्यिक चित्र केमेरा द्वारा लिया गया चित्र नहीं होता है, बल्कि वह साहित्यकार के अनुभव एवं कल्पना के सुंदर रंग ढले होते है।"[3]

प्रस्तुत उपन्यास में कबूतरा आदिवासी जनजातियों को उस वक्त के ब्रिटीश शासन द्वारा 'जन्मजात अपराधी' घोषित की गया। इन सभी जनजातियों का यह दहकता दस्तावेज़ बयान करने लेखिका सफल हुई है। प्रेमचंद द्वारा अपने कथा साहित्य में उपेक्षित या पिछड़े वर्ग को स्थान दिया है। लेकिन उन चरितत्रों में और आदिवासियों में बहुत मातरा में अंतर है। यह विषय आज भी

अछूता रहा था। अल्मा कबूतरी उपन्यास नायिका प्रधान उपन्यास है। मैत्रेयी ने इसमें आदिवासी महिलाओं की समस्याओं को केंद्र में रखा है तथा स्त्री शोषण एवं संघर्ष को मुखरता प्रदान की है। इसके साथ–साथ उच-नीच की समस्या, अनैतिक संबंध, अंधविश्वास, निर्धनता, बेरोगारी और अशिक्षा आदि समस्याओं को चित्रित किया है। कबूतरा जनजाति के प्रधान पात्र है- कदमबाई, अल्मा भूरी, राणा रामसिंह आदि तथा सभ्य समाज के पात्र है- मंसारम जोधा, कहेर धीरज, सुरजाभान, श्रीराम शास्त्री आदि। इस उपन्यासकार ने सभ्य तथा आदिवासी समाजों का आपसी टकराव कदमबाई और मंसाराम इन पात्रों द्वारा चित्रित किया है। इस टकराव में हमेंशा कबूतरा जाति की हार होती है। कदमबाई एक नीडर औरत है जो अपने पति की मृत्यु के बाद मंसाराम द्वारा किए गए आत्याचार का विरोध एवं प्रतिशोध लेने के लिए समाज से लड़ती-जूझती है। इस संघर्ष में बेटा राणा इनका शस्त्र है। लेकिन सभ्य समाज के लोगों जैसे ही सभी लक्षण उसके बेटे के व्यक्तित्व में विराजमान हैं- वह चोरी करना, लूट करना या शराब पीना आदि बातों का साफ-साफ इन्कार कर देता है। उसमें अपनी जाति के गुण न देखकर कदमबाई अति निराश और दु:खी होती है। कदमबाई इसी सभ्य समाज के अशुद्ध वासना का शिकार हुई है और पुलिस द्वारा किए जानेवाले आत्याचार तथा प्रशासन द्वारा किए शोषण आदि के कारण घृणा और प्रतिशोध की भावना इसके सीने में भड़क उठती है। इनका समाज में अस्तित्व कैसा है उपन्यास के संवादों द्वारा समझा जा सकता है-

"हम लोग न खेतों के मालिक न मजदूर सो गोह खाते-खाते होठ चिपचिपा गए हैं। देखें तो धरती मैया कैसी-कैसी चीजें देती हैं ? जमीन में हमारा हिस्सा नहीं है।"[4]

प्रस्तुत उपन्यास में भूरी, उसके बेटे रामसिंह और बेटी अल्मा की तथा उनके संघर्ष मानापमान, पीड़ा की कहानी है। प्रस्तुत पात्रों के द्वारा कज्जा याने मैत्रेयी इसे सभ्य समाज लिखती है। यह शोषक वर्ग के रूप में चित्रित किया है। बाकी पात्र इसने संघर्ष करते हुए अपना सब कुछ दाँव पर लगा देते है। तथा इसमें वह लहूलुहान भी होते हैं। क्योंकि समस्त प्रशासन व्यवस्था ही इनके विरोध में खड़ी है। भूरी क्ज्जा समाज से टक्कर लेती है। वह अपने शरीर का सौदा कर के भी अपनी संतान को पढ़ा लिखाकर इस योग्य बनाना चाहती है, कि वह समाज में सन्मान भरी ज़िंदगी जी सके -"पतिवीरता लुगाई अपने आदमी के संग सती होती है। अपने मर्द की ब्याहता खुद तो तब मानूँगी, जब रामसिंह को पढ़ा लिखाकर इसी कचहरी के दरवाजे खड़ा कर दूँगी। भले इस सफर में मुझे दस मर्दों के नीचे से गुजरना पड़े।"[5]

इतना सब कुछ होने के बावजूद भी रामसिंह शिक्षा प्राप्ति के बाद पुलिसवाले उसी को उनका दलाल बनाकर उसकी मजबूरीयों का फाइदा उठाती है। कदमबाई और मांसाराम शराब का ठेका लेते है, खुले आम कदमबाई के साथ रहता है। आल्मा आततायियों को साहस के साथ झेलती है, उसके साथ धोकाधड़ी होती है, दुर्जन उसे बेच देता है तथा सुरजभान उसे चुनाव के समय में नेताओं के आगे उसे सेज पर सजाने के लिए खरीदता है, अल्मा की देखभाल करनेवाला धीरज उसे उसकी चुंगुल से बचा लेता है। लेकिन श्रीराम शास्त्री के यहाँ अल्मा दुबारा फंस जाती है, श्रीराम शास्त्री की अकस्मित मृत्यु के करण उसकी जगह अल्मा को उमेदवारी दी जाती है। यहाँ इस उपन्यास की कथावस्तु समाप्त होती है।

वस्तुत: अल्मा कबूतरी नायिका अल्मा नहीं भूरी-कदमबाई तथा अल्मा का एकत्रित रूप है। जिसमें अन्य स्त्री पात्र सिमट जातें हैं। इसी कारण एक और एक ही स्त्री मूर्ति प्रतिष्ठित होती है और वह 'अल्मा' है। यह नाम एक प्रतीकात्मक रूप है- अल्मा याने 'एक आत्मा' है। इस उपन्यास के कबूतरा आदिवासी समाज का चित्र अत्यंत विदारक एवं दर्दनाक है, जंगला में निवास कर्ता, भटकता, यह समाज आज भी विकास एवं सुसंस्कृत बनने से कौसों दूर हैं। जो हमेशा अनपढ़ जंगली तथा वनवासी समजा जाता रहा है। एक तरफ बाजारवाद भूमंडलीकरण तथा इंटरनेट, मीडिया के चलते विश्व का रूप लघुत्म बनता जा रहा रहा है। तो दूसरी तरफ सदियों से इन जंगली अवस्थाओं जीनेवाले इस समाज को आज भी विकास से अछूता रखना, क्या इनके जीवन में बदलाव या परिवर्तन को कभी देखा या सोचा भी जा सकता है। इस बदलाव की प्रक्रिया में अगर सभी जनजातियाँ सहयोग दे तो यह जाति भी शिक्षा पाकर अपने आप को बदलने की मानसिकता में खुद को ढालने या अन्य समाज के साथ मजधार में स्थान पाने की कोशिश करनी होगी तभी आगे जाकर आदिवासी जनसमुदाय को विकसीत रूप में देख पाना संभाव है।

संदर्भ :

1.डॉ. लक्ष्मणप्रसाद सिन्हा, 'भारतीय आदिवासियों की संस्कृतिक प्रकृति –पूजा और पर्व त्योहार, -पृष्ठ -88
2. रमणिका गुप्ता, आदिवासी कौन है?,राधाकृष्ण प्रकाशन, 2016- पृष्ठ -27
3. प्रो. त्रिभुवन सिंह, हिंदी उपन्यास और यथार्थ, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी , 2018, पृष्ठ सं. 17
4. मैत्रेयी पुष्पा, अल्मा कबूतरी उपन्यास , राजकमल प्रकाशन, -2016 पृ.संख्या-28
5. वहीं – पृष्ठ सं. 74

"आदिवासी समाज की समस्याएं 'काला पादरी' उपन्यास के संदर्भ में"

डॉ. रीना निलेश खिचडे
म्हैसाल महाविद्यालय, म्हैसाल
तह. मिरज, जिला. - सांगली।
भ्र. ध्वनी. – +९१ ९१७५५७९५२०.

सारांश :

हिंदी उपन्यास कारों की दृष्टि से आदिवासी समुदाय धरती के मूल निवासी है। किंतु उन्हें उपेक्षितों का जीवन जीना पड़ रहा है। उन्हें हमारी समाज व्यवस्था ने आज भी जंगलों में रहने के लिए बाध्य किया है। उन तक मूलभूत सुविधाएं भी अभी तक नहीं पहुंच पाई है। "वास्तव में 'काला पादरी' उपन्यास में भारत के सर्वाधिक उत्पीड़ित व उपेक्षित आदिवासियों की जीवन स्थितियों के अनेक पहलुओं को लेखक ने समाजशास्त्रीय दृष्टि, किंतु साथ ही लेखकीय संवेदना से इस ढंग से चित्रित किया है कि भारतीय समाज की जटिलता भी उभर कर सामने आती है और साथ ही आदिवासियों के जीवन की पीड़ा का मार्मिक अंकन भी लेखक की कलम से होता चलता है।

बीज शब्द: आदिवासी, समुदाय, गांव, समस्या

आज हर एक व्यक्ति, समाज संघर्षों एवं समस्याओं से घिरा हुआ है। सभी के जीवन में समस्याओं का रूप अलग-अलग होता है। उसी प्रकार आदिवासी समाज की भी अपनी समस्याएं है, संघर्ष है। जिन्हें 'काला पादरी' उपन्यास में यथार्थता के साथ प्रस्तुत किया गया है। सन २००२ में तेजिंदर द्वारा लिखा 'काला पादरी' यह उपन्यास मध्यप्रदेश के सरगुजा अंचल के आदिवासियों के साथ घटित घटनाओं को पूरी मार्मिकता एवं जीवंतता के साथ उभारने की कोशिश करता है। काला पादरी में जेम्स खाखा के अंतर्मन की संवेदनाओं को भी स्पष्ट करता है। साथ ही सरगुजा जिले की भोली, अनपढ़ और गरीब आदिवासी जनता का धर्म के ठेकेदारों के द्वारा परिस्थिति वश धर्मांतरण करना, सरकारी व्यवस्था तंत्र अर्थात बैंक के द्वारा उनके काम के लिए बार-बार ठोकर खाना, अकाल के कारण भूख से मरने वाले लोगों के साथ धर्म के आधार पर बर्ताव किया जाना आदि उपन्यास की मूल समस्याएं है। सरकारी व्यवस्था द्वारा आदिवासी समाज का कल्याण करने की जगह उनको उनके अधिकारों से, लाभों से वंचित कर दिया जाता है।

हिंदी उपन्यास कारों की दृष्टि से आदिवासी समुदाय धरती के मूल निवासी है। किंतु उन्हें उपेक्षितों का जीवन जीना पड़ रहा है। उन्हें हमारी समाज व्यवस्था ने आज भी जंगलों में रहने के लिए बाध्य किया है। उन तक मूलभूत सुविधाएं भी अभी तक नहीं पहुंच पाई है। "वास्तव में 'काला पादरी' उपन्यास में भारत के सर्वाधिक उत्पीड़ित व उपेक्षित आदिवासियों की जीवन स्थितियों के अनेक पहलुओं को लेखक ने समाजशास्त्रीय दृष्टि, किंतु साथ ही लेखकीय संवेदना से इस ढंग से चित्रित किया है कि भारतीय समाज की जटिलता भी उभर कर सामने आती है और साथ ही आदिवासियों के जीवन की पीड़ा का मार्मिक अंकन भी लेखक की कलम से होता चलता है।"[१] स्पष्ट है आदिवासियों के जीवन की पीड़ा एवं समस्याओं को लेखक हमारे सामने रखने की कोशिश करता है। प्रस्तुत उपन्यास में अनेक समस्याएं हमारे सामने आती है जो इस प्रकार है -

1. भूख की समस्या-

इस उपन्यास में आदिवासी समाज के भूख की समस्या को स्पष्ट रूप से हमारे सामने रखा गया है। मध्यप्रदेश में घोर अकाल पड़ने के कारण भुखमरी की समस्या निर्माण हो गई थी। वहां पहले से ही गरीबी और आदिवासी होने के कारण उनकी स्थिति बद से बदतर हो गई है। भूख के कारण कई लोगों की जान भी चली गई है। बीजापुर, अंबिकापुर जैसे गांव में मरे हुए लोगों की शिकायत भी दर्ज की गई है। एक बूढ़ा व्यक्ति कहता है कि, उनकी बहू की मृत्यु भूख के कारण हो गई है तथा उसके कुछ दिन पहले उसके बेटे की भी मृत्यु हो गई है। कितनी दरिद्रता और भयावहता भरी हुई है यहां के आदिवासी लोगों में। उपन्यास में भुखमरी के संदर्भ में बताया गया है कि -"इस क्षेत्र के आदिवासी पिछले कई दिनों से जहरीली जंगली बूटियां खा रहे हैं और जिले के भितरी इलाकों में तो कुछ लोग अपनी भूख मिटाने के लिए बिल्लियों और बंदरों का शिकार कर, उनका मांस खा रहे हैं।"[२]

इन गांवो में इस प्रकार अकाल छाया हुआ है कि वहां के आदिवासी भगवान से प्रार्थना करते हैं कि, उनके गांव में हाथी आए और उनके घरों-झोपड़ियों को तोड़फोड़ कर तहस-नहस मचा दे। ताकि, सरकार की ओर से उसके बदले में उन्हें घर बनाने के लिए सामान और कुछ पैसे मिले। जिन पैसों से वह खाने का सामान और अनाज खरीद सके। इतना ही नहीं, वह आदिवासी लोग गांव में बसे सेठ गोयल के वहां चावल के गोदामों से चोरी करते हैं और पकड़े जाने पर अपना गुनाह कबूल भी करते हैं। 'भूख का कोई धर्म नहीं होता' जेम्स खाखा का यह कथन हमें सच से अवगत कर देता है।

2. धर्मांतरण की समस्या-

धर्मांतरण की समस्या इस उपन्यास की दूसरी सबसे बड़ी समस्या है। धर्म के ठेकेदार अपने धर्म का विस्तार करने एवं प्रभाव बनाने हेतु आदिवासियों को अपना शिकार बनाते हैं। उपन्यास में आदिवासी समाज धर्म के लोगों के बीच अपना अस्तित्व खो बैठता नजर आता है। एक तरफ ईसाई मिशनरी हिंदुओं को ईसाई बना रहे हैं तो दूसरी ओर हिंदू संगठन इसाई यों को हिंदू बना रहे हैं। इन दोनों के बीच आदिवासी समाज अपना अस्तित्व खो रहा है। जेम्स खाखा के दादा भी आदिवासी थे। जिनका पूरा परिवार भूख के कारण तड़प रहा था तब ईसाई मिशनरी ने इन्हें धर्म बदल कर खाने-पीने का सामान दिया उन्हें जीने के काबिल बनाया इस प्रकार आदिवासियों को खाने का लालच दिखाकर धर्म परिवर्तन होता था। जब जेम्स खाखा को यह पता चलता है तब वह अपने फादर मैथ्यूज से कहता है - " क्या यह सच नहीं कि हमारी इमेजेज में पहाड़ थे, नदियां थी, पेड़ थे, चीते थे, और राजा ने हमें बंधुआ बना दिया, फिजिकली और इकोनॉमिकली एक्सप्लाइट किया, लेकिन आपने क्या किया? यू रादर टेम्ड अस, आपने हमें पालतू बना दिया, हमारे लिए हिंदू फंडामेंडलिस्टों और आप में अब कोई खास फर्क नहीं है। सारी इमेजेज छीन ली आप लोगों ने....,"[३] स्पष्ट है आदिवासियों को अपना अस्तित्व खोना पड़ा।

धर्म के नाम पर होने वाले हिंसाचार को रोकने के लिए जेम्स 'बिशप स्वामी' जो उनके इष्ट थे उनसे बात करता है। वह बिशप स्वामी को भूखे लोगों को चावल बांटने के लिए कहता है किंतु इसका विरोध करते हुए बिशप कहता है कि सिर्फ अपने धर्म के भूखे लोगों को ही यह खाना मिलेगा। अगर वह हमारा धर्म मानेंगे तभी उनको खाना दिया जाएगा। इस देश को बाजार कह कर यहां सपने पूरे करना ही अपना लक्ष्य है यह बात वह जेम्स को समझाता है। आगे वह कहता है हमें सिर्फ धर्म का प्रचार करना है किसी भी तरीके से लोगों को धर्म बदलने पर मजबूर करना है और इसके लिए कुछ लोग भूख से मर जाते हैं तो वह प्रभु की इच्छा। साथ ही वह कहता है " मतलब यह कि हमारे सामने मुख्य बात सत्ता का विश्वास हासिल करना है, चावल बांटना नहीं, चावल खरीदे जाते हैं या बेचे जाते हैं, बाटे नहीं जाते....।"[४] स्पष्ट है यहां लोगों की मजबूरी का फायदा उठाया जाता है। बाजारु वृत्ति का नजारा यहां स्पष्ट दिखाई देता है।

3.भ्रष्टाचार और शोषण की समस्या –

सरकारी व्यवस्थाओं का खोखलापन लेखक ने हमारे सामने प्रस्तुत किया है। सरकारी व्यवस्था भी इन लोगों के साथ अनैतिक व्यवहार करता है। भ्रष्टाचार एक बहुत बड़ी समस्या के रूप में हमारे सामने उपस्थित है। भ्रष्टाचार एक ऐसा दीमक है जो अंदर ही अंदर भारत देश को खोकला कर रहा है। उपन्यास का नायक सेंट्रल बैंक में काम करता है। उसका तबादला भोपाल से अंबिकापुर हुआ है। बैंक के भ्रष्ट कारोबार के बारे में बताते हुए वह कहता है- " बैंक के कारोबार में भी कमीशन तय होते थे। मेरे साथ जो तीन और अफसर थे - हैदरी, महाजन और बैनर्जी तीनों से ही मुझे काफी सख्त हिदायतें सुननी पड़ती थी। इनमें काम की हिदायत सिर्फ एक थी कि मुझे जो करना है और जहां जाकर मरना है, मैं वहां चला जाऊं, लेकिन कम से कम चुप रहूं। मेरा चुप रहना उनके लिए बहुत मायने रखता था और मैं चुप रहा करता था।"[५] कभी-कभी लेखक इस बात से परेशान होता था, तो ब्रांच मैनेजर से बात करने की कोशिश करता पर वह भी इन से मिला हुआ था। वह कहता " बस पान चबाते रहिए और चुपचाप देखते रहिए, पान खाने से होता यह है कि आपको लगता है आप बिना किसी कारण के ही चुप नहीं है"[६] इससे स्पष्ट है कि लेखक भी इसी भ्रष्ट कारोबार का हिस्सा बना है जो ना चाहते हुए भी इसे बनना पडा है।

सरकार गरीबों के लिए नई-नई योजनाएं बनाता है। पर असल में इसका फायदा किसे होता है? यह सोचने की बात है। इस उपन्यास में कुआं तैयार करने के लिए जो बिल पास किया जाता है उसमें भी किस प्रकार भ्रष्टाचार किया जाता है इस संदर्भ में नायक बताता है - " ईट के भट्टे वाले से लेन-देन का हिसाब तय करने के बाद व्यापारी सत्रह हजार चारसौ आठ रूपए की जगह हो चौबीस हजार आठसौ नब्बे रुपए का बिल तैयार करता है और सात हजार चारसौ बयासी रूपए का बटवारा हो जाता है।"[७] इस प्रकार ग्राम सेवक, पटवारी, व्यापारी, बैंक अफसर और ब्रांच मैनेजर तक सभी व्यक्ति भ्रष्टाचार करते हुए नजर आते हैं। इस प्रकार सरकारी कर्मचारियों द्वारा आदिवासी लोगों तक सुविधाएं पहुंचती ही नहीं उन सुविधाओं में भी यह कर्मचारी अपना फायदा देखते हैं।

4. राजनैतिक समस्या-

सरगुजा के स्थानीय आदिवासियों की समस्या का कारण मौजूदा राजनीतिक चरित्र भी है। अखबारों में राज्य के मुख्यमंत्री आदिवासियों की संस्कृति के गर्व की बात करते हुए उनके विकास की बात करते नजर आते हैं। इस पर जेम्स खाखा राजनीति पर कटाक्ष करते हुए कहते हैं -" जेम्स ने अखबार वापस मेज पर रख दिया और हंसते हुए कहा," दीदी, देखो इन पॉलीटिशियंस को इन्हें अपने आदिवासियों की संस्कृति पर गर्व होता है, जबकि इन्हें शर्म आनी चाहिए कि वह आज भी नंगे रहते हैं।?[८] मध्यप्रदेश के

सरगुजा जिले के वर्णन में बताया गया है कि अकाल के समय में आदिवासियों को किसी की भी मदद नहीं मिली न सरकार की तरफ से ना चर्च की तरफ से।

5. अशिक्षा और अंधविश्वास की समस्या-

सरगुजा जिले के महेशपुर गांव का चित्रण उपन्यास में किया गया है। महेशपुर गांव में अशिक्षित की संख्या स्त्रियों में अधिक है। बाईस तेईस साल की लड़कियों में अपने देह के प्रति भी जागरूकता दिखाई नहीं देती। महेशपुर गांव के लोग अपने सरपंच के बारे में भी कुछ नहीं जानते यह उनकी अज्ञानता ही है। " कभी-कभी तो होता यह है कि किसान सिर्फ अंगूठा लगाता है और उसके बारे में सारी जानकारी ग्राम सेवक द्वारा भर दी जाती है।"[९] स्पष्ट है आदिवासी लोग अशिक्षित हैं।

यह अंचल शुरू से ही उपेक्षा, गरीबी, भूखमरी, अशिक्षा, बदहाली, अंधश्रद्धा से पूरी तरह घिरा हुआ है। अशिक्षा के कारण लोग भयानक रूढ़ियों से जकड़े हुए हैं, ये रूढ़ियां जिन्हें वहां के लोग परंपरा मानते हैं, इतने भयानक एवं दर्दनाक है कि किसी को भी विचलित कर सकते हैं। उपन्यास के एक दृश्य में एक आदमी छ; दिन से भूखा है, उसे खाना देने के बजाय उस भूखे व्यक्ति को गांव के चौराहे में लिटा दिया जाता है यह कहकर की उस पर प्रेतात्मा का साया है और बैगा द्वारा उसके शरीर पर अमानवीय यातनाएं दी जाती है। गांव के लोगों का विश्वास है कि अगर वह व्यक्ति उठ गया तो प्रेतात्मा से मुक्त हो जाएगा अन्यथा ना उठने पर वह पापी कहलाएगा। इस पर आदित्य पाल द्वारा जेंम्स खाखा को किया गया प्रश्न पाठकों को स्तब्ध कर देता है की भूख क्या प्रेत होती है? स्पष्ट है अशिक्षा और अंधविश्वास ने उणे पूरी तरह से जकड़ लिया है। साथ ही यहां के आदिवासी लोग मरे हुए लोगों के शरीर को जमीन के अंदर गड्ढा खोदकर दफना देते हैं और उस पर नीम का पेड़ लगा देते हैं। ताकि उसकी दुष्ट प्रेतात्मा आसानी से बाहर ना निकल पाए।

6. आर्थिक स्थिति की समस्या –

जंगल में रहने के कारण आदिवासी लोगों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। बरसात की कमी के कारण अकाल पडता था और निर्वाह करना भी उनके लिए कठिन हो जाता था। उपन्यासकार ने आदिवासियों की दशा का इस प्रकार वर्णन किया है कि, निम्न वर्ग की गरीबी का प्रत्यक्ष रुप हमारे सामने दिखाई देने लगता है। उस क्षेत्र की एक लड़की ने बालों में लाल रंग का 'गंदा' सा रिबन बांध रखा है। यहां 'गंदा' शब्द गरीबी का बोध ही कराता है। " गांव की पुरुष और स्त्रियां दोनों एक जैसी धोतिया पहना करते। बच्चे नंगे रहते, थोड़ा बड़े होते तो मां - बाप की पिछले साल की धोतिया वे भी अपने ऊपर ओढ़ लेते।"[१०]

सरगुजा जिले के आदिवासी बच्चे आर्थिक तंगी के कारण रेलगाड़ी से माल चुराते हैं। यह बच्चे चलती ट्रेन पर चढ़कर माल नीचे गिरा देते। छोटे होने के बावजूद अपने निर्वाह के लिए यह बच्चे अपनी जान पर खेल जाते हैं। आदिवासी समाज की आर्थिक स्थिति बहुत ही बिकट है।

निष्कर्ष:-

निष्कर्षत: यह कह सकते हैं कि यह उपन्यास मध्यप्रदेश के सरगुजा इलाके में बसे आदिवासी समाज का लेखा-जोखा हमारे सामने उजागर करता है। हिंदी उपन्यास कारों की दृष्टि से आदिवासी समुदाय धरती के मूल निवासी हैं किंतु उन्हें उपेक्षितों का जीवन जीना पड़ रहा है। उन्हें हमारी समाज व्यवस्था ने आज भी जंगलों में रहने के लिए बाध्य किया है। अकाल के कारण सरगुजा जिले में भूख की समस्या उभरी है। भूखमरी ने इस आदिवासी समाज को पूरी तरह से अपनी चपेट में ले लिया है। इसका फायदा ईसाई मिशनरी और हिंदू संगठन उठा रहे हैं। इन दोनों के बीच आदिवासी समाज अपना अस्तित्व खो रहा है। खाने का लालच दिखाकर धर्म परिवर्तन किया जा रहा है। सरकारी व्यवस्थाओं का खोखला पन लेखक ने हमारे सामने प्रस्तुत किया है। सरकारी योजनाओं को आदिवासी समाज तक पहुंचाया ही नहीं जा रहा था। योजनाओं के नाम पर सरकारी अफसर अपनी जेब भरते नजर आते हैं। स्थानीय आदिवासियों की समस्या का कारण मौजूदा राजनीतिक परिस्थिति भी है। अकाल के समय आदिवासियों को किसी की भी मदद नहीं मिली। अशिक्षा के कारण आदिवासी लोग भयानक रूढ़ियों में जकड़े हुए हैं, ये रूढ़ियां जिन्हें वहां के लोग परंपरा मानते हैं वह बहुत भयानक एवं दर्दनाक हैं। अंधविश्वास ने उन्हें पूरी तरह से जकड़ लिया है। जंगल में रहने के कारण और बरसात की कमी के कारण यह लोग आर्थिक तंगी से भी गुजर रहे हैं।

अंततः यह कहा जा सकता है कि अकाल, भूख, शोषण, धर्मांतरण, निरक्षरता, अंधविश्वास और गरीबी जैसी समस्याओं से आदिवासी समाज जूझ रहा है। लेखक ने इस उपन्यास के माध्यम से आदिवासियों की स्थितियों से हमें अवगत कर विचार करने पर मजबूर कर दिया है कि सचमुच हम विकसनशील देश की संकल्पना को न्याय दे सकते हैं?

संदर्भ-

1. प्रो. चमनलाल; दलित साहित्य: एक मूल्यांकन, पृष्ठ. १६६
2. तेजिंदर, काला पादरी; नई दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस ; प्र.सं. २००२,पृ. २१
3. वही. पृ. ४५
4. वही पृ. १२४
5. वही पृ. ११
6. वही पृ. ११
7. वही पृ. १३
8. वही पृ. १०१
9. वही पृ. १३
10. वही पृ.७०

"हिंदी साहित्य में आदिवासी-विमर्श"

प्रा. अपर्णा संभाजी कांबळे
सहायक प्राध्यापिका
डी. के. ए. एस. सी. कॉलेज, इचलकरंजी
मो. नं. 7709683122
ई-मेल – aparnakamble282@gmail.com

शोध सार:

'गायब होता देश' में भी आदिवासियों के संघर्ष को एक व्यापक संघर्ष के हिस्से के रुप में देखा गया है। चंदन श्रीवास्तव का कहना है कि "इसी वजह से उपन्यास आदिवासी जन-जीवन के बारे में कुछ भी ऐसा नहीं बता पाता जो खनन, भूमि-अधिग्रहण या फिर मानवाधिकारों के मुद्दे पर सक्रिय स्वयंसेवी संस्थाओं के प्रकाशनों अथवा आंदोलनधर्मी अखबारों/पत्रिकाओं में ना मिलता हो।" चंदन श्रीवास्तव का कहना है कि भले ही रणेंद्र आदिवासी समाज से परिचय और इससे सम्बंधित अपने अनुभव-संसार का दावा करें, पर 'ग्लोबल गाँव के देवता' या फिर 'गायब होता देश' में आदिवासी समाज की सरलीकृत झाँकी भर है, न कि उनकी समस्याओं की जटिलता का उद्घाटन।

बीज शब्द: आदिवासी, साहित्य, विमर्श

प्रस्तावना:

आदिवासी का अर्थ- किसी भी देश के मूल निवासियों को आदिवासी शब्द से संबोधित किया जाता है। 'आदि' का अर्थ 'आरंभ' तथा 'वासी' का अर्थ होता है 'रहने वाला' इस प्रकार आदिवासी शब्द का अर्थ हुआ किसी स्थान पर रहने वाले वहाँ के मूल निवासी। दुनिया के आदिवासी समाजों ने अपनी लड़ाइयाँ खुद ही लड़ी हैं, लेकिन मुख्यधारा के क्रांतिकारी साहित्यों ने भी उनके प्रति मानवीय संवेदनशीलता प्रदर्शित करते हुए उनकी चिंताओं के चित्रण की ज़हमत नहीं उठाई। सवाल यह उठता है कि आख़िर उनकी चिन्ता किसी को क्यों नहीं है? क्यों यह समुदाय आज भी हाशिये पर की जिंदगी जीने को अभिशप्त है? साहित्य यदि बाजार के लिए नहीं है, मनुष्य और मनुष्यता के लिए है, तो हिंदी साहित्य की प्रस्तुति आदिवासी समाज के बगैर क्यों है? हिंदी साहित्य के सन्दर्भ में यह प्रश्न प्रेमचंद से ज़्यादा प्रेमचंद की परंपरा का वाहकों से है कि प्रेमचंद से छूट गया आदिवासी आज भी उनकी परंपरा से क्यों बहिष्कृत है? लेकिन, इस प्रश्न का जवाब न मिलता देख पिछले दशकों के दौरान इस शून्य की भरपाई की दिशा में खुद आदिवासियों को पहल करनी पड़ी।

आदिवासी-विमर्श की पृष्ठभूमि:

समकालीन हिंदी साहित्य स्त्री-विमर्श और दलित-विमर्श से आगे बढ़ने की कोशिश कर रहा है और हिंदी में आदिवासी विमर्श सबसे नया विमर्श है। ऐसा नहीं कि हिंदी में इससे पहले आदिवासियों के जीवन पर नहीं लिखा गया, लेकिन पिछले ढाई दशकों के दौरान उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की तेज़ होती प्रक्रिया के साथ जिस तरह से आदिवासियों के जीवन में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हस्तक्षेप को बढ़ाया और इसके कारण उनके जल, जंगल एवं जमीन से सम्बंधित पारंपरिक अधिकारों का अतिक्रमण शुरू हुआ, इसने आदिवासी क्षेत्रों में संघर्ष को तेज़ किया और इस संघर्ष में राजसत्ता एवं प्रशासन का हस्तक्षेप बहुराष्ट्रीय कंपनियों एवं कॉर्पोरेट्स के पक्ष में तथा आदिवासियों के विरुद्ध रहा। इसने आदिवासियों के समक्ष अस्तित्व एवं अस्मिता के विकट प्रश्न को जन्म दिया जिसमें यदि वे अपनी सांस्कृतिक पहचान को अहमियत देते हैं, तो उनका अस्तित्व खतरे में पड़ सकता है और अगर वे अपने अस्तित्व को प्राथमिकता देते हैं, तो उनकी सांस्कृतिक पहचान खतरे में पड़ सकती है। ध्यातव्य है कि यूनेस्को ने भारत की जिन 196 जन-भाषाओं के अस्तित्व को खतरे में बतलाया, उनमें अधिकांश भारत की आदिवासी भाषाएँ हैं। यही वह पृष्ठभूमि है जिसमें आदिवासियों की अस्तित्वगत एवं अस्मितागत बेचैनी ने एक पृथक एवं स्वतंत्र धारा के रूप में आदिवासी विमर्श की संभावनाओं को बल प्रदान किया। इसके परिणामस्वरूप दलितों से प्रेरणा ग्रहण करते हुए आदिवासियों की समस्याओं पर लेखन की दिशा में खुद आदिवासियों ने ही पहल की।

प्रेमचंद के साहित्य में आदिवासी:

प्रेमचंद के कथा-साहित्य में आदिवासियों को जगह नहीं मिली है और न ही उनका आदिवासियों के जीवन से परिचय था, तथापि उनकी रचनाओं में दो जगहों पर आदिवासियों की चर्चा मिलती है: 'गोदान' उपन्यास में और 'सद्गति' कहानी में। गोदान में शिकार-प्रसंग में मेहता और मालती की टोली शिकार ढूँढ़ते-ढूँढ़ते जंगल के एक ऐसे हिस्से में पहुँच जाती है, जहाँ उनकी

मुलाकात वन-कन्या अर्थात् आदिवासी लड़की से होती है। प्रेमचंद ने उस वन-कन्या का चित्रण करते हुए पारंपरिक सौंदर्य चेतना के आलोक में भले ही उसे कुरूप बतलाया हो, पर उसके मांसल शरीर का वर्णन करते हुए मिस्टर मेहता को उसके प्रति आकृष्ट और उसके सेवा-भाव की प्रशंसा करते हुए दिखलाया है।

गैर-आदिवासियों द्वारा आदिवासी-विमर्श:

प्रेमचंद भले ही आदिवासी रचनाकार न हों, पर उन्होंने अपनी रचनाओं के जरिये उस महाजनी सभ्यता के विरुद्ध आवाज़ उठाई जिनका आदिवासी जीवन एवं समाज में हस्तक्षेप आज भी बदस्तूर जारी है और जो आदिवासी दमन एवं शोषण के मूल में मौजूद है। इन महाजनों की जड़ें आदिवासी क्षेत्रों में न होकर सेमरी एवं बेलारी जैसे गाँवों में हैं और प्रेमचंद इनकी इन्हीं जड़ों पर प्रहार करते हैं। इसीलिए केदार, प्रसाद, मीना ने सही ही कहा है कि "प्रेमचंद, रेणु, संजीव और रणेंद्र आदि का साहित्य आदिवासी साहित्य न सही, पर आदिवासियों की समस्याओं पर लिखा गया महत्वपूर्ण साहित्य है।"हिंदी जगत पहले-पहल आदिवासी समाज से रूबरू हुआ रेणु के आँचलिक उपन्यास 'मैला आँचल' में, जब उसने अपने जमीनी हक से बेदखल संथालों को अपने स्वत्व और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते देखा।

'गायब होता देश' में भी आदिवासियों के संघर्ष को एक व्यापक संघर्ष के हिस्से के रुप में देखा गया है। चंदन श्रीवास्तव का कहना है कि "इसी वजह से उपन्यास आदिवासी जन-जीवन के बारे में कुछ भी ऐसा नहीं बता पाता जो खनन, भूमि-अधिग्रहण या फिर मानवाधिकारों के मुद्दे पर सक्रिय स्वयंसेवी संस्थाओं के प्रकाशनों अथवा आंदोलनधर्मी अखबारों/पत्रिकाओं में ना मिलता हो।" चंदन श्रीवास्तव का कहना है कि भले ही रणेंद्र आदिवासी समाज से परिचय और इससे सम्बंधित अपने अनुभव-संसार का दावा करें, पर 'ग्लोबल गाँव के देवता' या फिर 'गायब होता देश' में आदिवासी समाज की सरलीकृत झाँकी भर है, न कि उनकी समस्याओं की जटिलता का उद्घाटन।

हिंदी कहानी में आदिवासी विमर्श

कहानी-विधा में आदिवासी कलम का कोई चर्चित कथाकार अभी तक नहीं उभरा है, फिर भी वाल्टर भेंगरा के कहानी-संग्रह 'देने का सुख' एवं 'लौटती रेखाएँ'; आठवें दशक में पीटर पाल एक्का के प्रकाशित कहानी संग्रह 'खुला आसमान बंद दिशाएँ', 'परती जमीन' एवं 'सोन पहाड़ी'; जेम्स टोप्पो का कहानी-संग्रह 'शंख नदी भरी गेल' और मंजु ज्योत्स्ना का 'जग गयी जमीन' महत्वपूर्ण हैं। रमणिका गुप्ता के कहानी-संग्रह 'बहू जुठाई', केदारनाथ मीणा के कहानी-संग्रह 'आदिवासी कहानियाँ' और पूनम तूषामड़ के कहानी-संग्रह 'मेले में लड़की' ने भी अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई है। यह बात अलग है कि इन पर जितनी चर्चा होनी चाहिए थी, वो नहीं हो पाई। एलिस एक्का की कहानियाँ भी 'आदिवासी' पत्रिका के पन्नों में ही सिमटी रह गयीं। रोज केरकेट्टा ने न केवल प्रेमचंद की दस कहानियों का अपनी मातृभाषा खड़िया में अनुवाद किया, वरन् 'भँवर' जैसी मजबूत कहानी लिखी। लेकिन, इसके बाद से आज तक आदिवासी कथा-लेखकों ने अपने एकल कहानी-संग्रहों के जरिये अपनी उपस्थिति दर्ज करवाने की आवश्यकता नहीं समझी, या फिर यूँ कह लें कि वे अपनी उपस्थिति दर्ज करवा पाने में असफल रहे।

दलित-विमर्श नया है, लेकिन आदिवासी विमर्श की परिपाटी काफी पुरानी है। इसकी सशक्त वाचिक परम्परा रही है और यह अब लेखन के धरातल पर उतर रही है। इसने कविता को अपना मुख्य हथियार बनाया है क्योंकि आज भी आदिवासी समाज का बड़ा हिस्सा अशिक्षित एवं अभावग्रस्त है तथा गरीबी एवं भुखमरी का शिकार है। आधुनिक शिक्षा एवं आधुनिक चिंतन से दूर आदिवासी समाज का यह हिस्सा अपने पारंपरिक सामूहिक मूल्यों के साथ अपने अस्तित्व को बचाने के लिए जद्दोजहद कर रहा है। ऐसी स्थिति में वाचिक परंपरा के प्रति अनुकूलता के कारण कविता ही वह माध्यम है जिसके जरिये आदिवासी रचनाकार अपनी आवाज़ आदिवासी समाज के बड़े हिस्से तक पहुँचा सकते हैं।

यहाँ पर यह बात भी ध्यान में रखे जाने योग्य है कि आदिवासी समाज में आरंभ से ही कबीलाई स्वतंत्रता की भावना प्रबल रही है और इसने आदिवासियों में विद्रोह-वृति को जन्म देते हुए इन्हें लगातार उकसाया है। इसके विपरीत दलितों में विद्रोह-वृति एक नवीन प्रवृति है।

आदिवासी-विमर्श इस मायने में भी दलित-विमर्श से भिन्न है कि जिन गैर-आदिवासियों के द्वारा आदिवासियों के विषय पर लिखा जा रहा है, न तो उनका उन आदिवासियों के जीवन से परिचय है और न ही वे आदिवासियों के जीवन से परिचय के इच्छुक हैं एवं इसके लिए आदिवासियों के इलाकों में जाकर समय गुजारने के लिए बहुत तैयार दिखते हैं। इसीलिए इनका आदिवासियों के जीवन से वैसा गहरा परिचय नहीं है जो लेखन को धार देने के लिए आवश्यक है। ये बातें दलितों के विषय पर लिखने वाले गैर-दलित लेखकों के सन्दर्भ में नहीं कही जा सकती हैं। दलितों के जीवन पर लिखने वाले दलित लेखकों का दलितों के जीवन से वैसा अपरिचय नहीं है जैसा अपरिचय आदिवासियों के विषय पर लिखने वाले गैर-आदिवासी रचनाकारों का आदिवासी जीवन एवं संस्कृति से।

अंग्रेजों के साथ-साथ जमींदारों, साहूकारों और महाजनों के द्वारा उनके शारीरिक शोषण और पुरुषों के उनके प्रति अमानुषिक बर्ताव और उनके दमन, शोषण एवं उत्पीड़न की लम्बी परम्परा रही है तथा इसके विरुद्ध उन्होंने समय-समय पर आवाज़ भी बुलंद की है। इतना ही नहीं, आदिवासी समाज के सामने विस्थापन एक ऐसी समस्या के रूप में सामने आती है जो उन्हें सांस्कृतिक, मानसिक और भौगोलिक तौर पर बदलकर रख देती है और इसकी पृष्ठभूमि में आदिवासी स्त्रियाँ देह में तब्दील होकर रह जाती हैं। सभ्य समाज उसकी देह की गंध से रोमांचित हो उठता है और फिर शुरू होता है देह को खरीदने एवं बेचने का अंतहीन सिलसिला।

यही वह पृष्ठभूमि है जिसमें आदिवासी साहित्य में स्त्रियों के बहुत से सवालों को महत्व मिला है। इसमें इस समाज की प्रताड़ित महिलाओं की पीड़ा एवं वेदना, उनकी अंतर्वेदना, उनकी कराह एवं चीख और मदद के लिए उनके द्वारा लगाई जा रही गुहारें पहाड़ों, जंगलों और घाटियों में बज रहे नगाड़े की तरह गूँज उठती हैं। निर्मला पुतुल की कवितायें इसकी प्रमाण हैं जिनमें आदिवासी स्त्री के जीवन का चित्रण करते हुए स्त्री-अस्मिता का सवाल उठाया गया है और आदिवासी समाज के साथ-साथ स्त्री के विविध पहलू पर भी टिप्पणी की गयी है।

आदिवासी विमर्श हिंदी की तमाम अस्मितावादी विमर्शों में अपनी भिन्न एवं विशिष्ट पहचान बनता हुआ उपस्थित होता है। जहाँ स्त्रीवादी विमर्श की परम्परा में लिखे गए साहित्य में जाति के प्रश्न की अनदेखी करते हुए सिर्फ स्त्री जाति के हकों और अधिकारों की बात की गयी है और दलितों, आदिवासियों और मुस्लिम स्त्रियों के प्रश्नों से आँखें चुराई गयी है, वहीं दलित-साहित्य भी स्त्री के सवालों से नज़रें चुराता दिखाई पड़ता है जिसके कारण दलित-स्त्री विमर्श का आधार तैयार होता है। लेकिन, इन दोनों से भिन्न आदिवासी साहित्य स्त्री के प्रश्न को बड़ी बखूबी से उठता है। यही कारण है कि इसमें स्त्रियाँ बड़ी तादाद में मौजूद हैं, पुरुषों के कंधे से अपना कंधा मिलाते हुए, ठीक आदिवासी समाज की तरह।

निष्कर्ष:

आदिवासी समाज सदियों से जातिगत भेदों,वर्ण व्यवस्था, विदेशी आक्रमणों, अंग्रजों और वर्तमान में सभ्य कहे जाने वाले समाज द्वारा दूर-दराज जंगलों और पहाड़ों में खदेड़ा गया है।अज्ञानता और पिछड़ेपन के कारण उन्हें सताया गया है। अक्षरज्ञान न होने के कारण यह समाज सदियों से मुख्यधारा से कटा रहा, दूरी बनाता रहा। उनकी लोककला और उनका साहित्य सदियों से मौखिक रूप में रहा हैं और इसका कारण रहा उनकी भाषा के अनुरूप लिपि का विकसित न हो पाना। यही कारण साहित्य जगत में आदिवासी रचनाकार और उनका साहित्य गैर-आदिवासी साहित्य की तुलना में कम मिलता है।आज भले ही आदिवासियों की रचनाओं में एक प्रकार की अनगढ़ता एवं खुरदरापन दिखे और कलात्मक बारीकियों के आलोक में उनका मूल्यांकन पाठकों एवं आलोचकों को निराश करता हो, पर इसका महत्व इस बात में है कि इसने मुख्यधारा के द्वारा उपेक्षित एवं तिरस्कृत आदिवासी समाज एवं उनके जीवन से व्यापक समाज को परिचित करवाने की कोशिश की।

संदर्भ-सूची:

1. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी: डॉ. रमणिका गुप्ता
2. आदिवासी साहित्य विमर्श : चुनौतियाँ और संभावनाएँ: गंगा सहाय मीना
3. प्रेमचंद साहित्य में आदिवासी: गंगा सहाय मीना
4. शुक्ल विनोदकुमार वाणी प्रकाशन, दिल्ली

"गोस्वामी तुलसीदास एवं संत एकनाथ के साहित्य के परिप्रेक्ष्य में पर्यावरण चेतना"

डॉ. सागर रघुनाथ कांबळे
श्री. शिव-शाहू महाविद्यालय,
सरूड
दूरभाष-9545330761
ई-मेल- sagarkam24@gmail.com

शोध सारांश :

मानव एवं पर्यावरण का घनिष्ठ संबंध है। जब से जीव का इस सृष्टि में जन्म हुआ है, तभी से उसका संबंध पर्यावरण से जुड गया है। पर्यावरण सजीव तथा निर्जीव घटकों से बना हैं। भारतीय संस्कृति में वन और वनस्पति का बहुत अधिक महत्व रहा है। ऋषि-मुनि वनों में रहकर ही तप साधना करते थे। प्रकृति से उनका संबंध घनिष्ठ था। वैदिक ऋचाओं का निर्माण भी वनों में हुआ था। मानव, वन्य, जीव, जंतु, वृक्ष, पर्वत, सरिताएँ, ऋतुएँ आदि सभी परस्पर एक दुसरे से जुडे है तथा पर्यावरण के अभिन्न अंग है। वेद, उपनिषद, पुराण, सूत्र ग्रंथ आदि का निर्माण भी वनों में ही हुआ है।

बीज शब्द : पर्यावरण, चेतना आदि।

भूमिका :

आज समूचा विश्व पर्यावरण प्रदूषण की समस्याओं से बाधित होकर चिंताग्रस्त बना है। इसका कारण मनुष्य की बढती आकांक्षाएँ तथा अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए आसूरी स्वार्थवृत्ति है। मानव समाज की अधिकांश समस्याएँ मानसिक विकृति से संबंधित है और इसका मुख्य कारण बौद्धिक कालुष्य एवं प्राकृतिक विकृतियाँ और प्रदूषित वातावरण है। प्राकृतिक संपदाओं का अत्याधिक दोहन एवं उनके प्रदूषण से अनेक समस्याएँ उत्पन्न हुई है और हो रही है। परिणामत: अनियमित बरसात, अकाल, बर्फवृष्टि, बाढ का प्रकोप, ओझोन क्षरण आदि के कारण समस्याओं से बढोत्तरी हो रही है। आज के समय की पर्यावरण प्रदूषण से संबंधित समस्याओं के निराकरण एवं समाधान में रामचरितमानस और भावार्थ रामायण में उल्लेखित चिंतन महत्त्वपूर्ण एवं सार्थक है। तुलसीदास एवं एकनाथ ने अपनी रचनाओं में प्राकृतिक पर्यावरण की विशुद्धता एवं मानव अंत:करण की पवित्रता का विस्तृत वर्णन किया है। उनके कथानायक श्रीराम प्रकृति के संरक्षक है।

पर्यावरण अर्थ, परिभाषा :

'पर्यावरण' शब्द अंग्रेजी के Environment शब्द का पर्यायी हिंदी शब्द है। इसका अर्थ Surrounding अर्थात घेराव, पडौस, चारों ओर का प्रदेष या स्थान है।

पर्यावरण का अर्थ- सब ओर से ढकना, घेरा डालना, व्याप्त होना आदि है।" भारतीय समाज और मनीषियों ने पर्यावरण को मानव जीवन का अविभाज्य अंग स्वीकार किया है। वेद, उपनिषद, पुराणों से लेकर आधुनिक काल तक ऋषि, संत एवं विद्वानों ने पर्यावरण चेतना को लेकर समाज को सजग करने का प्रयास किया है। प्रकृति की रक्षा में ही मानव की सुरक्षा है प्रतिपादित करते हुए वैदिक साहित्य में प्रकृति की रक्षा का संदेश दिया गया है।

पाश्चात्य पर्यावरणीय अवधारणा में प्रकृति, उसके बाह्य अंग और तत्संबंधी क्रियाएँ सम्मिलित है; जब कि भारतीय पर्यावरण अवधारणा में भारतीय चिंतन, भारतीय संस्कृति एवं भारतीय अध्यात्म भी सम्मिलित है।

तुलसीदास ने रामचरितमानस की कथा के माध्यम से पर्यावरण के दो रूपों- प्राकृतिक पर्यावरण और मानसिक पर्यावरण के विशुद्ध एवं प्रदूषित पक्षों को परिभाषित किया है। एकनाथ ने भावार्थ रामायण में प्रकृति का वर्णन तीन रूपों में किया है-पहला प्रकृति का वर्णनात्मकदर्षन, दूसरा उपमा, रूपकों में चित्रित प्रकृति और तीसरा रसभाव में प्रकृति चित्रण आदि। भावार्थ रामायण ग्रंथ के आरंभ से अंत तक प्रकृति का चित्रण हुआ है। एकनाथ महाराज ने प्रकृति सौंदर्य का प्रभाव इन्हीं शब्दों में व्यक्त किया है-

"वृंदावने सुमनवने। शोभतील वने उपवनें।
बिल्ब अश्वत्थ मधुबनें। आम्रवनें मधमधित।
पंचपंच वृक्षाची दाटी। गंगातीरी निकटा निकटी।
त्यांमाजी शोभे पंचवटी। देखता दृष्टि मन निवे।"

अर्थात वृदांवन की भाँति पंचवटी में अनेक वन, उपवन हैं। यहाँ मधुर फलों से पेड लद गए है और आम के पेड भी फलों के कारण झूक गए है। पाँच-पाँच प्रकार के पेड नदी के तट पर फलों से भर गए हैं।

रामचरितमानस में श्रीराम को विष्णु का अवतार रूप बताया है, जो प्रकृति के पंचतत्त्वों-क्षति, जल, पावक, गगन और समीर से बने हुए है। जैसे-

"क्षिति जल पावक गगन समीरा। पच्च रचितअसि अधम सरीरा।"

वनगमन के समय प्रकृति ने राम, लक्ष्मण और सीता को अपना प्रसन्न सान्निध्य देकर उन्हें कष्ट नहीं पहुँचाया था। जैसे-

"जब ते आइ रहे रघुनायक। तब ते भयउ बनु मंगलदायक।
फूलहिं फलहिं विपट विधि नाना। मंजु बलित वर बेलि विताना।"

जनकपुर नगरी में प्राकृतिक पर्यावरण की समृद्धि के समस्त साधन स्वच्छ, संपन्न एवं दर्शनीय थे। जैसे- अर्थात अरूणा, वरूणा के संगम पर मानो सरस्वती आ गई हैं। इन नदियों का सुंदर जल श्रीराम को अच्छा लगा था।

तुलसीदास ने रामचरितमानस में निर्मल जल की धारा प्रवाहित होनेवाली अनेक नदियाँ, कूपों, तडागों, झीलों के प्रति लोगों का ध्यान आकृष्ट किया है। जैसे-

"सरिता सब पुनीत जलु बहहीं, खग मृग मधुप सुखी सब रहहीं।"

रामचरितमानस में गंगा, यमुना, सरयु, मंदाकिनी, गोदावरी आदि नदियों का उल्लेख किया है, ये सभी विशुद्ध जल प्रदान करती है। भावार्थ रामायण में उल्लेख आया है कि दंडकारण्य में अनेक वर्षों तक अकाल पडने से भयानकता फैल गयी थी। अत्रि ऋषि की पत्नी अनुसया के प्रयत्नों से वहाँ पुन:वैभव प्राप्त हुआ था। जैसे-अर्थात कैलास पर्वत के निकट हेमाद्रि और उत्तर दिशा के द्रोणाद्रि पर्वतों पर दिव्य औषधियाँ प्रचुर मात्रा में थी। वे अपनी तेजस्विता एवं प्रभावता के कारण प्रकाशमान हो रही थी। हनुमान उचित औषधी को पहचानने में दिक्कत आने से उसने पर्वत को ही उठाकर लाया था। यही वर्णन रामचरितमानस में भी आया है।

रामायण में भी प्रदूषणरहित एवं पवित्र निर्मल आकाश सर्वत्र दिखाई देता है। नगरों के साथ गाँवों में भी स्वच्छ वायु प्रवहण से वातावरण सुरम्य होने का वर्णन दिखाई देता है। रामचरितमानस और भावार्थ रामायण में वर्णित निर्गल, सुगंधित वायु प्रवहण आज के समाज जीवन को वायु प्रदूषण से बचने के लिए उपदेषक एवं निर्देष प्रदान करती है। प्राकृतिक पर्यावरण के संरक्षण के उपायों में राज्य व्दारा वृक्षों को लगाना, संवर्धित करना, सुरक्षा करना, जल को संरक्षित करना, उसकी पवित्रता बनाएँ रखना, नदियों पर घाट बनाना, कूपों का निर्माण एवं संरक्षण, पशु-पक्षियों का पश्रय देना, नगरों, ग्रामों में स्वच्छता संबंधी कार्यों को प्रधानता थी।

रामचरितमानस और भावार्थ रामायण में आर्य, वानर तथा राक्षस आदि सभी राजाओं के राज्यों में प्रकृति की प्रफुल्लता एवं उनके संरक्षण की व्यवस्था थी। राजा सुग्रीव के राज्य में मधुबन का संरक्षण राज्य की ओर से था। उसमें बहुत से रक्षक उसकी रखवाली करते थे। इस वाटिका को हानी पहुँचाना अपराध समझा जाता था। हनुमान ने लंका में स्थित बगिचे का नुकसान करने के कारण रावण ने उसे दंड देने का प्रयास किया था। राक्षस राजागण यद्यपि प्रकृति के संरक्षण के प्रति उदार थे।

निष्कर्ष

आज प्राकृतिक एवं सामाजिक पर्यावरण प्रदूषण का मुख्य कारण बढती आबादी और उसकी अवास्तव आकांक्षाएँ या भौतिक अभिलाषाएँ हैं। रामचरितमानस और भावार्थ रामायण में वर्णित व्यवस्थित समाज, प्रकृति प्रेम, अनुषासित प्रशासन एवं संयमित प्रजा, सद्शिक्षा, सुसंस्कार, निस्वार्थ भावना, कर्तव्यनिष्ठा आदि को सहज एवं स्वाभाविक उपस्थिति के कारण पर्यावरण प्रदूषण के समाज कौसो दूर था। आज के बढती पर्यावरणीय प्रदूषण की समस्या से मुक्ति पाने का पवित्र एवं अनुकरणीय रास्ता ग्रंथों में मिलता है, जिसका हमें अनुपालन करना अत्यावश्यक है।

संदर्भ-

1) संस्कृत हिंदी कोष- डॉ. वामन शिवराम आपटे पृ. 968.
2) वैदिक संस्कृति और पर्यावरण-संरक्षण-डॉ. विजय एस. सोजित्रा पृ. 8.
3) अथर्ववेद- 12-1-12.

डेराडंगर आत्मकथा में चित्रित आदिवासी समस्याएँ

कु. प्राजक्ता अंकुश रेणुसे
शोधछात्रा
शिवाजी विश्वविद्यालय कोल्हापुर
Email - prajurenuse30@gmail.com
Mob.no.- 8551829188

सारांश: -

डॉ. अर्जुन चव्हान के द्वारा मराठी की अनूदित आत्मकथा 'डेराडंगर' में दादासाहब मोरे के जीवन के अनुभवों को प्रस्तुत किया है। आत्मकथा का मूल नायक आत्मकथाकार होता है लेकिन प्रस्तुत आत्मकथा में लेखक को गौण स्थान दिया गया है और परिवेश को प्रथम स्थान दिया है। दादासाहब मोरे कुडमुडे जोशी (डुग्गी जोशी) समाज के लोग पिंगला नामक पंछी को लेकर सुबह-सुबह भीख माँगने के लिए हर एक के दरवाजे पर घुमते है। अपना पेट चलाने के लिए भीख माँगने के लिए मजबूर है। पिंगला पंछी को साधन बनाकर भीख माँगते है। पिंगला पंछी क्या बोलता है यह भी उन्हें मालूम नहीं होता लेकिन हर एक के दरवाजे पर खड़े होकर वे कहते लक्ष्मी आपके घर में वास करेगी, आपके घर में खुशियाँ आएगी मतलब किसी को बुरा नहीं कहना चाहिए अच्छी-अच्छी बातें अपने मन की बनाकर बताते हैं इस प्रकार भीख माँगकर अपनी रोजी-रोटी चलाते हैं और अपना जीवन व्यथित करते हैं।

बीज शब्द : - डेराडंगर, तिरपाल, कुडमुडे जोशी (डुग्गी जोशी)

हिंदी साहित्य के अस्मितावादी विमर्शो में आदिवासी लेखन सबसे नवीन एवं महत्वपूर्ण विषय बन गया है। कई वर्षों से जिन्हें हाशिए पर रखा गया था आज उन्हें साहित्य में स्थान मिल रहा है। उन्हें एक नई दिशा मिल रही हैं। आदिवासी याने कि ऐसे लोग जो जंगल में ही रहते है और अपनी रोजी-रोटी की तलाश में एक जगह से दूसरे जगह स्थलांतरित होते हैं। आदिवासी लेखक माया बोरसे आदिवासी समाज को अपने विचारों से स्पष्ट करती हुई कहती है "आदिवासी समाज ऐसा समाज है जिसके नाम में ही उसकी पहचाने छिपी हुई है। आदिवासी शब्द के लिए 'मूलनिवासी' शब्द का भी प्रयोग किया जाता है अर्थात आदिवासी समाज इस भूमि का मूल निवासी है और वही इसभूमि का उत्तराधिकारी भी है।"[1] उन्होंने आदिवासी को मूलनिवासी कहा है।

मराठी के बहुचर्चित लेखक दादासाहब मोरे की मूल मराठी की आत्मकथा 'गबाल' को डॉ. अर्जुन चव्हान जी ने 'डेराडंगर' नाम से अनूदित करके राधाकृष्ण प्रकाशन से पहला संस्करण 2001 में प्रकाशित किया है। आत्मकथा में नायक को प्रमुख स्थान देकर आत्मकथा लिखी जाती है लेकिन प्रस्तुत आत्मकथा में आत्मकथाकार को गौण स्थान देकर परिवेश एवं समाज प्रधानतावादी है। आत्मकथा में नायक का जीवन दुः खी, पीड़ित, यातनामय और नरकीय जीवन जी रहे है ऐसा महसूस हो रहा है। इसमें न नायक के गुणों पर प्रकाश डाला हैं यह उनका प्रयोजन कतई नहीं हैं। डेराडंगर आत्मकथा के जरिए इस परिदृश्य से परिचित होते है जो विमुक्त घुमंतू की तरह अपनी रोजी- रोटी के लिए जंगलों में घुमते रहते हैं। भीख माँगकर दिन गुजारते है। जिनका खुद का कोई अस्तित्व ही नहीं ऐसे 'कुडमुडे जोशी' (डुग्गी जोशी) जाति के ये लोग है जिनका विवेचन विश्लेषण हम यहाँ पर करते होत : -

'डेराडंगर' आत्मकथा के लेखक दादासाहब मोरे का मूल गाँव मिरज तहसील के शहरनुमा गाँव में सलगरे बाज़ार में लेखक तिरपालों के समाज में वास्तव्य करते हैं। प्रस्तुत आत्मकथा के जरिए आदिवासी समाज का परिवेश, विमुक्त घुमंतू लोगों की जिंदगी की व्यथा और वेदना उनकी प्रश्न पीडित जिंदगी से हम ज्ञात होते है। अपने उदरनिर्वाह के लिए, भीख माँगकर ये रोजी रोटी की तलाश में रहते है। कुडमुडे जोशी (डुग्गी जोशी) समाज के लोग सुबह जल्दी उठकर डुग्गी बजाकर गाँवों-गाँव भीख माँगने के लिए घुमते है। वे लोग पिंगला नामक पंछी को लेकर घुमते हैं। वह पिंगला पंछी बोलता है वह यह लोग सभी को बताते है ऐसी धारणा समाज में बन गई है। वस्तु स्थिति तो यह रहती है कि पिंगला पछी किसी का भविष्य बताता ही नहीं यहाँ तक वो पंछी क्या बोलता है यह भी उन लोगों को पता नहीं इसका मूल कारण बस यही है कि सभी के दरवाजे पर जाओ अपका भला होने वाला है, आपके घर लक्ष्मी वास करनेवाली है आनेवाला वक्त आपकी जिंदगी बदल देनेवाली आनेवाली है ऐसी मीठी मीठी बातें बनाकर वे भीख माँगते है। मूलत: ये आदिवासी लोग है कौन? यह सवाल सामने आने के बाद गिलिन ने अपनी किताब 'कल्चरल एंथ्रोपॉलॉजी' में आदिवासी के संदर्भ में कहा है "स्थानीय जनजातीय समूहों को ऐसा समवाय जनजाति कहा जाता है जो एक सामान्य क्षेत्र में निवास करता है, एक सामान्य भाषा का प्रयोग करता है तथा जिसकी सामान्य संस्कृति है।"[2] स्पष्ट है कि जो सामान्य क्षेत्र का निवासी है वह सामान्य भाषा एवं संस्कृति का प्रयोग करता हो उसे ही आदिवासी कहा गया है।

यह लोग जंगल में ही वास्तव्य करते हैं इसका ओर एक उदाहरण प्रस्तुत आत्मकथा में दादासाहब मोरे ने अपने जीवन के अनुभव प्रस्तुत करते समय बताया है, "हमारी जाति का प्रत्येक व्यक्ति जंगल में ही जन्म लेता और जंगल में ही मरता था। हमारे लोगों ने कितने सारे प्रसंग खुली आँखों से देखे थे।"[3] उन्होंने कहा है कि हमारा जन्म और मृत्यू के बीच जो भी पूरी जिंदगी बीत जाती है वह जंगल में बितती है चाहे सुख या दुःख इसलिए वे कहते है मैंने कितने ऐसे प्रसंग खुली आँखों से ही देखे है और अनुभव भी किए है।

आदिवासी लोगों का वास्तव्य एक ही जगह स्थित नहीं है अपना पेट भरने के लिए रोटी की तलाश में हमेशा स्थलांतरण करते है परिणामत: इस समाज के बच्चों का शैक्षणिक नुकसान होता है। यह समाज पिछड़ा हुआ दिखाई देता है। इनके समाज में अज्ञान, अशिक्षा का बढ़ता प्रमाण सामने जा रहा है दादासाहब के पिता मलारी को सभी कहते है छोरा अभी बड़ा हुआ है उसे एक झोली दो और वो भीख माँगने जाएगा तो हमें एक वक्त रोटी तो आराम से मिलेगी।

मलारी अपना बेटा दादासाहब को आत्मनिर्भर बनाना चाहता है, इसलिए वो किसी की भी बातों की ओर ध्यान न देते हुए दादासाहब का पाठशाला में प्रवेश लेते है लेकिन उन्हें शिक्षा हासिल करते समय बहुत कठिनाईयों से गुजरना पड़ा है। इस समाज के लोग अपना डेराडंगर उठाकर गधे पर सामान डालकर स्थलांतरित करते है। एक जगह स्थित न होने के कारण दादासाहब मोरे को बार-बार पाठशाला बदलनी पडती है। तब भी मलारी को गाँव के लोग कहते "अरे मलारी sss तू पागल वागल हुआ कि क्या ? छोरे कु इस्कूल में भेजना हो तो किसी-न-किसी गाँव में रहना होगा … इस्कूल ऐसे जंगल में तेरे तिरपाल के साथ आता है क्या? इसतरह की बातें सुनकर मेरे पिताजी चुप बैठा करते।"[4] अपनी रोजी-रोटी जहाँ पर मिलना खत्म हो जाती तब ये लोग दूसरी जगह अपना डेराउंगर लेकर जाते है। इसलिए उनके समाज के सभी लोग उनके पिता मलारी को कहते है अपने बेटे दादासाहब को स्कूल में मत भेजो। लेकिन उनके पिता चुप नहीं बैठते सभी लोगों की ओर नजर अंदाज करते हुए वे दादासाहब का पाठशाला में प्रवेश लेते है। कुडमुडे जोशी (डुग्गी जोशी) समाज के थे आदिवासी लोग दो दिन कुंभारी में रहने के बाद तिसरे दिन तिरपाल जाने के लिए निकलते है वहाँ पर विमल प्रसुती हो जाती है यह भी उनके सामने एक बड़ा संकट था क्योंकि उस समय बारीश आयी होती है वहाँ से शेगाव जाने के लिए मचिन्द्र शिंदे और दो दिन जन्मे हुए बच्चे को आडे पकड़कर वे दोनों घोडे पर बैठकर आगे बढ़ते है यह दृश्य देखते हुए पासवाले बस्तियों के लोग कानाफुसी करते हुए कहते है इनकी जात ही भीखमंगे की बुरी है लेकिन उन्हें किन-किन संकटों से गुजरना पड़ता है वे खुद ही जानते है इसपर दादासाहब मोरे का भाष्य है "हमारा जीवन बहती हवा के समान बहने लगा। उदित होनेवाला हर दिन नए-नए संकट लेकर आता था। … और उसके अस्त के साथ उन संकटों का भी अस्त होता था। दिन के बाद दिन बीत रहे थे। जैसे एकाध सपना आए और जाग उठने पर वास्तविक परिस्थिति में आए, ठीक वैसे ही हम अपने घर बनाते और तोड़ते थे।"[5] प्रस्तुत कथन में उन्होंने अपनी जीवनशैली पर प्रकाश डाला है रोजी-रोटी की तलाश में भीख माँगते-माँगते अलग-अलग जगह अपना वास्तव्य करते है परिणामतः उन्हें संकटों का सामना करते हुए आगे बढ़ना पडता है। आदिवासी समाज के होने के कारण वे जंगलों में ही घुमते रहते है उन्हें कोई नौकरी भी नहीं देता है वे भीख माँगकर ही अपना जीवन व्यथित करते हैं, परिणामत: उन्हें आर्थिक विवंचना से गुजरना पड़ता है। दादासाहब मोरे का जन्म इस आदिवासी समुदायों में होने के कारण उन्हें कई समस्याओं से गुजरना पड़ा है। शिक्षा से कई लोग वंचित है। आर्थिक विवंचना के कारण पाठशाला शुरू होने के बाद भी जल्दी किताबे नहीं मिलती थी। "स्कूल को शुरू हुए एक महिना हुआ था। फिर भी मेरे पास पुस्तकें नहीं थी। नई पुस्तकें लेता परन्तु अठारह- महिना उन्नीस रूपए ही बचे थे। उसमें से कमरे का किराया देना था। बहियाँ लेनी थी। सिर्फ दो ही नई बहियाँ ली थी। सभी विषय उन दो बहियों में ही थे। इसलिए नई पुस्तकें ले नहीं सकता था। तम्मा ने गाँव में ही दिलिप जाधव की पुरानी पुस्तकें ली थी।"[6] आदिवासी होने के कारण वे लोग जंगल में ही घूमते फिरते है यह विमुक्त घुमंतू है इसलिए इन्हें कोई काम पर भी नहीं रखता है। दादासाहब मोरे के परिवार में लोगों को नौकरी न मिलने के कारण उनके परिवार में आर्थिक तंगी महसूस होती है वे अपना डेराडंगर बाँधकर गधे के पीठ पर डालकर अगले गाँव घुमते थे। इसतरह उनका जीवन विमुक्त घुमंतू जैसा है।

आदिवासी समाज के ये लोग भीख माँगकर अपनी रोजी-रोटी चलाते है। एक दिन वे भीख माँगने के लिए जाते है और उनके पीछे कुत्ते लग जाते है कुत्ते उन्हें काटते है उस वक्त का एक अनुभव उन्होंने बताया है "माँ ने रोते- रोते ही पूछा- क्या हुआ रे..? माँ sss कुत्ता काटने के लिए आया सो आबा ने पत्थर फेंका … वह पत्थर उसके मुख पर लगा। इसलिए सात-आठ लोगों ने मिलकर हमें पीटा।"[7] रोजी-रोटी के लिए उन्हें भीख माँगनी पड़ती है और भीख माँगने के लिए जाने के बाद कुत्ता उन्हें काटता है और उसे पत्थर मारने पर उसके मुख पर लगने के कारण लोग उन्हें ही पीटते है इस जाति के कारण उन्हें किन-किन परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है इसका चित्रण होता है। रोजी- रोटी की तलाश में आर्थिक विवंचना से जूझते हुए वे अपनी बी. कॉम की पढ़ाई पूरी करते है उन्हें चाहे पाठशाला में हो या समाज में उन्हें जातिव्यवस्था के भी अनुभव आ गए।

दादासाहब मोरे का जीवन इन जातिव्यवस्था और वर्णव्यवस्था के कारण बहुत ही कठिन समस्याओं से गुजरते हुए व्यथित हुआ है ऐसा कहा जाता है भारत देश स्वातंत्र्य हुआ है लेकिन आज भी देश में कई ऐसे समाज हैं जिनके पास सुविधाएँ पहुँची ही नहीं। कई ऐसे लोग हैं जो एक वक्त की रोटी खाकर ही जीते है। ऐसी अवस्था हमें दिखाई देती है।

निष्कर्ष :-

मराठी से हिंदी में अनूदित दादासाहब मोरे की 'डेराडंगर' आत्मकथा का अध्ययन करने के उपरांत निष्कर्षत: स्पष्ट होता है कि रोजी-रोटी से परेशान लोग एक जगह स्थित नहीं है। देश स्वातंत्र्य हुआ है लेकिन यह समाज आज भी समस्याओं से जूझता हुआ दिखाई देता है। इस समाज की पारिवारिक आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थिति पर भी प्रस्तुत आत्मकथा में चित्रण है। यह लोग विमुक्त घुमंतू है अपने पेट भरने के लिए एक जगह से दूसरे जगह स्थलांतरण करते है। जातिवादी मानसिकता के कारण इन लोगों को कोई काम पर भी नहीं रखता है। परिणामतः उनके घर में अधिक विवंचना का एहसास होता है।

संदर्भ ग्रंथसूची : -

1. रमणिका गुप्ता, आदिवासी कौन, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली 2017 पृ. क्र. 86
2. डॉ. हरिशचंद्र उप्रेती, भारतीय जनजातियाँ संरचना एवं विकास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर पृ. क्र.1
3. दादासाहब मोरे, डेराडंगर, अनुवाद - डॉ. अर्जुन चव्हान, राधाकृष्ण प्रकाशन, पहली आवृत्ती 2022 पृ. क्र. 66
4. वही पृ. क्र. 17
5. वही पृ. क्र.66
6. वही पृ. क. 124
7. वही पृ. क. 127,128

हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श

वैशाली राजेंद्र मोहिते
Email - vaishalinan@gmail.com
Mobile No.9604527600

सारांश

आदिवासी जो भारतीय के मूलनिवासी, उनके प्रति होने वाला शोषण को रोकना । प्रशासन द्वारा आर्थिक उदारीकरण और बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा उनकी जल, जंगल, जमीन से बेदखल करना तथा साहूकारों ,महाजनों, सूदखोरो की अन्याय-अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाना चाहिए| उनकी संस्कृति, सभ्यता ,विरासत को जतन तथा संवर्धित करना हमारा कर्तव्य है। आदिवासी समाज की समस्याएं- शिक्षा, अंधविश्वास, पाखंडवाद, बेरोजगारी ,भुखमरी आदि को सुलझाना जरूरी है| उनका धर्म, भाषा ,सांस्कृतिक पहचान को सुरक्षित रखना और उनके अस्तित्व को प्रमाणित करना महत्वपूर्ण बन गया है। इसलिए आदिवासियों ने अपनी लड़ाई खुद लडी है और लेखन की दिशा में भी पहल भी की हैं। आदिवासियों का कला ,साहित्य जो मौखिक रूप में था ,उसकी दुर्लभ विरासत को सुरक्षित करना है। आदिवासियों का पलायन और विस्थापन जैसी समस्या पर विचार विमर्श करना आवश्यक है ।आंचलिक भाषाओं में आदिवासी जीवन की विभिन्न पक्षों पर विचार विशेष रूप से किया जाना चाहिए। आदिवासी समाज अन्य समाज से विकास के तौर पर कोसों दूर है। इस अंतर को मिटाना चाहिए। उन्हें मुख्यधारा में प्रवाहित होने के लिए प्रयासरत रहना चाहिए।

सरकार की तमाम नीतियां और बड़े-बड़े दावों वादों के बावजूद भी उनके जीवन में कोई सकारात्मक सुधार देखने को नहीं मिलता है। उनके जीवन तथा उनके अस्तित्व का संकट अचानक उत्पन्न ना हुआ और ना ही समाप्त होने वाला है। आदिवासी विमर्श का महत्वपूर्ण कार्य आदिवासियों के प्रति संवेदनशीलता पर लोकतांत्रिक लाभ लेने में समर्थ बनाना है।

बीज शब्द –

आदिवासी ,संस्कृति, सभ्यता ,अस्तित्व, संघर्ष ,अधिकार, साहित्य।

प्रस्तावना :

21 वे शतक में इस आदिवासी साहित्य ने अपनी ओर विश्व का ध्यान खींचा है। अपने अस्तित्व के प्रति जागृत होने से उनके सबलीकरण पर चर्चा होने लगी। स्त्री विमर्श ,दलित विमर्श के साथ आदिवासी की भी सराहना हुई। आदिवासी लेखन साहित्य , विचारधारा ,रूढी,परंपरा का अध्ययन से ही जानकारी प्राप्त होगी। आदिवासी साहित्य का इतिहास मौखिक है, भाषा का लिपि का विकास नहीं हुआ है। इसी कारण दुनिया के सामने आने में बहुत देर लगी।

आदिवासी यह आदिम युग की जनजाति है, जो अपनी संस्कृति और सभ्यता को युगों से संजोए रखे हुए हैं। वास्तव में राष्ट्र की सभ्यता के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है । भारतीय संस्कृति के संवाहक है ,विरासत के उत्तराधिकारी है । यह समाज मुख्यधारा से अलग होने के बावजूद भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

आदिवासी विमर्श के उद्देश्य :

1.आदिवासी पर अन्याय करनेवाला शोषक वर्ग के बीच हो रहा संघर्ष का अध्ययन करना।

2.आदिवासी अस्मिता, संस्कृति, सभ्यता का संवर्धन जतन करना।

3.आदिवासियों के अस्तित्व को बरकरार रखते हुए उन्हें सम्मान पूर्वक जीने का अधिकार देना।

4.आदिवासियों की समस्याओं हल निकाल कर लोकशाही शासन तथा
राष्ट्र निर्माण में उनका योगदान लेना।

आदिवासी जो भारत का मूल निवासी है ।उसकी जनसंख्या 8.6 प्रतिशत (10 करोड़)से ज्यादा है ।भारतीय संविधान में आदिवासियों के लिए अनुसूचित जनजाति का पद दिया है। भारत में आंध्र, खरवार ,मुंडा, हरिया भील ,कोली, सहारिया, संथाल, भूमि पूरा, लोहारा, बिरहोर, पारधी, असुर, नायक इसी तरह बहुत सी जनजाति है।

चंदा समिति में 1960 में अनुसूचित जातियों को शामिल करने के मानक निर्धारित किए हैं ।

1.भौगोलिक एकाकीपन

2. आज आदिम जनजाति के लक्षण

3. विशिष्ट संस्कृति की पिछड़ापन

4.संकुचित स्वभाव

आदिवासियों से संबंधित पारंपरिक अधिकारों पर अतिक्रमण शुरू हुआ और संघर्ष होने लगा ।आदिवासियों के सक्षम अस्तित्व -अस्मिता के अनेक विकराल प्रश्न उजागर हुए। परिणाम स्वरुप उनकी सांस्कृतिक पहचान और अस्तित्व दोनों पर गहरी चोट लगी।

आदिवासी जनजातियां भारत के आधुनिक रूप से प्रगतिवादी समाज से मुख्यधारा से कटे हुए हैं ।यह अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ते आ रहे हैं ।लेकिन उनके अस्तित्व के अधिकार के साथ जीने का अधिकार छीन लिया है ।आदिवासी साहित्यकार के पास संसाधनों का अभाव है। अच्छा ,सरल, सहज, विश्वसनीय लिखने वाला लेखक आगे नहीं बढ़ पाता क्योंकि उसका लेखन संपादक की ओर से उपेक्षित रह गया है ।उसके पास देने के लिए कुछ नहीं है ।आदिवासी केंद्रीय पत्र पत्रिकाएं भी मर्यादित है ।तमाम विडंबना की बावजूद भी आदिवासी जनजीवन साहित्य कला संस्कृति हमारे राष्ट्र की मूल धरोहर है।

आदिवासी समाज अंधविश्वास, जड़ता, रूढ़िवादी परंपरा से पूर्ण है। इन्हें एकांत एवं प्रकृति से विशेष प्रेम है ।उनका जीवन अभावग्रस्त रहा है क्योंकि यह समाज अन्य समाज से दूर पहाड़ों में,, दूरदराज के इलाकों में आधुनिक सुविधा से दूर दमन और शोषण से ग्रसित है ।सदियों से ही मुख्यधारा से कटा रहा ,दूरी बनी। इसतरह उनकी लोक कला, साहित्य सदियों से मौखिक रूप में रहा ।इसी कारण भाषा की लिपि का विकास नहीं हुआ ।साहित्य जगत में आदिवासी रचनाकार, उनका साहित्य तुलना में कम है। और उनकी रचनाओं में एक प्रकार की कलात्मकता कम होने के कारण आलोचकों को निराश भी करता था ।फिर भी वह आदिवासी जीवन के व्यापक समाज को परिचित कराने का कार्य करता है।

आदिवासियों का समाज कृषकों का समाज है। कृषि और अन्य उत्पादकों के सहारे प्रकृति और उसके सहयोग से जीवन जीने की कला इन आदिवासियों ने आत्मसात कर रखी है ।यही कारण है कि आदिवासियों के अस्तित्व के लिए जल ,जंगल और जमीन का होना आवश्यक है।

भारत की आजादी के बाद आदिवासी सहायता के लिए जयपाल सिंह मुंडा के नेतृत्व में भारतीय राजनीति से लेकर साहित्य तक आदिवासी चेतना के स्वर सुनाई देते हैं ।उसके बाद आदिवासी लेखन को साहित्य के विकास क्रम में आगे बढ़ना हैं |

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग द्वारा "भारतीय साहित्य और आदिवासी विमर्श" इस विषय को लेकर राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन डॉ. संजय राठौर जी ने किया। इसमें प्रसिद्ध लेखकों ने अपने विचार उपस्थित किए ।आदिवासी समाज ,इतिहास, संस्कृति, कला ,भाषा पर मौलिक विचार विनिमय हुआ। उनकी दशा और दिशा को लेकर एक नया अनुभव पर सफलतापूर्वक परिचर्चा हुई। जिसमें आदिवासी अपने अस्तित्व -अस्मिता को गहराई से अभिव्यक्त करते हैं।

रांची घोषणा पत्र में आदिवासियों के मूल तत्व को उजागर किया गया।

आदिवासी साहित्य की धारणा-

आदिवासी साहित्य के अध्येता प्रोफेसर वीर भारत तलवार जी ने आदिवासी साहित्य को चार श्रेणियों में रखा है।

1.सुन कर लिखने वाले

2. जानकर लिखने वाले

3. साथ रहकर लिखने वाले

4.स्वयं आदिवासियों ने लिखा साहित्य

चौथी अति महत्वपूर्ण श्रेणी है ,इसमें आदिवासियों द्वारा अपनी मूल भाषा में लिखा गया साहित्य ,हिंदी -बंगाली आदि प्रादेशिक भाषाओं में लिखा गया साहित्य है। इसकी गुणवत्ता अलग किस्म की होती है। यहां आदिवासियों के जीवन और समाज के चित्र मिलते हैं ।यह साहित्य प्रामाणिक आदिवासी साहित्य है। पहले तीन श्रेणियों का साहित्य आदिवासियों के साहित्य के संबंधित हैं।

आदिवासी साहित्य विमर्श -

आदिवासी आंदोलन का मूल उद्देश्य अकादमी जगत मे अपना अलग आदिवासी दर्शन एवं मूल तत्वों की पहचान बनाना है। आदिवासी साहित्य का अभी प्रारंभिक दौर चल रहा है ।विशेषता प्रादेशिक भाषा में लिखित साहित्य के अनुवाद के माध्यम से आदिवासी को प्रचारित और प्रसारित करने का महत्वपूर्ण योगदान दिया है ।आदिवासी एवं गैर आदिवासी लेखकों द्वारा साहित्य में आदिवासी जीवन का अनुभव, विषय के अनुरूप भाषा का मुहावरा, विनाश, मानवता के सुख-दुख, शोषण ,विस्थापन के संदर्भ में आए हैं। इसलिए भविष्य में आदिवासी साहित्य का कैनवास बहुत ही विस्तृत होगा ।समृद्ध साहित्य की सृजना होने वाली है।

काव्यगत सौंदर्य:

आदिवासियों द्वारा लिखी गई कविताओं में उनकी जीवन और संस्कृति के साथ प्रचलित है। प्राचीन ग्रंथों से संपृक्त रहने के कारण अलग है ।उनका प्रकृति से गहरा रिश्ता है ।उनकी कविता में प्रसंग अनायास उभरते हैं ।आदिवासी कविता जिस जमीन

को तैयार करती है, वह समाज और साहित्य के विविध पहलुओं को सिद्ध करती है। जिसमें उनकी आंचलिक आत्मीयता, समाजवाद का एहसास दिखाई देता है।

निर्मला पुतुल की "नगाड़े की तरह बजते शब्द" रामदयाल मुंडा का "नदी और उसके संबंधी अन्य गीत" "वापसी" "पुनर्मिलन", महादेव की कविताएं आदि अपने प्रति चरित्र और घटनाओं की विशिष्ट पहचान बनाने में सफल रहे। विस्थापन के कारण परंपरागत खेलों से लेकर आदिवासियों की लोक कला विलुप्त हो रही है।

रमणिका गुप्ता कहती है, "आदिवासियों को मुक्त कराने का साधन साहित्य है।"

आदिवासी गद्य सौंदर्य-

आदिवासियों का साहित्य मौखिक रहा है।1980 के बाद आदिवासी और गैर आदिवासी लेखकों में उनकी संस्कृति ,जीवन शैली सरकार - उद्योगपति द्वारा शोषण आदि का चित्रण दिखाई देता है। उनके अपने प्रतीक ,बिंबो ,मिथकों का प्रयोग किया गया है। उनके जिंदगी पर आए आक्रमण ने उन्हें बेचैन कर दिया है | चंदा मीना कहते हैं ,"आदिवासी समाज को बहुत कम लोग जानते हैं क्योंकि लोग उतना ही जानेंगे जितना उनका लिखा गया है।हिंदी साहित्य में बहुत से विमर्श की तुलना में आदिवासी विमर्श की गूंज कम दिखाई पड़ते हैं।"

उपन्यास:

सबसे पहले फणीश्वर नाथ रेणू जी का उपन्यास "मैला आंचल" में जमीन से बेदखल संतालोंका अपने स्वत्व और अधिकारों के लिए संघर्ष चित्रित हुआ। इसमें अपराधी चेतना और उनका यथार्थवादी आग्रह दिखाई देता है।बाद में भी बहुत आदिवासी रचनाएं आई। महाश्वेता देवी जी का उपन्यास "हजार चौरासी की मां" एक सशक्त और प्रभावी उपन्यास रहा। विद्रोह चेतना को अभिव्यक्त देने वाला बिरसा मुंडा आदिवासी महानायक साहित्य हिंदी साहित्य को परिचित हुआ।1980 के बाद वाल्टर भेंगरा की "सुबह की शाम" उपन्यास में इस फोटो को उजागर किया।पिटर पाल के उपन्यास "जंगल के गीत" की चर्चा अधिक हुई। रमणिका गुप्ता का का "सीतामौसी" से लेकर के उपन्यास "धोनी तपे तीर" की चर्चा बहुत हुई और उन्हें बिहारी सम्मान से नवाजा गया।

कहानी :

आदिवासी लेखक जो सरल, सहज ,प्रामाणिक लिखने वाले लेखक चर्चा में नहीं आए।वे विभिन्न पत्रिकाओं की फाइलों में दबे पड़े। कई कहानी संग्रह प्रकाशित हुए, लेकिन चर्चा में नहीं आए। आदिवासी समाज का बिल्कुल सही एवं पारदर्शी रूप देखने को मिलता है। "उस रास्ते में "यह महत्वपूर्ण कहानी है, जिसकी तुलना "उसने कहा था"से की जा सकती है।बड़ी शोकांतिका यह है कि आदिवासी साहित्य पर विद्वानों पाठकों का ध्यान ही नहीं जा पाया। उनकी समस्याओं का चित्रण प्रतिबिंब के रूप में उजागर किया, जो हमें बहुत ही बेचैन करता है। यथार्थ चित्रण कहानियों में दिखाई पड़ता है क्योंकि कहानी समाज का प्रतिबिंब होती है।

निष्कर्ष:

आदिवासी वर्ग हमारे भारत का अभिन्न अंग है।उसके उत्थान के लिए सरकार तथा अन्य समाज ने सम्मान के साथ उन्हें जीवन जीने में मदद करनी होगी। प्रकृति और अपने संबंध पूर्व पुरखों का ज्ञान, विज्ञान, कला, कौशल ,बेहतरीन इंसानियत के प्रति संवेदनशील रहना पड़ेगा।अपनी धरती को संसाधन बनाने के बजाय सभी का आग्रह के साथ वसुधैवकुटुंबकम् की भावना को पुरस्कृत करना जरूरी है।

संदर्भ :

प्रोफेसर वीर भारत तलवार - तद्भव
वंदना टेटे - आदिवासी दर्शन और साहित्य
झारखंडी भाषा साहित्य संस्कृति अखाड़ा
गंगा सहाय मीणा - आदिवासी साहित्य विमर्श
आदिवासी साहित्य
रमणिका गुप्त - युद्ध रत आदमी
आदिवासी स्वर योग और नए शताब्दी

आदिवासी जीवन के परिप्रेक्ष्य में 'ग्लोबल गांव के देवता'

प्रा.सारिका राजाराम कांबळे
के.एम.सी.कॉलेज, कोल्हापुर
मो. नं. 9158548358
Email –k.sarika9158@gmail.com

सारांश :

'ग्लोबल गांव के देवता' उपन्यास झारखंड में स्थित आदिवासी समाज, उसमें विशेष रूप से ' असुर' जाति तथा समुदाय को केंद्र में रखकर लिखा गया है | यह उपन्यास असुर जाति के प्रति सदियों से लोगों के मन में जो धारणाएं बनकर रह गई है उसे केवल खंडित ही नहीं करता है बल्कि इस समुदाय की बनी बनाई मान्यताओं के प्रति सोचने के लिए बाध्य करता है | प्रस्तुत शोध आलेख में असुर समाज का चित्रण किया हैं | जिसमें उनकी लोकसंस्कृति, खान-पान, रस्म-रिवाज, नारी की स्थिति एवं गति, व्यथा और त्रासदी को वाणी देने का प्रयास किया हैं |

बीज शब्द : आदिवासी, अस्तित्व, विस्थापन, शोषण, अत्याचार, संघर्ष की लढाई |

प्रस्तावना :

वर्तमान युग 'स्व' की खोज करना कहा जाए तो कुछ गलत साबित नहीं हो सक्त | स्वयं के खोज में मनुष्य अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए कई तरह का संघर्ष करता हुआ नजर आ रहा हैं | यह बात केवल मनुष्य तक सीमित न रहकर जन-जाति, समुदाय, समाज में दिन-ब –दिन विकसित होती जा रही है | इसीकारण हर एक समाज अपना अस्तित्व एवं अस्मिता बनाए रखने की कोशिश कर रहा है | इसमें आदिवासी समाज भी छूटा नहीं है | आदिवासी समाज को अपने वजूद को बरकरार रखने के लिए कई तरह से संघर्ष करना पड रहा हैं | इसी संघर्ष में वह अपनी जान गंवाने से भी पीछे नहीं हट रहे है | इसी बात को आधार बनाकर हिंदी साहित्यकारों ने अपनी कलम के माध्यम से आदिवासी विमर्श पर लिखकर आदिवासियों के अस्मिता एवं संघर्ष आदि की ओर पाठकों का ध्यान केंद्रित किया हैं | जिसमें में सफल हुए हैं | संजीव, वीरेंद्र जैन,रणेंद्र जैसे लेखकों ने अपनी रचना के माध्यम से आदिवासी समाज की व्यथा, पीडा, त्रासदी को प्रस्तुत किया है |

'रणेंद्र' ने ' ग्लोबल गांव के देवता' उपन्यास के माध्यम से असुर जाति के विमर्श को यथार्थता के साथ प्रस्तुत किया है | 'असुर' शब्द सुनते ही हमारे मन मस्तिष्क में राक्षस का चित्र उभर कर सामने आता है | इसी धारणा को लेखक ने पूरीतरह से बदला है | प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने झारखंड के भौरापाट में स्थित असुर समाज का चित्रण किया है | इस संदर्भ में अरविंद कुमार उपाध्याय लिखते है- ''वैश्विकरण के दौर में व्यक्ति एक-दूसरे से आगे बढना चाहता है | इस आगे बढने की चाहत ने हजारों लाखों लोगों को जमींदोंज तो किया ही साथ ही उनके अस्तित्व पर सबसे बडा प्रश्न उभरकर सामने आय है | वैश्विकरण का तात्पर्य ही यही है कि अगर उसके साथ जो समाज नहीं चल सका, उसे वह मिटाकर रख देगा | रणेंद्र द्वारा लिखित चर्चित उपन्यास 'ग्लोबल गांव के देवता' वैश्विकरण के प्रभाव को आधार बनाकर लिखा गया है |''[1] प्रस्तुत उपन्यास में वैश्विकरण से उत्पन्न समस्याओं पर प्रकाश डाल देता है | असुर समाज के अस्तित्व एवं अस्मिता के लिए संघर्ष इसमें दिखाई देता है | असुर समाज के सभी स्त्री- पुरुष इकट्ठा होकर अपने अस्तित्व को बचाने की कोशिश करते हुए दिखाई देते है | लेखक ने रुमझुम, ललिता, लालचन, डॉ. रामकुमार, एतवारी, बुधनी दी आदि पात्रों के माध्यम से असुर समाज पर हो रहे अन्याय, अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाते हुए दिखाया है |

रुमझुम पढा- लिखा युवक है वह सरकार द्वारा असुरों के बच्चों के लिए बनाए गए स्कूल में नौकरी करना चाहता है कई बार कोशिश करने पर भी उसे नौकरी नहीं मिल पाती है | वह अपने समाज पर हो रहे अन्याय- अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाना चाहता है | रुमझुम लेखक को पाथरपाट का स्कूल दिखाने के लिए ले जाता है उस समय वह असुरों की व्यथा को स्पष्ट करते हुए कहता है-''असुर सुनते दो ही बातें ध्यान में आती है | एक तो बचपन में सुनी कहानियों वाले असुर, दैत्य, दानव और न जाने क्या-क्या ! वर्णन भी खूब भयंकर | दस- बारह फीट लंबे | दांत-वांत बाहर | हाथों में तरह –तरह के हथियार | नरभक्षी शिवभक्त- शक्तिशाली | किंतु अंत में मारे जानेवाले | सारे देवासुर संग्रामों का लास्ट सीन पहले से फिक्स्ड |''[2] यहां पर असुर के प्रति लोगों को धारणा तथा उनको अंत में मरणा ही होगा इस समझ को रुमझुम देवासुर संग्राम के माध्यम से स्पष्ट करता है | रुमझुम लेखक को असुर की सच्चाई बयान करता है |असुरों के बच्चों के लिए बनाए गए स्कूल में सच में कितने असुर बच्चे पढाई कर रहे है आदि बातों की स्पष्ट करता है | वह अपने समाज पर हो रहे अन्याय अत्याचार को देखकर काफी मायुस है, सरकार, बडी बडी कंपनियां तथा बाबा शिवदास जैसे लोग अपने मुनाफे के लिए अपने समाज का किस प्रकार इस्तमाल करते है इसके प्रति वह आक्रोश व्यक्त करता है |

छोटी- बडी कंपनियां बाक्साईट खदान के लिए दी गई जमीन से गैरकानूनन खदान करती है इस संदर्भ में लेखक कहते है- ‘‘छोटे-बडे सभी खदान- मालिकों का एक ही रवैया | लीज की भूमि पर कम, वन- विभाग, गैरमजरुआ जमीन, असुर रैयत की जमीन से ज्यादा से ज्यादा खनन किया करते | अवैध खनन खुलेआम और वर्षों से जारी था | रुमझुम और लालचन दा घूम- घूमकर समझाना काम नहीं आता और न कलेक्टर- एस-पी को आवेदन लिखना |’’[3] असुर लोगों की जमीन पर अवैध खनन रोकने के लिए कई बार रुमझुम और लालचन दा मिलकर कलेक्टर से दरखाव्स्त कर आते है लेकिन इसका असर कुछ नहीं होता है उलटा उन दोनों पर ही दबाव डाल देना शुरू हो जाता है | अपने समाज के अस्तित्व को बरकरार रखने के लिए वह हमेशा कोशिश में लगे रहते है |

ललिता असुर समजा का प्रतिनिधित्व करने वाली प्रमुख नारी पात्र है जो कि एम.ए. तक की पढाई कर चुकी है | ललिता असुर समाज की एकमात्र पढी-लिखी लडकी हैं | वह अपने समाज को बचाने के की लडाई में शामिल हो जाती है और लोगों में चेतना जागृत करने का काम करती है | सरकार द्वारा असुरों को दिया गया अनुदान की घोषणा सुनकर उसका आक्रोश उमडकर आता है | अपने समाज का सरकार तथा बडी कंपनियां द्वारा हो रहा शोषण के प्रति आवाज उठाती है | डॉ. रामकुमार असुरों की सेवा करने में ही अपना धर्म मानते है और किसी बडे शहर में जाकर नौकरी डॉक्टरी सेवा करने के बजाय भौंरापाट में असुरों लोगों का इलाज करते है | असुरों के संघर्ष में डॉ. अपना सहयोग देते है और अपने लोगों की सहायता करते है| अंत में पुलिस की एनकांउटर में डॉ. रामकुमार की मृत्यु हो जाती है | जमीन के साथ पाट के वैध- अवैध खनन से जुडे मामले में सभी असुर मिलकर बडी कंपनिओं से हो रहे अन्याय एवं अत्याचार का सामना करने का सोचकर खदानों से लेकर ऑफिस तक काम बंद करते है | खदानों में काम बंद हो जाता है तो कंपनियों की परेशानियां बढने लगती है तो यह लोग असुरों को सही गलत प्रलोभन देकर काम शुरू करना चाहते है परंतु यह लडाई को पुलिस द्वारा दबाने की कोशिश करते है और पुलिस असुर समाज पर हमला करते है- ‘‘जब तक लोग कुछ समझते, रायफल निकालकर उसने भीड पर फायरिंग करनी शुरू कर दी | उसकी देखा-देखी दो और सिपाही रायफल लेकर चौकी से बाहर निकले थे | उनकी भी रायफलें मौत उगलने लगीं |

दूर से मुझे साफ दिख रहा था कि बालचन की देह खडी हुई, रायफल छीनने को झपटी और लहरा कर वहीं गिर गई |’’[4] यहां पर बालचन अपने लोगों की सहायता करते समय मृत हो जाता है | आंदोलन को रोकने के लिए लोगों को डरा- धमकाने का काम पुलिस द्वारा किया जाता है | फिर भी यह लोग अपने अस्तित्व की लडाई के लिए अपने इरादे से टस से मस तक नहीं होते है | स्वार्थी नेता इस आंदोलन को अपने फायदे के लिए इस्तमाल करना चाहती है | अंत में ललिता तथा बुधनी दी कंपनियों से बातचीत करके असुरों के अस्तित्व के बारे में सोचते हुए कहते है कि ‘‘तय यही हुआ कि भीड या जुलूस नहीं, बस पंद्रह-बीस लोग बात करने जाएंगे | सब बात दरख्वास्त में लिखी रहेगी | ज्यादा बहस नहीं करनी है | कोई झगडा- झंझट नहीं | केवल अपने मुआवजे-पुनर्वास की बात करनी है |’’[5] जुलूस न निकालते हुए सिर्फ पंद्रह –बीस लोग शांति का रास्ता अपना कर आंदोलन को मिटाने की सोचते है परंतु उन लोगों की बीच रास्ते में ही लैंड माइंस के धमाके में मौत हो जाती है | अंत में असुर समाज के अस्तित्व की लडाई राजधानी के होस्टेल में पढाई करनेवाले सुनील असुर संभालता है |

यहां पर असुर समाज अपनी वर्तमान स्थिति एवं गति के बारे में सोचकर अपनी अस्मिता को जागृत कर अपने सुरक्षित जीवन के लिए संघर्ष करना शुरू करते है अपनी जान जोखिम में डालते हुए अपने समाज को सुरक्षित रखने का प्रयास करते है | प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने असुर समाज के साथ बिताई हुई घटनाओं का विवेचन कर उनकी अंधश्रद्धा, लोकजीवन, असुरों की व्यथा, उनके अस्तित्व की लडाई, बडे कंपनियों द्वारा होने वाला उनका शोषण आदि का विवेचन किया है |

संदर्भ सूची –

1. अरविंदकुमार उपाध्याय, www.umrjournal.com p. 94
2. रणेंद्र, ग्लोबल गांव के देवता पृ. क्र. 17
3. वहीं , पृ. क्र. 27
4. वहीं, पृ. क्र.87
5. वहीं, पृ. क्र.99

स्वयंप्रभा : प्रकृति और मानव का अनंत संबंध

प्रा. रोहिता केतन राऊत
एस इ.एम ट्रस्ट संचालित
एम बी हैरिस कॉलेज ऑफ आर्ट्स,
नालासोपारा (पश्चिम) मुंबई विश्वविद्यालय।

सारांश

कवि उद्भ्रांत के द्वारा रचा गया इस खंडकाव्य में उस गहरी बेचैनी और व्याकुलता के दर्शन होते हैं जो मनुष्य को महान सृजन के लिए प्रेरित करती है। उद्भ्रांत जी साधक कवि हैं। कबीर जब अंत:साधना की बात करते हैं तो प्रणम्य में हो जाते हैं, फिर उद्भ्रांत की अंतःसाधना को कैसे खारिज किया जा सकता है। कवि का आत्मसंघर्ष 'स्वयंप्रभा' में उभरकर आया। पर्यावरण के अतिरिक्त एक और समस्या इस आधुनिक जीवन की देन है और वह समस्या है - 'समय बीतने के साथ-साथ छीजते जा रहे जीवन मूल्यों की समस्या'। कवि उद्भ्रांत ने जीवन के इस पक्ष को भी अपने इस खंडकाव्य में सफलतापूर्वक उभारा है। यह जीवनदायिनी प्रकृति लाखों वर्षों से मनुष्यों को जीवन का आधार देती चली आ रही है। उसी प्रकृति के प्रति ऐसी निष्ठुरता और संवेदनहीनता कवि की समझ से परे है। वह लिखता है, "हम जिस तेजी से औद्योगीकरण, भूमंडलीकरण, विश्व-बाजार की दमघोंटू प्रतिस्पर्धा, परमाणु आयुधों की अंधी दौड़ तथा अंतहीन अंतरिक्ष युग की ओर बढ़ रहे हैं, वह प्रगति की ओर ले जाने का छलावा दिखाते हुए हमें एक ऐसे भयानक बिंदु की ओर ले जाता प्रतीत होता है, जहां ये सवाल हमारी जीवनदायिनी प्रकृति के लिए - और प्रकारान्तर से हमारे लिए - अस्तित्वग्राही बनकर खड़े हो जाएँगे; यदि हम अभी भी सावधान न हुए तो ! " इसी कारण इस काव्य में शनैः-शनैः छीजते जा रहे जीवन-मूल्यों की ओर भी संकेत किया गया। इसके साथ ही इस खंडकाव्य में आए हुए कई पात्र अपनी मूल्यवत्ता के कारण पाठकों के मन में अमिट छाप छोड़ जाते हैं।

बीज शब्द: प्रकृति, मानव, कविता

कविता के सरोकार मूलतः मनुष्य के सरोकार होते हैं। कवि अपनी रचना में विविध पात्रों का सृजन करता है, एवं उनके माध्यम से मानवीय समस्याओं, जीवन-मूल्यों एवं समय की अभिव्यक्ति करता है। यहाँ यह अर्थहीन हो जाता है। यह समय की सच्चाई है।तकनीकी विकास के इस युग की सबसे बड़ी विडंबना पृथ्वी पर लगातार बढ़ता प्रदूषण है। पृथ्वी पर ही क्यों वायु, जल कुछ भी तो मनुष्य की महत्वाकांक्षा के कारण सुरक्षित नहीं बचा है। विकास की अंधी दौड़ में मनुष्य इस तरह बेतहाशा भाग रहा है कि जीवनदायी पृथ्वी की दुर्दशा की ओर देखने का उसके पास समय ही नहीं है।

कवि उद्भ्रांत ने इस खंडकाव्य में कण्डु ऋषि की संक्षिप्त कथा के माध्यम से आधुनिक जीवन की इसी विषमता की ओर स्पष्ट रूप से संकेत किया । उद्भ्रांत रचित खण्डकाव्य 'स्वयंप्रभा' की मुख्य पात्र स्वयंप्रभा है, जो मिथकीय आख्यानों एवं इतिहास में प्रायः अज्ञात है, किन्तु स्वयंप्रभा-प्रकरण के बगैर रामकथा अपूर्ण है। स्वयंप्रभा मेरुसावर्णि ऋषि की पुत्री थी, जो ऋक्षबिल नामक गिरि-दुर्ग के निकट अपने पिता के आश्रम में रहती थी। कवि उद्भ्रांत ने भूमिका में अल्प शब्दों में ही स्वयंप्रभा का रामकथा से जुड़ाव, उनके 'सत्यनिष्ठ, अनुशासनप्रिय, साधक - आराधक-वेदवेत्ता योगिनी' व्यक्तित्व तथा उनकी महत्ता का सुन्दर चित्रण किया है- "सीताजी की खोज में निकले हनुमान, जाम्बवंत, अंगद, नल-नील सहित क्षुधा और प्यास से पीड़ित, काल के गाल में समाने को आतुर पराक्रमी वानर - समूह में, उसके आश्रम के फल-फूल खाकर और उसी आश्रम के पवित्र सरोवर में स्नान कर नये जीवन का संचार हुआ"।

कवि उद्भ्रांत के द्वारा रचा गया यह खंडकाव्य परंपरा और आधुनिकता दोनों ही दृष्टियों से अत्यंत समर्थ खंडकाव्य है। इसमें कवि ने एक तरफ जहां स्वयंप्रभा जैसे अबूझ चरित्र को प्रकाश में लाने का शोधपरक और दुष्कर कार्य किया है, वहीं दूसरी तरफ इसकी पृष्ठभूमि को आधुनिक जीवन-जगत से जोड़कर आधुनिक संदर्भों में भी इसे प्रासंगिक बनाने का सराहनीय कार्य किया है। 'स्वयंप्रभा' के इन्हीं संदर्भों को ध्यान में रखते हुए डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं, - "मनुष्य और प्रकृति के रिश्ते क्या हैं, इस पर लम्बे अरसे बाद एक प्रबन्ध कविता लिखी गई है।" –(1)

इस कृति में उस गहरी बेचैनी और व्याकुलता के दर्शन होते हैं जो मनुष्य को महान सृजन के लिए प्रेरित करती है। उद्भ्रांत जी साधक कवि हैं। कबीर जब अंत:साधना की बात करते हैं तो प्रणम्य में हो जाते हैं, फिर उद्भ्रांत की अंतःसाधना को कैसे खारिज किया जा सकता है। कवि का आत्मसंघर्ष 'स्वयंप्रभा' में उभरकर आया। पर्यावरण के अतिरिक्त एक और समस्या इस आधुनिक जीवन की देन है और वह समस्या है - 'समय बीतने के साथ-साथ छीजते जा रहे जीवन मूल्यों की समस्या'। कवि उद्भ्रांत ने जीवन के इस पक्ष को भी अपने इस खंडकाव्य में सफलतापूर्वक उभारा है। यह जीवनदायिनी प्रकृति लाखों वर्षों से मनुष्यों को जीवन का

आधार देती चली आ रही है। उसी प्रकृति के प्रति ऐसी निष्ठुरता और संवेदनहीनता कवि की समझ से परे है। वह लिखता है, "हम जिस तेजी से औद्योगीकरण, भूमंडलीकरण, विश्व-बाजार की दमघोंटू प्रतिस्पर्धा, परमाणु आयुधों की अंधी दौड़ तथा अंतहीन अंतरिक्ष युग की ओर बढ़ रहे हैं, वह प्रगति की ओर ले जाने का छलावा दिखाते हुए हमें एक ऐसे भयानक बिंदु की ओर ले जाता प्रतीत होता है, जहां ये सवाल हमारी जीवनदायिनी प्रकृति के लिए - और प्रकारान्तर से हमारे लिए - अस्तित्वग्राही बनकर खड़े हो जाएँगे; यदि हम अभी भी सावधान न हुए तो ! " इसी कारण इस काव्य में शनैः-शनैः छीजते जा रहे जीवन-मूल्यों की ओर भी संकेत किया गया। इसके साथ ही इस खंडकाव्य में आए हुए कई पात्र अपनी मूल्यवत्ता के कारण पाठकों के मन में अमिट छाप छोड़ जाते हैं।

पर्यावरण की स्वच्छता और इन उद्देश्यों के लिए वनों के संरक्षण की गहन आवश्यकता पर बल देने के लिए भी किया।इस तरह जहां एक तरफ इस खंडकाव्य में उन्होंने 'स्वयंप्रभा' के महत्व स्थापन को स्पष्ट उद्देश्य के रूप में सामने रखा है, वहीं आधुनिक जीवन की तमाम विसंगतियों और विडंबनाओं को भी उन्होंने इस काव्यग्रंथ से जोड़े रखा है, जहां से इसे प्रासंगिकता मिलती है।

दूसरा सर्ग है 'माया'। माया जिसे हम अविद्या, अध्यास, अज्ञान, भ्रम आदि के रूप में जानते हैं। सुख-दुख, अनुकूलता-प्रतिकूलता, लाभ-हानि आदि की अनुभूति ही भ्रम है, अविद्या है। जो लोग स्थिरबुद्धि हैं उन्हें माया कभी त्रस्त नहीं करती । वानर-समूह वनस्पतियों से हीन ऐसे क्षेत्र में पहुँच जाता है, जहाँ सब कुछशुष्क है। दरअसल यह भूमि पूर्वकाल में ऐसी नहीं थी। पहले यह क्षेत्र हरीतिमा से युक्त था। चक्रवाक यहाँ कल्लोल किया करते थे। पक्षियों का मनोहर नाद हुआ करता था। यह क्षेत्र फल-फूलों और जीवनदायिनी जड़ी-बूटियों से संपन्न था। यही पर ऋषि कण्डु का आश्रम था। कण्डु एक सत्यवादी, वेदज्ञ और लोकाचार के प्रज्ञापुरुष थे। उनका एक अत्यंत तेजस्वी और विद्यावसनी दस वर्षीय पुत्र भी था। नव आलोक से दीप्त उस पुत्र को अनेक वैदिक ऋचाएँ कंठस्थ थीं। कण्डु उसे देखकर फूले न समाते थे। अगाध वात्सल्य से उनका तन-मन भर उठता था। उसके सेवाभाव को देखकर सभी आश्रमवासी भी उससे प्रसन्न रहा करते थे।कण्डु का आश्रम सदा मंत्रोच्चार से गुंजायमान रहता था। सर्वत्र आनंद का वातावरण, किंतु समय एक-सा नहीं रहता। कुछ समय बाद वहाँ असुरगण नाना रूप धरकर आतंक फैलाने लगे। वे यज्ञ विध्वंस कर मुनियों को नाना भाँति कष्ट दिया करते थे। इस तरह उस क्षेत्र में आसुरी शक्तियाँ निरंतर बढ़ती जा रही थीं। परिणामस्वरूप लोग वहाँ अनेक आधि-व्याधियों से ग्रस्त रहने लगे। इन स्थितियों को नियंत्रित करने के लिए मुनि पुत्र रात-दिन जुटा हुआ था :

"काल जब होता विषम,
तो मात्र आशीर्वाद फलदायी नहीं होते कभी;
क्योंकि यदि वातावरण
दूषित हुआ तो,
स्वस्थकर जलवायु, औषधि, जड़ी-बूटी
हैं जरूरी संग आशीर्वाद के"- (2)

दुर्भाग्यवशात् कण्डु पुत्र भी आसुरी दुष्टाचरण से रोगग्रस्त होकर काल-कवलित हो गया। इस पर कण्डु बड़े दुखी हुए। कण्डु को लगता था कि उनका पुत्र अत्यंत क्षमतावान था। यदि वह जीवित रहता तो असाधारण कार्य करते हुए हमारी कीर्ति को आगे बढ़ाता। ऋषि के दुख का कोई पारावर न था । क्रोध और पुत्र-शोक से ग्रस्त कण्डु जिस स्थान के प्रति आकर्षित होकर आसुरी शक्तियाँ यहाँ प्रकट हुई थीं उस स्थान को ही उन्होंने शाप दे दिया :-

"नष्ट हो जाए
समूचे क्षेत्र की हरीतिमा,
वृक्ष जाएँ सूख, लुप्त हो जाएँ
धरती बाँझ होवे,
लुप्त हो जाये निमिष में
यहाँ जलचर और वनचर –(3)

कंडू ऋषि के शाप के कारण वन के समस्त पात झर गये। तालाबों का जल शुष्क होने लगा। क्रोध और मोह से तो विनाश ही होता है। ऋषि के शाप ने इस भूमि को पूरी तरह से बंजर बना दिया । नियति परीक्षाएँ भी कर्मयोगी की ही लेती है। सीता जी की खोज में वानर-समूह जंगलों को पार करके ऐसे क्षेत्र में पहुँच जाता है, जो वृक्ष, फल-फूल आदि से हीन था। जो फल थे भी, वे आहार योग्य नहीं थे। पानी का दूर-दूर तक कोई नामो-निशान नहीं था। बस चारों तरफ एक अंतहीन सन्नाटा व्याप्त था। सन्नाटे की भी अपनी भाषा होती है। समस्याओं का भी अंत होता है। धैर्यवान उससे पार पा जाता है। परमशक्ति में दृढ़ विश्वास और कर्म में आस्था रखने वाला किसी भी परिस्थिति में मार्ग पा ही जाता है।

इस खंडकाव्य का तीसरा सर्ग 'मुमुक्षु' है। इस सर्ग में हम देखते हैं कि माता सीता की खोज करते-करते वानर-समूह इसी मरु क्षेत्र में आ पहुँचता है। बेचैन वानर-समूह की स्थिति को गोस्वामी तुलसीदास की इस चौपाई में देखिए, इसी से इस सर्ग की शुरुआत भी होती है।

लागि तृषा अतिसय अकुलाने ।
मिलइ न जल घन गहन भुलाने ॥
मन हनुमान कीन्ह हनुमाना।
मरनचहत सब बिनु जल जाना ॥ -(4)

जल की निर्मलता और शीतल, पवित्र, पावन अमृत धरातल का सुगन्ध देखन लायक है। जहाँ आज अमृत के समान जल के लिए मनुष्य बेचैन है वहीं कविने जल के सौन्दर्य को जीवन के सौन्दर्य से जोड़ा है। जीवन का सबसे महत्वपूर्ण तत्व कवि 'जल' को मानता है-

"जीवन का
सबसे जरूरी तत्व
यही है सत्व।
ईश्वर की तरह
धरे रूप अनेक।
भावना सा तरल।" - (5)

चुपके-चुपके यह आँख की ओट में नदी की तरह सरल है। छल से रहित है और कभी कल-कल करके छलकता भी है। लाज से लजाती हुई अनुपम सौन्दर्य को समाहित किए हुए अल्हड़ हँसी के फूलों के वृक्ष पर इस तरह से प्रवाहित कर रहा है मानो पिघलने को सदा प्रस्तुत हो । बहुत ज्यादा गर्मी की अवस्था में प्रलय का रूप धारण कर लेगा । उस समय तापमण्डल का रूप विकराल हो जाएगा-

"भरेगा क्रोध में,
जिसका शोधन
करेगा प्रलय से ।
जल उठेगा जीवन |
चरम तापमान पर
वाष्प बन
उड़ेगा ऊपर।" -(6)

इस तरह भूमि / धरा पर कुछ भी नहीं बचेगा। उस समय आँख निष्प्रयोजन हो जाएगी। सृष्टि अदृश्य हो जाएगी। जब आँख में पानी ही नहीं रहेगा तो हम सृष्टि को कैसे बचा पाएंगे? 'स्वयंप्रभा' की भूमिका में कवि का कथन है- "पर्यावरण प्रदूषण की समस्या कितनी भयावह हो चुकी है, इसे बताने की आवश्यकता नहीं; इसका दूरगामी प्रभाव हमारी पृथ्वी की सुरक्षा पर भी पड़ने लगा है। वैज्ञानिकों का कहना है कि इस विषाक्त वातावरण के कारण ही हमारी पृथ्वी के वायुमण्डल की सुरक्षा वाले अभेध कवच-ओजोन-पर्त- में छिद्र हो गया है जो दिनोदिन बढ़ता जा रहा है। इसका स्वरूप 'माया' सर्ग में देखने को मिलता है -

"नष्ट करते वृक्ष सारे
फूल-पत्ती नोच देते
आश्रमों मे फेकते मल -मूत्र -(7)

प्रदूषण का यह माहौल सिर्फ एक जगह पर स्थिर नहीं है बल्कि यह क्षिति, जल, पावक, गगन और वायु समस्त पंचतत्व में विद्यमान है। इसका आभास हमें इन पंक्तियों के माध्यम से पता चलता है-

"वायु,
जल,
ध्वनि
और धरती-
सब प्रदूषित । "- (8)

कवि का कहना है- "वायु, जल, ध्वनि के अतिरिक्त, लाखों की संख्या में प्रतिदिन बढ़ते वाहनों और उनके चलने से निकलते धुएँ के कारण भी पर्यावरण प्रदूषित होता है।" - (9)

कहने का भाव यह है कि पौधे, निर्मल सरोवर एक आदर्श जीवन-समाज की आधारभूमि और अधिरचना है। एक सभ्य समाज कभी भी आन्तरिक प्रदूषण को अपने अन्दर समाहित करने की इजाजत नहीं दे सकता है। वर्तमान परिदृश्य में यदि देखा जाए तो संपूर्ण दुनिया के सामने कोरोना संक्रमण एक वैश्विक महामारी की तरह से पाँव फैला चुका है। संकट के इस संक्रमण कालीन समय में कहीं न कहीं प्रकृति के साथ क्रूर व्यवहार का ही नतीजा नजर आता है। लेकिन इतने नकारात्मक समय में भी एक सकारात्मक तत्व उभरकर यह सामने आया है कि संपूर्ण दुनिया का पहिया जब बन्द कर दिया गया। अर्थात् 'लॉकडाउन' लागू किया गया तो वातावरण में धनात्मक परिवर्तन देखने को मिले हैं। दूर-दूर तक आसमान स्वच्छ हो गये हैं। गंगा-यमुना की धारा अमृत के समान पवित्र हो गये हैं। कल-कारखानों के बन्द होने से, वाहनों के आवाजाही कम होने से ध्वनि प्रदूषण और वायु-प्रदूषण कम हो गये हैं। पिछले सौ वर्षों में मानव ने जो वैज्ञानिक तरक्की की थी उसका एक भयावह रूप प्रदूषणगत वातावरण के रूप में उभरकर सामने आया है।

पर्यावरण की स्वच्छता और इन उद्देश्यों के लिए वनों के संरक्षण की गहन आवश्यकता पर बल देने के लिए भी किया।इस तरह जहां एक तरफ इस खंडकाव्य में उन्होंने ‘स्वयंप्रभा' के महत्व स्थापन को स्पष्ट उद्देश्य के रूप में सामने रखा है, वहीं आधुनिक जीवन की तमाम विसंगतियों और विडंबनाओं को भी उन्होंने इस काव्यग्रंथ से जोड़े रखा है, जहां से इसे प्रासंगिकता मिलती है।अतः 'स्वयंप्रभा' के आश्रम से सीख लेकर हम वर्तमान पृथ्वी को उजड़ने से बचा सकते है। उसमें एक नयी ऊर्जा का संचार कर सकते है। उम्मीद की किरण में उषा का दीपक जलाकर संपूर्ण संसार को प्रकाशमय कर सकते है।

संदर्भ-

1. स्वयंप्रभा - उद्भ्रांत , अमन प्रकाशन ,कानपुर (भूमिका से) पृष्ठ क्र – 8
2. वही पृष्ठ क्र -37
3 .वही पृष्ठ क्र- 44
4 वही पृष्ठ क्र -47
5 जल - उद्भ्रांत ,यश पब्लिकैशन नवीन शाहदरा ,दिल्ली प्रथम संस्करण पृ. 35
6. वही पृ.क्र-86
7. स्वयंप्रभा, पृ क्र -33/34
8 वही पृ. क्र -86
9. वही (भूमिका से) पृ.क्र –6

"अनबीता व्यतीत उपन्यास में पर्यावरण चित्रण"

1. श्रीमती प्राजक्ता राजेंद्र प्रधान
शोध - छात्र
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
prajaktapradhan1986@gmail.com
२. डॉ. अशोक मोहन मरळे
मालती वसंतदादा पाटील
कन्या महाविद्यालय, इस्लामपुर

सारांश :

आज का युग विज्ञान का युग हैं। मनुष्य के सामने हर रोज एक नई चुनौती रही हैं। अतःआज मनुष्य के सामने सबसे बड़ी चुनौती पर्यावरण और आधुनिकीकरण के बीच सामजस्य बैठाना हैं। जंगलो की कटाई, पशु पक्षियों की हत्या, बढ़ता दहशदवाद आदि कारणों की वजह से पर्यावरण को कुचल कर हम तेजी से आर्थिक विकास की ओर बढ़ रहे हैं, परंतु पृथ्वी की इस जीवनचक्र को सुरक्षित रखने के लिये पर्यावरण को संतुलित और सुरक्षित रखना उतना ही जरूरी हैं। इसलिए आज सरकार ने भी पर्यावरण के इस संतुलन को आबाद रखने के लिए प्रभावी कदम उठाये हैं। पर्यावरण की सुरक्षितता को ध्यान में रखने के लिए तथा प्रकृति को आबाद रखने लिए अनेक साहित्यकारों ने अपनी कलम उठाई हैं। हिंदी के साहित्यकारों ने भी यहाँ अपना योगदान प्रस्तुत किया हैं। साहित्यिक कृतियों के माध्यम से रचनाकारों ने वस्तुस्थिती प्रस्तुत करने और सुधार के लिए जागरुकता फैलाने का काम किया हैं। जहाँ हिंदी साहित्य में आदिकाल से लेकर रीतिकाल तक किसी न किसी रूप में काव्य में प्रकृति और पर्यावरण का सुंदर चित्रण किया हैं, फिर आगे चलकर छायावादी कवियों ने पर्यावरण की बढ़ती समस्या को ध्यान में रखा हैं, वहीं आधुनिकाल में पर्यावरण चिंतन को केंद्र में रखकर कई उपन्यासों का सृजन किया और पर्यावरण जागरुकता से संबंधित आधुनिक प्रश्नों को प्रमुखता से उठाया हैं।'कमलेश्वर ' जी का 'अनबीता व्यतीत' उपन्यास पर्यावरण की समस्या को केंद्र मे रखते हुए इसका निर्माण किया हैं।पर्यावरण से जुडे पशु-पक्षी भी कितने आवश्यक हैं इस प्रकृति में पक्षियों होना बहुत महत्वपुर्ण हैं अत: प्रकृति की यह एक धरोवर हैं यह प्रस्तुत करने का काम कमलेश्वर जी ने "अनबीता व्यतीत"उपन्यास में किया हैं।अब हमारा कर्तव्य हैं कि पर्यावरण को स्वस्थ बनाने हेतु हम भी सक्षम रहे।

बीज शब्द : पर्यावरण, प्रकृति, धरोवर, पर्यावरण प्रदूषण

प्रस्तावना :

प्रकृति का प्रत्येक अवयव चाहे वह जैविक हो अथवा अजैविक, उसका अपना एक पर्यावरण होता हैं। पर्यावरण,शब्द 'परि' और 'आवरण" दो शब्दों से मिलकर बना हैं। परि का अर्थ हैं 'चारों ओर' तथा आवरण का अर्थ हैं 'ढका हुआ' या घेरा।इस प्रकार पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ हुआ चारों ओर घेरा या कवच' अंग्रेजी में पर्यावरण के लिए Environment शब्द का प्रयोग किया जाता हैं जिसका अर्थ हैं आस पास का वातावरण। विश्व हिंदी शब्दकोश के अनुसार, "पर्यावरण एक ऐसा विषय हैं जिसमें जीव-जनुओं, पेड-पौधों, जलवायु तथा मानव समुदायों को उनके अपने वातावरण के साथ जोड़कर देखा या समझा जा सकता हैं।[1]" पर्यावरण और मनुष्य में इतना गहरा संबंध हैं कि वह एक दूसरे को प्रभावित किये बिना नही रह सकते। अतःपर्यावरण की इन समस्याओं को लेकर साहित्य भी अछूता नहीं रह सकता। प्रारंभिक दौर में जहाँ हिंदी कविता प्रकृति की सौदर्य का बखान कर रही थी। प्रकृति के सौदर्य में जीवन का सौदर्य ढूढंने का प्रयास कर रही थी परंतु बढते ओद्योगिकरण, जनसंख्या दबाव और संशोधनो की पुर्ती के लिए होने वाले खनन ने जंगलों को काटना शुरू कर दिया,पशु- पंछियों की हत्या की गई,हिंसा और आतंक ने पर्यावरण को बरबाद कर दिया हैं। कमलेश्वर लिखित 'अनबीता व्यतीत' पर्यावरण के होनेवाले हिंसक परिणामों को उजागर करने का प्रयास करता हैं।पर्यावरण दृष्टिकोण यह हिंदी उपन्यास यात्रा का एक पड़ाव हैं कमलेश्वर का अनबीता व्यतीत नामक उपन्यास पर्यावरण प्रदूषण तथा मनुष्य और अन्य जीव जंतुओं के बीच के परिणामों को प्रदर्शित करता है।

महाराजा सुरेन्द्रसिंह स्वतंत्र भारत में राजशाही का अवशेष हैं। इनका आन बान शान सब गुम हो गया हैं।अपनी चिंता और दूख से मुक्त होने के लिए वह मासूम पंशु-पक्षियों की शिकार करने लगे।पशुओं हत्या की मार्मिकता के साथ उपन्यास की कथा प्रारंभ होती हैं।सचमुच बहुत भयानक दृश्य था वह "विशाल दीवानखाने के संगमर्मर के सफेद फरी दूर-दूर तक खून फैला हुआ था। महल जोहड में कई आकार प्रकार के छोटे बड़े पक्षियों के मृत शरीर पड़े थे। एक कोने में एक बड़ी-सी मादा हिरणी की रक्त रंजित लाश पड़ी थी। उसका मुँह दीवान खाने की छत की ओर उठा हुआ था। उसकी बेजान आँखें शून्य से टिकी हुई थी। उन आँखों की

पथरीली पुतलियों पर उदास इन्तजार झलक रहा था।"[2] महारानी राजलक्ष्मी ने दो आफ्रीकी काकातुओं को पाल रखा था। एक दिन महाराज ने गोली मारकर उन पक्षियों की हत्या कर दी। 'दीवानखाने के साफ संगमरमरी फर्श पर ककातुओं के फड़फड़ाते जख्मी पंखों से खून की बूँदे छिटक-छिटक कर गिर रही थी। दीवारों पर भी यहाँ वहां खून के छीटे पड़े गए थे। काकातुओं की दर्द भरी चीखे और बेचैन पंखो मनहूस फडफडाहट की आवाज़ दीवानखाने में भरी हुई थी। कांच के बेजान झूमर के लिए आपने निर्दोष पक्षियों के प्राण छीन लेते है।पशुओं की हत्या के कारण महारानी इतनी दू:खी हो जाती लेकिन इसके बाद भी महाराज शिकार कर कई हिरन, बाघ और अन्य जानवरों की शिकार करते थे।

औद्योगीकरण के कारण मनुष्य ने प्रकृति में जो उनके जैव संपत्ति हैं उनके भी व्यवसाय करने शुरू कर दिए है।व्यावसायिक एवं स्वार्थ मानसिकता वाले आधुनिक मानव अपनी सुख-सुविधा की सामग्री जुटाने के प्रयास में प्रकृति नियमों से बेखबर रहकर सीमित विभावो का अनियंत्रित एवं बेतहाशा दोहन कार्य करते रहते हैं।पश्चिमी संस्कृति में सब पशुओं को सिर्फ वस्तुओं के रूप में देखते है। आसमान में उड़नेवाले मासूम पछियों जंगल में चरने वाले जानवरों, जल में तैरनेवाले मछलियों को अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए मार डालते है। मनुष्य अपनी स्वार्थ में इतना अंधा हो गया है की,उसके होनेवाले विपरीत परिणामों को वह समज नही रहा है।

नरेंद्र सिंह महाराज पक्षियों को निर्यात करने के लिए प्रेरित करते हैं। पक्षियों के निर्यात को वह अपना कारोबार बनाना चाहते है।वह यह समजते है की पक्षियों की निर्यात करना कोई गैर कानूनी काम नही है,इसलिए नरेंद्र महाराज से कहा जाता है "महाराज इस बार आप भी अच्छी तरह जानते हैं कि विदेशों के चिड़ियाघरों में पशु पक्षियों की कितनी जबरदस्त डिमांड हैं और हमारे देश में इनकी कोई कमी नहीं। इनका कोई मालिक तो नहीं हैं, जो इनके पकड़े जाने पर एतराज करें। इनकी सप्लाई करके हम थोड़ी सी पूँजी से ही बड़ी दौलत कमा सकता हैं।[3]'' महाराज सुरेन्द्र सिंह यह अच्छी तरह जानते थे कि राजपाट चले जाने के बाद कुछ राज घरानों के महत्वाकांक्षी युवराजो कुंवर साहबों ने जिन्दा मुर्दा पशु पक्षियों के व्यापार का यह नया धंधा खोज निकाला था। उन्हें मालूम था कि इस धंधे के वैध लायसन्सों के पीछे अवैध कारोबार का बहुत बड़ा संजाल पनप चुका हैं, पर वे चाहते हुए भी उसमें दखल दे सकें, इस स्थिति में वे खुद को नहीं पाते थे जयसिंह कहते हैं। हमारे देश में ही इन कामों पर उंगली उठाई जाती हैं। विदेशों में तो इसे सिर्फ एक व्यवसाय माना जाता हैं और व्यवसाय कोई भी हो, इससे नफरत नहीं की जाती। इस बात से पता चलता हैं कि जयसिंह के पक्षी प्रेम सिर्फ रुपया कमाने की एक बहाना मात्र थी। समीरा का परिवार के लोग पशु-पक्षियों के व्यवसाय से जुड़े हुए हैं। इसलिये पक्षियों के साथ क्रूरता का व्यवहार उनकी विवशता हैं। लेकिन पक्षी-प्रेम के कारण समीरा को कई बार अपने परिवार के नाना महाराज सुरेन्द्र सिंह, पिता नरेंद्र सिंह पति जय सिंह आदि से संघर्ष करना पड़ा था। एक हालनुमा कमरे में फर्श से दस-बारह फुट की ऊंचाई तक लोहे की जालिया वाले पिंजरों में तरह तरह की चिड़ियाँ बंद थी।उन पक्षियों की छटपडाहट देख समीरा ने उन सभी पिजरो को खोल दी और सभी पक्षियों को आजाद कर देती है। समीरा के इस व्यवहार से नरेंद्र सिंह काफी गूस्सा हो गए। उसने पक्षियों के निर्यात का कड़ा विरोध किया और अपने पिता को फटकारा इस घटना को लेकर दोनों में मतभेद बढ़ गया। उन्होंने कहा कि समीरा उनके लाखों रुपये मिटटी में मिला दिए पहली मुलाक़ात के अवसर पर ही कुंवर जय सिंह ने पक्षियों के बारे में समीरा को अनेक नयी-नयी बातें बताई थी,जिससे समीरा बहुत ही प्रभावित हो गयी थी।लेकिन शादी के बाद रतनपुर पहुँचने पर क्रमश: उसे पता चला कि उसका पति भी पिता की तरह पक्षियों की निर्यात करता हैं।

समीरा पति का विरोध करती हैं लेकिन उसका पति वह अपने व्यापार छोड़ने से मना कर देता हैं। एक दिन समीरा ने जय सिंह से साफ-साफ कह दिया। "मैं जानती हूं पंछियों के करोड़ों रुपये का बिज़नेस को छोड़ने या बंद कारण आप के लिये मुमकिन नहीं होगा ।लेकिन मेरे लिए यह मुमकिन होगा कि मैं मुर्दा की इस दुनिया से बाहर चली जाऊ ।वह अंत में एक निर्णय लेकर कहती हैं । अगर आप चाहते हैं कि मैं यहाँ रहू, जिंदगी भर आपके पास और साथ रहूँ तो यह टेनरी का धंधा बंद करना पड़ेगा आपको।[4]"जयसिंह अपने कारोबार को छोड़ने से मना कर देता हैं। अंततः उसका विरोध भावना इतना बढ़ गया हैं कि दोनों अलग रह गए जब समीरा मायके आती हैं तब घरवालों से जय सिंह बात करते हैं उसका सभी समर्थन करते हैं। समीरा को आदेश देते हैं कि नीली झील के पास कभी नहीं जाए।वह जय सिंह द्वारा नियुक्त बहेलियों के जाल में फंसने से पक्षियों को रोकने का कार्य करती हैं और अपने पति से इस निर्मम व्यवसाय को छोड़ने का आग्रह करती हैं। उसका विरोध इतना तीव्र हो जाता हैं कि दोंनो अलग – अलग रास्ते पार चल पडते हैं और अंत मे प्रकृति एव पशु- पक्षियों के प्रेमी गौतम को बचाने के प्रयास मे समीरा को आपनी पति के गोली का शिकार होना पडता हैं।

प्रेमचंद चंदोला का कथन हैं- "प्रकृति का हर जीव पेड़ पौधे, प्राणी, पक्षी आदि सभी प्रकृति के महत्वपूर्ण अंग पुर्जे हैं, जो इस गृह पर जीवन के प्राकृतिक तंत्र का संचालन और निर्धारण करते हैं। किसी भी कारण पौधे या प्राणी की किसी भी जाती को यदि गड़बड़ी पहुँचती हैं तो इसके परिणाम सृष्टि के सारे क्रियाकलापों में महसूस किये जाते हैं। इस प्रकार प्रकृति के संतुलन में वन्य

प्राणियों, पशु-पक्षियों आदि का भी उतना ही महत्व हैं, जितना मनुष्य का।"[6] अनबीता व्यतीत पर्यावरण की समस्या को केंद्र में रखकर मानवीय करुणा, दया के रागात्मक प्रसार का अंकन करनेवाला अनुठा उपन्यास हैं। प्रकृति में तरह तरह के जीव हैं इनमें से सबसे मासूम और सुंदर वे पछी जो हमारे वन्य संस्कृति की संपदा भी हैं- वे परदेशी पंछी जो सदियों से सर्दियों में सायबेरिया और उत्तरी गोलार्ध से उड़कर हर वर्ष भारत में आकर बसेरा करते हैं। लेकिन इन मासूम पक्षियों के पीछे भी मृत्यु पडी रहती हैं। जगह जगह इन्हें पकड़ा या मारा जाता हैं, और इनका व्यापार किया जाता हैं। जो पशु पक्षियों को मारकर धन कमाने में संलग्न हैं उनके विरुद्ध जनमानस को उतेजित करने का काम इस उपन्यास के द्वारा संपन्न होता हैं। इस उपन्यास के पात्र अपने सुख दुख के लिए संघर्ष नहीं करते, बल्कि पक्षियों की मुक्ति तथा उनके प्राकृतिक अधिकार के लिए संघर्ष करते हैं।

निष्कर्ष :

करुणा, दया और सहअस्तित्व पर आधारित भारतीय आदर्श पर्यावरण सुरक्षा के लिए आवश्यक हैं। व्यवसायिक एवं स्वार्थ मानसिकता वाले आधुनिक मानव अपनी सुख सुविधा की सामग्री जुटाने के प्रयास में प्रकृति नियमों से बेखबर रहकर सीमित विभवों का अनियंत्रित एवं बेतहाशा कार्य करते रहते हैं।मृत पड़े पक्षियों के खून के छीटे तथा हिरणी का लाश को देखकर महारानी का इतनी पदुखी होती हैं कि वह भगवान् को पुकार लगाती हैं। समीरा को भी गोली का शिकार बनना पड़ता हैं। वहाँ गौतम अपनी माँ की अंतिम इच्छा को पूरी करने में सफल नहीं होता ,क्योंकि उसने मानव की अपेक्षा जीव जंतुओं के जान को महत्वपूर्ण माना। अपने घर संपत्ति सब को बेचकर उसने नीली झील को खरीदा और पंछीयों की धर्म शाळा बनाई और एक बोर्ड लिखा की,यहाँ शिकार करना मना हैं। इस सुन्दर दुनिया में मानव मात्र नहीं सब जीव जंतुओं को भी स्थान हैं इस तत्व को अत्याधिक मार्मिकता के साथ यहाँ कमलेश्वर जी व्यक्त करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

1. फादर बुल्के कामिल, अंग्रजी हिंदी कोश,पृ क्र 214
2. कमलेश्वर, अनबीता व्यतीत,लोकभारती प्रकाशन,प्रथम संस्करण 2005, पृ.क्र.8
3. वही,पृ क्र. 12
4. वही,पृ.क्र.55
5. वही, पृ .क्र.108
6. चंदोला प्रेमनंद ,पर्यावरण और जीव, हिमाचल प्रकाशन ,1989

व्यवस्था केन्द्रित शोषण के खिलाफ विद्रोह की धधकती आग: 'एनकाउंटर'

प्रा. किशोरी सुरेश टोणपे
दत्ताजीराव कदम आर्टस,सायन्स एण्ड कॉमर्स
कॉलेज, इचलकरंजी
मो. ९५०३२७५१८७
ईमेल-kishoristonape@gmail.com

सारांश:

आदिवासी सदियों से 'बराबरी, भाईचारा और आजादी' को अपने जीवन जीते आया है. यह सूत्र उसकी जीवनशैली का एक आवश्यक हिस्सा है. वह सामूहिकता में जीता है, उसकी अपनी संस्कृति है- भाषाएं हैं. वह प्राकृतिक संसधानों- जल-जंगलों का मालिक रहा है जो आज उससे छीने जा रहे हैं. प्रकृति ही उसके जीवन-यापन का साधन रही है. दूसरे लोगों ने भी आदिवासियों के नाम पार साहित्य सृजन किया लेकिन उनकी नजर में आदिवासी एक जंगली, असभ्य इकाई और आदिवासी औरत मात्र एक सेक्स सिम्बल ही रही है. उसके लिए आदिवासी नृत्य व गान एक तमाशा ही बने रहे, जिसे वे हर वर्ष २६ जनवरी को देखते हैं और भूल जाते हैं."[1] रमणिका गुप्ता द्वारा कही गई बाते बहुत महत्वपूर्ण है. आज आदिवासी समाज के संदर्भ में जो कुछ लिखा जा रहा है उसमें आदिवासी औरतों का मांसलता से चित्रण हुआ है. इसका महत्वपूर्ण उदाहरण है, मराठी में लिखी हुई 'पाणी कसं असत' नामक कविता. जो मुंबई विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में रखी गई थी. गैर आदिवासी लेखक आदिवासी समुदाय पर मात्र सहानुभुति से लिखते आ रहे है. उसमें आदिवासी अस्मिता की तलाश का प्रयास नहीं हो रहा है. आदिवासियों के मुक्ति का संघर्ष कहां है? सभ्य भारतीय समाज में उनका स्थान कहां पर है? आदि सवालों से यह साहित्य मुठभेड नहीं करता दिखायी देता है.

बीज शब्द : आदिवासी, व्यवस्था, विद्रोह

आजादी के बाद केंद्र में आये अस्मितावादी विमर्शों में दलित विमर्श एवं स्त्री विमर्श के बाद सबसे महत्वपूर्ण विमर्श का नाम आदिवासी विमर्श है. अब आदिवासी चेतना से युक्त आदिवासी साहित्य हिंदी साहित्य पटल पर अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुका है. अब आदिवासी साहित्य हिंदी के अलावा लगभग १०० से भी अधिक आदिवासी भाषाओं में प्रचुर मात्रा में लिखा जा रहा है. अनेक दशकों के संघर्ष और प्रतिरोध के बाद आज आदिवासी साहित्य को स्वायत्त विषय के रूप में केंद्रीय परिधि में लाया जा रहा है. आदिवासी समाज एवं साहित्य पर लगातार पर चर्चा की जा रही है. परंतू आदिवासी समाज की तरह आदिवासी साहित्य का संघर्ष आज भी जारी है. आज भी आदिवासी साहित्य अनेक समस्याओं एवं चुनौतियों से जूझ रहा है. इसका प्रमुख कारण आदिवासी समाज जीवन से बाहरी समाज का अपरिचय और उपेक्षापूर्ण रवैया है. आदिवासी समाज से संवाद करने का आदिवासी साहित्य महत्त्वपूर्ण जरिया हो सकता है. पर शर्त यह हैं की उसका सही मूल्यांकन करने के लिए इसके बुनियादी तत्वों की समझ होना अनिवार्य है. आदिवासी साहित्य की उचित धारणाएँ एवं मापदण्ड स्थापित हो जाना जरूरी हैं. इक्कीसवीं सदी विमर्शों की है. इस सदी के सबसे महत्वपूर्ण विमर्श का नाम है, आदिवासी विमर्श. आदिवासी विमर्श के द्वारा सदियों से सभ्य माने जानेवाले समाज के द्वारा हाशिये पर रखे गये समाज की वकालत की गयी है. आदिवासी विमर्श ने आदिवासी समाज के अधिकारों की वकालत की साथ ही साहित्य के द्वारा अपने अस्मिता की तलाश करने का महत्वपूर्ण जिद्दोजेहद की. आदिवासी समाज और साहित्य के बीच एक अनोखा रिश्ता है. सभ्य समाज की धारा से वंचित इस समाज का साहित्य के साथ नाभि-नाल का रिश्ता है. इसी रिश्ते को स्पष्ट करते हुए रमणिका गुप्ता लिखती हैं, "आदिवासी समाज और साहित्य में नाभि-नाल का रिश्ता है. दोनों एक दूसरे से अभिन्न हैं. आदिवासी साहित्य जानने से पहले, जितना आदिवासी समाज को समझना जरूरी है, उतना ही जरूरी है आदिवासी समाज को समझने के लिए उनके वाचिक साहित्य को जानना. आदिवासी समाज क्या है, उसके मूल्य क्या हैं, यह उनके लोकगीतों, नृत्यों, लोक-कथाओं, शौर्य- गाथाओं व लिजिंद्रियों में भरा पडा है. उनकी निश्छल सामूहिक जीवनशैली और उत्सवधर्मिता में ऐसा क्या है, जो कठिन परीस्थितियों में भी वे गाते, नाचते हुए जिंदा रहते रहे, कभी हारे नहीं. यह भी एक शोध का विषय है. विश्व में फ्रांस की क्रांति ने नारा दिया था 'समानता, भाईचारा और आजादी'. भारत में डॉ. आंबेडकर ने दलितों को मुक्ति के लिए बराबरी, भाईचारा और आजादी का सूत्र थमाया था.

लेकिन आदिवासी सदियों से 'बराबरी, भाईचारा और आजादी' को अपने जीवन जीते आया है. यह सूत्र उसकी जीवनशैली का एक आवश्यक हिस्सा है. वह सामूहिकता में जीता है, उसकी अपनी संस्कृति है- भाषाएं हैं. वह प्राकृतिक संसधानों- जल-जंगलों का मालिक रहा है जो आज उससे छीने जा रहे हैं. प्रकृति ही उसके जीवन-यापन का साधन रही है. दूसरे लोगों ने भी आदिवासियों के नाम पार साहित्य सृजन किया लेकिन उनकी नजर में आदिवासी एक जंगली, असभ्य इकाई और आदिवासी औरत मात्र एक सेक्स सिम्बल ही रही है. उसके लिए आदिवासी नृत्य व गान एक तमाशा ही बने रहे, जिसे वे हर वर्ष २६ जनवरी को देखते हैं और भूल जाते हैं."[1] रमणिका गुप्ता द्वारा कही गई बाते बहुत महत्वपूर्ण है. आज आदिवासी समाज के संदर्भ में जो कुछ लिखा जा रहा है उसमें आदिवासी औरतों का मांसलता से चित्रण हुआ है. इसका महत्वपूर्ण उदाहरण है, मराठी में लिखी हुई 'पाणी कसं असत' नामक कविता. जो मुंबई विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में रखी गई थी. गैर आदिवासी लेखक

आदिवासी समुदाय पर मात्र सहानुभुति से लिखते आ रहे है. उसमें आदिवासी अस्मिता की तलाश का प्रयास नहीं हो रहा है. आदिवासियों के मुक्ति का संघर्ष कहां है? सभ्य भारतीय समाज में उनका स्थान कहां पर है? आदि सवालों से यह साहित्य मुठभेड नहीं करता दिखायी देता है.

आदिवासी विमर्श के मूल में जल,जंगल और जमीन की लड़ाई है. उसी जंगल से आदिवासियों को आज निष्कासित किया जा रहा है. जिसपर आदिवासी जीवन टिका हुआ है, जंगल उसके सहजीविता का प्रमुख साधन है. व्यवस्था द्वारा आदिवासियों की वही सहजीविता छिनकर उसे बेदखल करने बात को लेकर आदिवासी लेखकों ने लेखनी चलायी है. उसका जीता-जागता रूप अरुण यादव रचित कहानी 'एनकाउंटर'है.

इस 'एनकाउंटर' कहानी की कथावस्तु झूलनपार गांव, के जंगल, फॉरेस्ट का गार्ड भुवन और राजाराम धुर्वे की कथा है. कहानी में आदिवासी जीवन के बहुतरे चित्र अंकित हुए हैं. राजाराम धुर्वे की परिवार की अभावग्रस्थता इसका केंद्र बिंदु है. धुर्वे का परिवार जंगल की लकड़ी, फल, जड़ी-बूटियां आदि बेचकर अपना गुजारा करता था. साथ में बकरियों को भी उन्होंने पाला था. आदिवासी जनता अपनी रोजमर्रा की जरूरत है जंगल द्वारा ही पूरी करती है. लेकिन अब सरकार द्वारा चलाए गए षड्यंत्र से जंगल से आदिवासी लोगों के अधिकार छीन लिए गए. जंगलों से आदिवासियों को निष्कासित किया गया. जंगलों की रखवाली करने के लिए फॉरेस्ट गार्ड नियुक्त कर दिए. फॉरेस्ट गार्ड की मनमानी से आदिवासियों का जीना हराम कर दिया. फॉरेस्ट गार्ड आदिवासियों द्वारा इकट्ठा की गई लकड़ी, जड़ी-बूटियां आदि का आधा हिस्सा लेने लगे. ऊपर से उनके इस काम का काम को गैरकानूनी कहने लगे. प्रस्तुत कहानी का पात्र कोदूलाल कहता है- 'यह हरामखोर भुवन, फॉरेस्ट गार्ड है या चोर उचक्का. जितनी जंगल से इकट्ठा करो साला आधी तो वही रख लेता है. कहता है अब जंगल सरकार के हो गए हैं. जंगल से लकड़ी या कोई भी वनोपज ले जाना गैरकानूनी है.'[२]

शहर तो कभी आदिवासियों के थे ही नहीं, बस जंगल है जो आदिवासियों की सारी दीनता के साथ उन्हें स्वीकार करता है. अब उस पर भी इन लोगों की नजर पड़ गई है. इस स्थिति में आदिवासी क्या करेंगे? इस स्थिति में आदिवासी कैसे जीयेगा? यहीं से उसका व्यवस्था से संघर्ष शुरू हो जाता है.

प्रस्तुत कहानी में आदिवासियों के शोषण का जो चित्र अंकित किया है वह सब जगहों पर दिखाई देता है. इंस्पेक्शन के लिए आए वन मंडल अधिकारी कपूर साहब के खाने-पीने की व्यवस्था के लिए फ़ॉरेस्ट गार्ड भुवन राजाराम धुर्वे से एक-दो मुर्गी मांगता है. मुर्गियाँ न होने के कारण भुवन दुध मुँह मेमनों को जबरदस्ती गाड़ी में डाल देता है. जिन मेमनों को धुर्वे परिवार ने अपने बच्चों की तरह पाला है और जिनके साथ कोदूलाल के बच्चे हिले-मिले थे. उन मेमनों को भुवन का हुकूमत के बल पर ले जाना कितना पीड़ादायक होगा इसका दुख एक पशुपालक परिवार ही अनुभूत कर सकता है. यह सब होने पर भी यह परिवार किसी भी प्रकार का विद्रोह नहीं करता है. व्यवस्था की दहशत इस समाज में इस तरफ फैली है कि उसका प्रतिकार करना बेकार सा हो गया है. इन लोगों की नजर में आदिवासी स्त्री एक वस्तु है और उसको भोगने से कोई उनका बिगाड़ नहीं सकता. इसका एक सशक्त उदाहरण कोदूलाल की पत्नी बिंदिया है. राजाराम धुर्वे के सामने बिंदिया की तरफ भुवन द्वारा भद्दी मुस्कुराहट के साथ अनाप-शनाप बोलना इसका प्रमाण है. मेमनों को भुवन द्वारा जीप में डाल देने पर मेमनों का मिमियाना सुनकर बिंदिया घूंघट डाले हुए बाहर आ गई. इसके बाद भुवन के क्रियाकलापों को कहानीकार इस प्रकार चित्रित करता है- 'भुवन ने बिंदिया को देखा तो उसकी नजर ठहर गई. बिंदिया को देख उसके चेहरे पर एक भद्दी मुस्कुराहट उतर आई- "यह आदिवासी भी अपने झोपड़ों में कितनी खजाना छुपाए रखते हैं" वह मन ही मन गुदगुदाया. उसने बड़े ही अश्लील तरीके से अपने सूखे होठों पर जिहवा फिराई. वासना के लक्षणों को छुपाने का उसने कोई प्रयत्न नहीं किया."[३] इस प्रसंग को पढ़कर मनुष्य के अंदर स्थित पाश्विक वृत्ति सामने आती हैं. जिसके कारण एक आदिवासी को बाघ शेर से डर नहीं लगता, उसे डर मनुष्यों के अंदर स्थित पशुता का डर लगता है. इस परिप्रेक्ष्य में विनोद कुमार शुक्ल की लिखते हैं-

'एक अकेली आदिवासी लड़की को
घने जंगल जाते हुए डर नहीं लगता
बाघ-शेर से डर नहीं लगता
पर महुआ लेकर गीदम के बाजार जाने से डर लगता है.'[४]
-'जंगल के दिन भर के सन्नाटे में'

प्रस्तुत कहानी इस घटना के बाद नाटकीय मोड़ लेती है. मेमनों को लेकर जाने के फॉरेस्ट गार्ड की हत्या हो जाती है. इस हत्या के जुर्म में गांव के पन्द्रह लोगों को पुलिस पूछताछ के लिए थाने में लेकर जाती है. समूचे गांव की तलाशी और पन्द्रह लोगों को गिरफ्तार करने से पुलिस के हाथ कुछ भी नहीं आता है. राजधानी से पुलिस पर तुरंत कार्रवाई का जबर्दस्त दबाव होने के कारण उसमें से आधे लोगों को छोड़ देते हैं और पांच लोगों को पूछताछ के लिए थाने में बंद कर देते हैं. उसमें कोदूलाल और दसरू भी है.

अपने दो बेटे थाने में रहने के कारण राजाराम धुर्वे भयावह स्थिति में धनीराम उड़के के बड़े लड़के संतोष को लेकर थाने में पहुंचाता है. धुर्वे द्वारा थानेदार सुमेर सिंह से बात करने पर सुमेर सिंह यह बागियों से मिलने की बाद करता है. उसके दो दिन बाद अखबारों के प्रथम पृष्ठ पर खबर छपी है- 'पुलिस मुठभेड़ में पुलिस की गोलियों से दो बाग़ी मारे गए और पांच गिरफ्तार. समाचार में पुलिस के अदम्य साहस की प्रशंसा के साथ मुठभेड़ में पुलिस की गोलियों से मारे गए दोनों बाग़ियों के क्षत-विक्षत शवों की तस्वीर भी छपी थी. यह क्षत-विक्षत शव कोदूलाल और दसरु के थे.'[५]

इस घटना के बाद की स्थिति बहुत भयंकर है. अंधेरी रात में सैकड़ों मानव आकृतियों द्वारा पुलिस थाने को घेर कर पूरा थाना जलाना मानो आदिवासी लोगों द्वारा अन्याय के खिलाफ विद्रोह की धधकती आग है. यह धधकता विद्रोह व्यवस्था के खिलाफ है. न जाने इस व्यवस्था ने कितने निरापराध दसरू और कोदूलाल की जिंदगी खत्म की है. इस विद्रोह की धधकती आग आदिवासी समाज में स्थित है.

निष्कर्ष:

आदिवासी समाज की बुनियाद जल,जंगल जमीन की लड़ाई पर टिकी हुई है. जल,जंगल जमीन ही आदिवासी जीवन के सहजीविता के प्रमुख माध्यम है. इसपर पूंजीवादी व्यवस्था के चलते पूंजीपतियों ने कब्ज़ा किया है. जो आदिवासियत के विरोध में है. आदिवासी समाज अक्सर नए-नए पूंजीवादी मॉडल के चलते हमेशा विस्थापित ही होता आया है. पूंजीवादी मॉडल का विरोध करने पर व्यवस्था ने उन्हें बाग़ी,नक्सलवादी तथा देशविरोधी और विकासविरोधी घोषित करते हुए सताया है. प्रस्तुत कहानी में कहानीकार द्वारा युवकों का अचानक लापता हो जाने का संकेत नक्सलवाद की तरफ है. नक्सलवाद का बीज आदिवासी ना होकर एक भ्रष्ट व्यवस्था है. जब तक इस व्यवस्था में उथल-पुतल न हो जायेगी तब तक विद्रोह की यह आग हमेशा धधकती रह जाएगी.

संदर्भ:

१.संपा. गुप्ता रमणिका, आदिवासी समाज और साहित्य, कल्याणी शिक्षा परिषद, नयी दिल्ली,प्रथम संस्करण:२०१५, पृ.१०-११
२.संपा. यादव राजेंद्र, 'हंस', अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, अक्टूबर,२०१३, पृ.३३
३.वहीं,पृ.३४
४.शुक्ल विनोदकुमार, अतिरिक्त नहीं, वाणी प्रकशन, नयी दिल्ली, संस्करण:२०११, पृ.४१
५.संपा. यादव राजेंद्र, 'हंस', अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, अक्टूबर,२०१३, पृ.३५

'तीर : 1993 : अंतर्राष्ट्रीय आदिवासी वर्ष में' कहानी में आदिवासियों में शैक्षिक चेतना

श्री. सुरेश आनंदा मोरे
शोधछात्र, हिंदी विभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
मो.नं. 9881424318

शोधालेख का सार

आज भी आदिवासी समाज शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ नजर आता है। यही बात उनकी उन्नति में सबसे बड़ा रोड़ा है। इसके लिए आदिवासी इलाके की प्रतिकूल परिस्थिति भी जिम्मेदार है। इस प्रतिकूल परिस्थिति पर मात करते हुए धीरे-धीरे उनमें शैक्षिक चेतना जगती हुई दिखाई देती है। इसी का चित्रण महाश्वेता देवी के 'आदिवासी कथा' कहानी-संग्रह की 'तीर : 1993 : अंतर्राष्ट्रीय आदिवासी वर्ष में' कहानी में भी मिलता है। इसमें लेखिका ने आदिवासियों के शैक्षिक स्थिति पर भी प्रकाश डाला है।

बीज शब्द : आदिवासी शैक्षिक चेतना, महाश्वेता देवी, 'तीर : 1993 : अंतर्राष्ट्रीय आदिवासी वर्ष में' कहानी, आदिवासी।

जल, जंगल और जमीन से निष्कासित करने के कारण आदिवासी समाज को अपने अस्तित्व के लिए झगड़ना पड़ रहा है। आदिवासी लोगों के अज्ञान का फायदा उठाते हुए जमींदार, महाजन, नौकरशाह जैसे प्रस्थापित समाज लोग अमीर बनते जा रहे हैं लेकिन आदिवासियों की स्थिति जस-की-तस दिखाई देती है। उन्हें जंगल से निष्कासित करने के कारण रोजी-रोटी के लिए भटकना पड़ रहा है। इस संदर्भ में डॉ. अर्जुन चव्हाण लिखते हैं-"आधुनिकता के इस माहौल में हमारे देश का मूल निवासी अर्थात् आदिवासी समाज जैसा और जहाँ था, वैसा और वहीं है। एकाध अपवाद अगर छोड़ दें तो कहना सही होगा कि हमारे यहाँ सबसे अधिक वंचित, उपेक्षित और अभावग्रस्त आदिवासी समाज ही रहा है।"[1] इस प्रकार आदिवासी समाज आज भी वंचित और उपेक्षित है। धीरे-धीरे उन्हें इस बात का एहसास होने लगा है। इसलिए तो उनमें शिक्षा संबंधी चेतना जगती हुई दिखाई देती है। इस शैक्षिक चेतना का चित्रण लेखिका महाश्वेता देवी के 'आदिवासी कथा' कहानी-संग्रह में मिलता है। इस कहानी संग्रह की 'तीर : 1993 : अंतर्राष्ट्रीय आदिवासी वर्ष में' कहानी में आदिवासी समाज में सुधार हेतु आदिवासी कार्यकर्ता प्रतिकूल परिस्थिति में किसप्रकार स्कूल खोलने का प्रयास करते हैं, इसका चित्रण मिलता है।

'तीर : 1993 : अंतर्राष्ट्रीय आदिवासी वर्ष में' यह महाश्वेता देवी की लंबी कहानी है। इसमें आदिवासी समाज की व्यथा, प्रस्थापित समाज द्वारा उनका किया जानेवाला शोषण, महाजनों द्वारा उनकी जमीन पर अवैध रूप से कब्जा, उनकी अपने ही जमीन से होनेवाली बेदखली, अशिक्षा, अज्ञान तथा आदिवासी समाज में जग रही शैक्षिक चेतना का प्रधानता से चित्रण किया गया है। शिक्षा ही एकमात्र साधन है, जो मनुष्य को अपने अधिकारों के प्रति सचेत बनाता है। इस बात को आदिवासी समाज के थोड़े-बहुत पढ़े हरिचरण, चांदो, भुंइमाली, कालीप्रद, शालकांद मुर्मू जैसे लोगों ने जानने के कारण ही वे आदिवासी भाटागेड़ा गाँव में स्कूल खोलना चाहते हैं। इसमें उन्हें सफलता मिलती है लेकिन आदिवासी समाज शिक्षित होकर अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो गया तो अपना भ्रष्टाचार, अन्याय-अत्याचार बर्दाश्त नहीं करेगा इसलिए प्रस्थापित व्यवस्था किस प्रकार उन्हें तकलीफ देती है, पुलिस द्वारा किस प्रकार स्कूल और स्कूल खोलनेवाले कार्यकर्ताओं पर खुफिया लोगों द्वारा नजर रखी जाती है, इसका भी चित्रण प्रस्तुत कहानी में महाश्वेता देवी ने बेहतरीन ढंग से किया है।

आदिवासी भाटागेडा गाँव और परिसर में एक भी स्कूल नहीं है। इसलिए आदिवासी कार्यकर्ता हरिचरण शालकांद जैसे लोग स्कूल खोलना चाहते हैं। इस संदर्भ में हरिचरण कहता है-"शालकांद, आसपास कोई इस्कूल नाहीं है। हम लोग जल्दी इस्कूल खोलें और तीन बरस चलाते रहें, तो सरकार भी मान लेवेगी! फिर..."[2] इस प्रकार हरिचरण अपने साथियों के सहयोग से आदिवासी बच्चों को पढ़ाने के लिए स्कूल खोलना चाहते हैं। वह जानता है कि अगर निजी तौर पर तीन साल ठीक से स्कूल चलाया तो अपने-आप सरकारी अनुदान शुरू हो जाएगा। तब तक निजी तौर पर स्कूल चलाने आदिवासी समाज में थोड़े-बहुत पढ़े भुंइमाली, कालीप्रसाद, चांदो की पढ़ाने के लिए मदद लेने का निर्णय लिया जाता है। उनके पास पैसा न होने के कारण वे स्कूल के लिए साहुकार चंद्रकांत बेरा के पास जमीन गिरवी रखने का निर्णय लेते हैं। प्रस्तुत कहानी में चंद्रकांत बेरा ऐसा पात्र है जो आदिवासी किसानों के कोरे कागज अंगुठे लेकर कर्ज देता है। यह जमीन व बाद में हड़प लेता है।

आदिवासी कार्यकर्ताओं में शिक्षा संबंधी चेतना जगने के कारण वे स्कूल के लिए बेंच, ब्लैक बोर्ड आदि सामान इकट्ठा करना शुरू करते हैं। इस संदर्भ में महाश्वेता देवी लिखती हैं-"उसने वगो भाइती की बनाई हुई टेढ़ी-मेढ़ी बेंचें भी देखीं। ब्लैकबोर्ड भी हाथी की तरह भारी था। ठीक चौकोर भी नहीं था और नाप में एक तरफ जरा छोटा भी था।"[3] इससे स्पष्ट होता है कि आदिवासी

इलाके में स्कूल खोलने के लिए कितनी मशक्कत करनी पड़ती है। स्कूल के लिए यह इकट्ठा किया गया सामान भलेही दिखाने में सुंदर नहीं था लेकिन मजबूत था। प्रस्तुत कहानी में आदिवासी लोग धीरे-धीरे उन्नति की राह पर अग्रसर होते दिखाई देते हैं। अन्य कार्यों के साथ स्कूल खोलने की दृष्टि से मशक्कत यह भी इसका अच्छा उदाहरण है। आदिवासियों जगी नई चेतना के संदर्भ में लेखिका महाश्वेता देवी लिखती हैं-"भाटागेड़ा में इन दिनों पुराने को पुनर्जीवित करके, वंचित आदिवासी और अन्य शोषितों के मन में, काफी तेजी से एक नई चेतना घर करती जा रही थी।"[4] इस प्रकार आदिवासी समाज में एक नई चेतना जग जाती है।

स्कूल शुरू करने के बाद नए ज्ञान-विज्ञान के साथ जुड़ने के लिए आदिवासी कार्यकर्ता स्कूल के लिए किताबें खरीदना चाहते हैं। ये किताबें बच्चे और पढ़े-लिखे आदिवासियों की दृष्टि से भी खरीदी जाती है। ये किताबें दिन में बच्चों पढ़ेंगे और रात के समय कार्यकर्ता भी पढ़ेंगे, इसप्रकार इसका दोहरा उद्देश्य है। भाटागेड़ा में शुरू किए आदिवासी प्राइमरी विद्यालय का भी दोहरा उद्देश्य था। दिन में वह बच्चों को पढ़ने के लिए था तो रात में आदिवासी कार्यकर्ता के विचार-विमर्श का केंद्र था। इस संदर्भ में कहानी में लिखा है-"दिन के वक्त पहला सत्र, रात को सभी के साथ मिलकर उठना-बैठना, इस तरह भाटागेडा में आदिवासी प्राथमिक विद्यालय की शुरुआत हुई। जमीन पर जल्द से जल्द किसका अधिकार हो, कृषक-संग्राम, रूस-चीन...यहाँ सभी विषयों पर बातचीत होती थी। चांदो अपने छात्र-छात्राओं को बेंत की शंटी मार-मारकर पढ़ाता था! दोपहर के वक्त वह तीर चलाने का अभ्यास करता था।"[5] इस प्रकार बहुत प्रतिकूल परिस्थिति में प्रकृति के गोद में आदिवासी बच्चों का स्कूल शुरू हो जाता है। अध्यापक चांदो बच्चों को नियमित रूप में पढ़ाता भी है और तीर चलाने भी सिखाता है। क्योंकि चांदो एक अध्यापक भी है और अच्छा शिकारी भी। प्रस्तुत कहानी में कम होती जा रही जंगली प्राणियों की संख्या की ओर भी निर्देश किया है।

आदिवासी अपने अधिकारों और विकास की दृष्टि से सचेत होते देख पुलिस नक्सली कार्रवाइयों की आशंका से उनकी हलचलों निगरानी रखना शुरू करते हैं। प्रस्थापित व्यवस्था द्वारा आदिवासी भाटागेड़ा आदिवासी विद्यालय पर नजर रखने के लिए खबरियों की नियुक्ति की जाती है। यह खबरिया इस स्कूल में चल रही सभी गतिविधियों की पूरी जानकारी पुलिस को देते रहते हैं। इस संदर्भ में महाश्वेता देवी ने लिखा है- "भाटागेड़ा आदिवासी प्राथमिक विद्यालय के बारे में, लहर थानों के बड़े बाबू, नन्ददुलाल राय पूरी नजर रखता था। उसने खबर लाने के लिए खबरिया भेजा! श्वेतकेशी बूढ़ी, दुकानदार घोचू, हाट में आश्चर्य मलहम और जयन्ती दंतचूर्ण बेचनेवाला, दिलीप! इस किस्म के खबरी, पुलिस के पे-रोल पर होते हैं।"[6] इस प्रकार ये खबरिया लोग पूरी स्कूल के बारे में पूरी जानकारी पुलिस थाने में देते हैं।

संथालों के जीवन में धीरे-धीरे किस प्रकार परिवर्तन आ रहा है, आदिवासी बच्चे किस प्रकार लगन पढ़ रहे हैं आदि बातों की पूरी जानकारी वे पुलिस को देते। साइकिल मरम्मत करनेवाले ईश्वर को भी पुलिस ने खबरिया के रूप में नियुक्त किया है। दरोगा के हुक्म पर वह भाटागेड़ा के माँझी पाड़ा में चक्कर लगाता है। वह किस प्रकार पुलिस को खबर देता है इस संदर्भ में लेखिका लिखती है-"उसने खबर दी, "चांदो, कालीपद, भुंइमली-लड़के-लड़कियों को पढ़ाय रहे हैं। हाँ, चांदो जरा मारता भी है। हमका बोले, रात को काथा सुनकर जाना।"[7] इसप्रकार आदिवासी लोगों हलचलों के संदर्भ पूरी जानकारी पुलिस तक पहुँचाई जाती है।

शिक्षा तथा बाहरी जगत के संपर्क में आने आदिवासियों के जीवन में परिवर्तन आ रहे परिवर्तन का भी चित्रण प्रस्तुत कहानी में आया है। पहले आदिवासियों समेत पिछड़ी जातियों का जाति से अपमानजनक उल्लेख किया जाता है। आदिवासियों को लोग 'जंगली' आदि कहते थे। अब यह पिछड़ी जातियों द्वारा बर्ताश्त नहीं किया जाता है। इस संदर्भ में कहानी का पात्र शोभन दत्त कहता है-"उसे जंगली न कहें। आजकल समय बेहद खराब है! किस बात पर भड़क जाए, कौन कह सकता है? अब तो हाट का मोची तक फुत्कारने लगा है-खबरदार, बेटा-फेटा ना कहें। शराफत से बात करें।"[8] इस प्रकार आदिवासी समेत पिछड़ी जातियाँ भी अपमानजनक व्यवहार बर्दाश्त नहीं करती। इसे शिक्षा से ही आया परिवर्तन माना जा सकता है।

इस प्रकार आदिवासियों में शैक्षिक चेतना का चित्रण प्रस्तुत कहानी में मिलता है।

निष्कर्ष :

अंत में निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आज आदिवासी समाज शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है। यही उनकी उन्नति के बीच का सबसे बड़ा रोड़ा है। वर्तमान समय में इस समाज में धीरे-धीरे शैक्षिक चेतना जग रही है। इस दृष्टि से कुछ आदिवासी लोग प्रयास कर रहे हैं लेकिन प्रस्थापित समाज को यह बात खलती हुई नजर आती है। इन्हीं सारी बातों का चित्रण महाश्वेता देवी के 'आदिवासी कथा' कहानी-संग्रह की 'तीर : 1993 : अंतर्राष्ट्रीय आदिवासी वर्ष में' कहानी में भी मिलता है। इसके माध्यम से लेखिका ने आदिवासियों की शैक्षिक स्थिति पर प्रकाश डाला है।

संदर्भ :

1. डॉ. अर्जुन चव्हाण, विमर्श के विविध आयाम, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ 181
2. महाश्वेता देवी, आदिवासी कथा, तीर : 1993 : अंतर्राष्ट्रीय आदिवासी वर्ष में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2004, पृष्ठ 65
3. वही, पृष्ठ 67
4. वही, पृष्ठ 68
5. वही, पृष्ठ 68
6. वही, पृष्ठ 71
7. वही, पृष्ठ 72
8. वही, पृष्ठ 71

हिंदी साहित्य में पर्यावरण विमर्श

श्री.श्रीकांत जयसिंग देसाई
पीएच.डी शोधार्थी
देशमुख वाडा,नरसोबा चौक
मु.पो.कामेरी
तहसिल-वालवा जिला-सांगली
मोबाईल नं –9921990072,7972123535
Email-shrikantdesai72@gmial.com

सारांश :

आज तक के दौर साहित्यिक दौर में बहुत से लेखकों ने पर्यावरण इस विषय पर अपने विचार स्पष्ट किए है | कुछ लेखको ने महत्त्व भी स्पष्ट किया है | आज की स्थिति में दिन ब दिन बढते प्रदूषण के कारण पर्यावरण यह विषय बहुत ही महत्वपूर्ण होता जा रहा है ,लेकिन हिंदी साहित्य में पर्यावरण पर बहुत पहले से ही विचार किया गया है | पर्यावरण की व्याख्या से लेकर व्याप्ति तक का स्पष्टीकरण हिंदी साहित्य में दिया गया है | हिंदी साहित्य में पर्यावरण चेतना मानव जीवन एवं पर्यावरण एक दूसरे के पर्याय हैं। जहां मानव का अस्तित्व पर्यावरण से है वहीं मानव द्वारा निरंतर किए जा रहे पर्यावरण के विनाश से हमें भविष्य की चिंता सताने लगी है। हमारे प्राचीन वेदो ऋग्वेद सामवेद यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में पर्यावरण के महत्व को दर्शाया गया है।

प्रस्तावना :

"परि" जो हमारे चारों ओर है "आवरण" जो हमें चारों ओर से घेरे हुए है,अर्थात पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ होता है चारों ओर से घेरे हुए। पर्यावरण उन सभी भौतिक, रासायनिक एवं जैविक कारकों की समष्टिगत एक इकाई है जो किसी जीवधारी आबादी को प्रभावित करते हैं तथा उनके रूप, जीवन को तय करते हैं। हमारे चारों तरफ का वह प्राकृतिक आवरण जो हमें सरलता पूर्वक जीवन यापन करने में सहायक होता है,पर्यावरण कहलाता है। पर्यावरण से हमें वह हर संसाधन उपलब्ध हो जाते हैं जो किसी सजीव प्राणी को जीने के लिए आवश्यक है। पर्यावरण ने हमें वायु,जल,खाद्य पदार्थ,अनुकूल वातावरण आदि उपहार स्वरूप भेंट दिया है।पर्यावरण की अशुद्धि व पर्यावरण सुरक्षा एवं विमर्श एक ऐसा विषय है जो विज्ञान एवं तकनीकी विकास के साथ गहराई से जुड़ा हैं।संक्षेप में पर्यावरण की शुद्धि या पर्यावरण सुरक्षा विमर्श पर प्राणी जगत का अस्तित्व निर्भर करता है।एक पर्यावरण प्रेमी बड़े पैमाने पर पर्यावरण आंदोलन एक राजनीतिक और नैतिक आंदोलन के रूप में सुधार और पर्यावरण की दृष्टि से हानिकारक मानव गतिविधियों में परिवर्तन के माध्यम से प्राकृतिक पर्यावरण की गुणवत्ता की रक्षा करना चाहता है। एक पर्यावरणवादी पूरी तरह से से पर्यावरण की रक्षा के लिए समर्पित होता है और यही उसका धर्म होता है।

शोध विषय का विश्लेषण :

हिंदी साहित्य में पर्यावरण चेतना मानव जीवन एवं पर्यावरण एक दूसरे के पर्याय हैं।जहां मानव का अस्तित्व पर्यावरण से है वहीं मानव द्वारा निरंतर किए जा रहे पर्यावरण के विनाश से हमें भविष्य की चिंता सताने लगी है। हमारे प्राचीन वेदो ऋग्वेद,सामवेद,यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में पर्यावरण के महत्व को दर्शाया गया है।

भारतीय संस्कृति में वेदों, उपनिषदों आदि ग्रन्थों में मनुष्य के स्वस्थ जीवन के लिए पर्यावरण को महत्व दिया गया है। हमारी संस्कृति में प्रकृति हमेशा से पूजनीय रही है। मानव जाति की एकपक्षीय विकास ने प्रकृति को बहुत नुकसान पहुँचाया है।आज हमारे चारों तरफ महामारी फैली हुई है, न साँस लेने के लिए शुद्ध वायु, न पीने के लिए शुद्ध जल मिल पा रहा है, ओजोन होल लगातार फैल रहा है, ग्लेशियर पिघल रहा है, पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है, खाद्य वस्तुएँ विषाणु युक्त हो गई हैं, हमारे लिए पर्यावरण को बचाने की बड़ी जिम्मेदारी आ पड़ी है। पर्यावरण का संकट में आना हमारे अस्तित्व के लिए खतरनाक है। हमने गहरी नींद से जगने में बहुत देर कर दी है। हमने अपने कर्मो से बहुत कुछ बर्बाद कर लिया है और अब जो बचा है, उसके प्रति हम अगर सचेत न हुए तो भावी पीढ़ी के भविष्य को हम अंधकार में ढ़केल के ही दम लेंगे। यही पर्यावरण विमर्श की आधारभूमि है।

इक्कीसवी सदी में जब से वैज्ञानिक प्रगति हुई है तो साथ ही साथ प्राकृतिक संसाधनों का दुरुपयोग भीबढ़ा है। जनसंख्या वृद्धि, जंगलों की कटाई, प्रोद्योगिकी से फैलते प्रदूषण ने समस्त मानव जाति के स्वास्थ्य को संकट में डाल दिया है। ओजोन की पट्टी का ऱ्हास होता जा रहा है | लोगों के सामने त्वचा कैंसर, फसलों की हानि, मोतियाबिन्द बढ़ने जैसे खतरे मंडराने लगे हैं।पर्यावरण के

वातावरण या हवा, स्थलमंडल,या चट्टानें और मिट्टी,जलमंडल,या पानी,और पर्यावरण के जैविक घटक या जीवमंडल यह पर्यावरण के चार बुनियादी घटक हैं।पर्यावरण का सबसे महत्वपूर्ण घटक है वातावरण | प्राकृतिक संतुलन का आधार जंगल है, जंगलों के विनाश के कारण ही कहीं अतिवृष्टि तो कहीं अनावृष्टि देखी जा रही है। भूमंडलीय ताप में वृद्धि का कारण भी जंगलों का नाश होना है। वायु की शुद्धता जंगल पर निर्भर है। किन्तु आज वैज्ञानिक उन्नति एवं जंगल के व्यवसायीकरण ने जंगल का विनाश कर डाला है।

पर्यावरण और मनुष्य का साथ मनुष्य के इस धरती पर अस्तित्व के साथ ही है। मनुष्य ने अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए आरंभ में पर्यावरण को समझने, उसे नियंत्रित करने और अनुकूल बनाने की कोशिश की। फिर भी पर्यावरण के अनसुलझे जटिल रहस्यों के आगे उसे कई बार झुकना होना पड़ा। बड़ी मात्रा में पर्यावरण की शक्तियां मनुष्य के नियंत्रण से बाहर ही रहीं। मनुष्य पर्यावरण की देखी-अनदेखी शक्तियों से डरा और उसे प्रसन्न करने के लिए प्रयास करना शुरू किया। कुछ मात्रा में पर्यावरण को अपने अनुकूल बना लिया जितना कि उसे जीवन जीने के लिए आवश्यक था।

हमारा यह संसार आकाश,वायू,जल,पृथ्वी,अग्नि,पेड,नदी,पहाड,समुद्र,आदि से मिलकर बना है और इन सबका पुरा रूप ही पर्यावरण है | हम सब इसी में जिते है,सांस लेते है | भारतीय साहित्य भी पूरी तरह से पर्यावरण केंद्रित है | पर्यावरण वैदिक काल से चला आ रहा है | पुरातन काल में लोग पर्यावरण की पूजा करते थे | उनके लिए पर्यावरण अपनी माता की तरह था,उसकी रक्षा के लिए अपने सभी कर्तव्यो का पालन करते थे | जिसका वर्णन हजारीप्रसाद द्विवेदी जी के 'कुटज' में भी मिलता है,

"यह धरती मेरी माता है ओर मै इसका पुत्र हुं | इसीलिए मै सदैव इसका सम्मान करता हुं और मेरी धरती माता के प्रति नतमस्तक हुं|"

भारतीय संस्कृति में पर्यावरण का बहुत महत्व रहा है | हिंदी साहित्य में प्रारंभ्भ से ही पर्यावरण के शोषण का विरोध किया गया है | हिंदी साहित्य में पर्यावरण के प्रति प्रेम,संरक्षण,आत्मानुभिति तथा किसी को भी हानि न पहुंचाने का भाव आज भी दिखाई देता है | हिंदी के सभी कवि तथा साहित्यकार जैसे – आचार्य रामचंद्र शुक्ल,आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी,कबीर,रविदास,गुरुनानक आदि ने पर्यावरण के शोषण के खिलाफ आवाज उठाकर मनुष्यो को पर्यावरण को बचाने के लिए प्रेरित किया |

भक्तिकालीन कवियो में कबीर,रहीम,तुलसी मीराबाई आदि सभी ने पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिए अपने साहित्य के माध्यम से समाज में जागरूकता फैलाई | तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस'में इस प्रकार के अनेक प्रसंग मिळते है ,जहा राम गंगा नदी की पूजा करते है सीता वृक्षो को सिंचती दिखाई देती है |समुद्र में मार्ग न दिखाई देने पर लक्ष्मण राम से समुद्र रोकने के लिए कहते है,लेकिन राम कहते है की ऐसा करने से समुद्र के सभी जीव जंतू,वनस्पती नष्ट हो जायेगी और पर्यावरण को हानि पहुंचेगी |इस प्रकार अनेक उदाहरण हमें प्राचीन एवं मध्यकालीन हिंदी साहित्य में देखने को मिलते है जो हमें पर्यावरण को बचाने के लिए प्रेरित करते है |

छायावादी कवियो मैथिलीशरण गुप्त,नंददुलारी वाजपेयी,सुमित्रानंदन पंत,सुर्यकांत त्रिपाठी निराला,महादेवी वर्मा,हरीवंशराय बच्चन आदि ने अपने काव्य में प्रकृति एवं पर्यावरण सौंदर्य का चित्रण बडी सुंदरता से किया है | जयशंकर प्रसाद ने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य कामायनी ,झरना,लहर,आंसू,कानन कुसुम आदि में पर्यावरण के महत्व को दर्शाते हुए पर्यावरण का सुंदर चित्रण किया है |प्रसाद के महाकाव्य 'कामायनी' में इडा की सुंदर पंक्तियां है,

देखे मैने वे शेल श्रृंग,जो अचल हिमानी से रंजित,
उन्मुक्त,उपेक्षा भरे तुंग अपने जड गौरव के प्रतिक'
इन पंक्तियो में मानव जीवन की निराशा एवं पर्यावरण के महत्व को दर्शाया है |

भारतीय संस्कृति को अगर वन संस्कृति कहा जाए तो गलत ना होगा हिंदी साहित्य मे वन को विशेष स्थान प्राप्त है,इतना ही नही विश्व की प्रथम कविता और प्रथम महाकाव्य तैयार हुआ था | लेकिन मनुष्य आज अपने स्वार्थ के लिए संस्कृति को नष्ट करने का काम कर रहा है |

सुमित्रानंदन पंत जी की पर्वत प्रदेश मे पावस कविता मे हमको प्रकृति का अद्भुत नजारा देखने को मिलता है।

'पावस ऋतु थी,पर्वत प्रदेश
पल पल परिवर्तित प्रकृती वेश
मेखलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्त्र दृग सूमन फाड,
अवलोक रहा है बार-बार

नीचे जल मे निज महाकार

इस कविता में प्रकृति के नजारे का वर्णन किया गया है|

नरेश अग्रवाल जिने अपने कविता के माध्यम से पेडों को अंतिम संस्कार की संज्ञा दी है-

"मै गुजर रहा था
अपने चीर परिचित मैदान से
एका एक चीख सुनी
जो मेरे प्रिय पेड की थी
कुछ लोग खडे थे बडी बडी कुल्हाडिया लेकर
वे काट चुक थे इसके हाथ
अब पाव भी काटने लगे थे

इन पंक्तियों में मनुष्यधारा वृक्षों को नष्ट के जाने का वर्णन किया गया है|

छायावाद के और एक कवि अज्ञेय जी के काव्य में भी मानव और पर्यावरण के संबंधो की झलक मिलती है उन्होने अपनी कविता असाध्य वीणा में मनुष्य को अहंकार त्याग देने की तथा आत्मानुभूति प्राप्त करने की प्रेरणा दी है |

निष्कर्ष :-

हिंदी साहित्य मे पर्यावरण के विभिन्न अंगों का सौंदर्य चित्रण और मनुष्य से लेकर पर्यावरण प्रदूषण और महत्वपूर्ण समस्याओ पर विचार किया गया है| विचार करने साथ साथ ही उन समस्याओ समाधान भी प्रस्तुत किया गया है| हिंदी साहित्य ने मानव को पर्यावरण के साथ जोडकर रखा है क्योंकि वह जानता है कि मनुष्य का संपूर्ण अस्तित्व ही पर्यावरण से जुडा है और मनुष्य अपनी सभी आवश्यकताओ के लिए पर्यावरण पर ही निर्भर है,इसलिए उसे नष्ट कर वह खुद भी सुरक्षित नही रह सकता| साहित्य मनुष्य को पर्यावरण के साथ लगाव करने के लिए प्रवृत्त करने का काम भी करता है|

अत: हिंदी साहित्यिकी भूमिका मनुष्य और पर्यावरण मे बहुत ही महत्त्वपूर्ण है यही वास्तव है |

संदर्भ ग्रंथ :-

1.'कामायनी',श्रध्दा सर्ग,जयशंकर प्रसाद,प्रथम संस्करण 1995
2. .'कामायनी',जयशंकर प्रसाद,प्रथम संस्करण 1995
3. .'कामायनी',जयशंकर प्रसाद,प्रथम संस्करण 1995
4. 'रामचरितमानस' किष्किंधाकांड श्लोक 11

“आदिवासी विमर्श : चिंतन, सृजन एवं सरोकार”

माधुरी राजाराम चव्हाण (शिंदे)
पीएच.डी शोधार्थी ,
शिवाजी विद्यापीठ , कोल्हापुर
दूरभाष क्र. 7972342621

सारांश –

प्राचीन काल से आदिवासी, वनों पहाडों में रहते आ रहे है । वनों में रहने के कारण उनका जीवन पुर्नतया वनों पर निर्भर रहता है। उनकी समस्याएँ भी उन्ही जंगलों, वनों और जमीनों से जुडी है। अंग्रेजो के काल में जल, जमीन, जंगलों का व्यापारियों द्वारा दोहन शुरू हुआ। आदिवासी जनसमुदाय की अस्तित्व पर ही हमला हो गया, जिससे उनके स्वातंत्र्य, अस्तित्व पर संकट खडा हुआ। उन्हें अनेक समस्याओं से जुझना पडा जिसकी प्रतिक्रिया के स्वरूप आदिवासियों ने प्रतिरोध करना प्रारंभ किया। जिसका प्रमुख उदाहरण है चिपको आंदोलन। आजादी के बाद अन्य क्षेत्रों के विकास की तुलना में आदिवासी क्षेत्रों का विकास हमेशा पिछडा रहा है। आदिवासियों का जीवन ऐसेही वर्षो तक अंधकारमय रहा। विकास की किरणे उनकी तरफ फैली ही नही। ईसी अंधकार को चिरने के लिए आदिवासी विमर्श के रूप में एक आशा की किरण नजर आई। साहित्य के क्षेत्र में पहले ही दलित विमर्श, स्त्री विमर्श अपना अलग स्थान बना चुके थे। इन सारी विमर्शो के बीच और एक विमर्श अपनी पहचान बनाने की कोशीश कर रहा था और वो है आदिवासी विमर्श। आदिवासी विमर्श आदिवासियों की अस्मिता, अधिकार, स्वतंत्रता, मानवता के अधिकार प्राप्त करने का एक साहित्यिक आंदोलन रहा। आदिवासी विमर्श आदिवासियों के प्रश्नों से जुडे स्वरों की पहचान कराता है। आदिवासी विमर्श साहित्य कहानी, उपन्यास, व्यंग, नाटक,कविता आदि विधाओं में लिखा जा रहा है। लेखक अपनी रचनाओं में आदिवासी जीवन से जुडी समस्याओं को उजागर करने का प्रयास कर रहे है, जिसमे प्रमुख है – रमणिका गुप्ता , महाश्वेता देव, संजीव, मैत्रयी पुष्पा, राकेश वत्स, वंदना टेटे आदि।

बीज शब्द – आदिवासी , जनजाती , समाज , संस्कृति।

प्रस्तावना –

भारतीय भाषा साहित्य की परंपरा अलग – अलग भाषाओं की वजह से महत्त्वपूर्ण रही है। हमारी परांपराओं में साहित्य संस्कृति की परंपरा बस लिखित या मौखिक रूप में सीमित नही है। इन दोनों से हि मिलकर हमारी साहित्य परंपरा उज्ज्वल बनी है। फिर भी बहुतसी भारतीय भाषाओं को मुख्य भाषा का स्थान नही मिला है। जिसके परिणाम स्वरूप वह भाषाएँ हम सिर्फ ‘बोली ’ के रूप में पहचानते है। इनमें से कुछ बोलियाँ ‘ आदिवासी ’ नाम से जानी जाती है। डॉ . रमणिका गुप्ता के अनुसार –

“ बिना जंगल, जमीन अपनी भाषा, जीवन शैली, मुल्यों के बिना आदिवासी, आदिवासी नही रह सकता। आदिवासी इस देश का मूल निवासी है ”(रमणिका गुप्ता – आदिवासी कौन, राधाकृष्ण प्रकाशन- पृ.सं.86)

आदिम काल से जो वनों में रहता आ रहा है और अपनी संस्कृति, अपनी प्रकृति की रक्षा करता आ रहा है, वही आदिवासी है। आदिवासी संस्कृति में प्राचीन काल से ही मौखिक रूप में साहित्य का सृजन होता रहा। जिसमे गीत, महाकाव्यों का समावेश होता है। उदाहरण के तौर पर वाल्मीकि का रामायण , स्वयंभू का पउमुचरिउ। आदिवासी साहित्य कि प्रकृति और परंपरा को समझने के लिए, आदिवासी साहित्यों का जन साहित्य में सर्जनात्मक व्यवहार होना आवश्यक है। आदिवासी साहित्य में कविता हमेशा सर्वोपरि रही है। जादातर आदिवासी साहित्य कविता या गीत के रूप में सामने आया है। आदिवासी जनजाति के समस्याओं को केंद्र में रखकर आदिवासी साहित्य अपने विकास का अगला पढाव पार कर चुका है। हिन्दी कि पहली आदिवासी कवयित्री के रूप में सुशीला सामंत को जाना जाता है। हिन्दी कि पहली आदिवासी कहानी ‘रोज के रकट्टा’ है , तथा ‘कचनार’ आदिवासी विमर्श से संबंधित प्रथम हिन्दी उपन्यास है , जो वृंदावनलाल वर्मा ने लिखा है। आदिवासी कवियों में निर्मला पुतुल, वंदना टेटे, महादेव टोप्पो, सुषमा असुर, शकुंतला मिश्र विशेष रूप से जाने जाते है। इनके साहित्य में स्वानुभूती कि झलक मिलती है, जिसमे सामाजिक जीवन, नारी संघर्ष, अस्तित्व कि लढाई, शिक्षा का संघर्ष दिखाई देता है।

शोध विषय का विश्लेषण –

आदिवासी समाज एक ऐसा खास समाज है जो हमारे ऐतिहासिक विकास कि दृष्टि से हमारे वर्तमान स्थिति से बहुत अलग स्थिति में रह रहा है। उनके सामने खडे सवाल उनका धर्म , संस्कृति ,भाषा ,जीवन निर्वाह की पद्धति सबकुछ हमारे समाज से

अलग और अपरिचित है । (डॉ. तलवार 1999 की टिप्पणी) आदिवासियों की समस्याओं पर प्रकाश डालने के लिए साहित्यिक आंदोलन द्वारा आदिवासी समाज में जागृती निर्माण हुई । आदिवासी विमर्श में आदिवासी तथा गैर आदिवासी साहित्यकारों द्वारा प्रचुर मात्रा में लेखन कार्य हुआ, जिससे आदिवासियों के तरफ देखने का लोगों का नजरियाँ बदल गया । आदिवासियों के अस्तित्व के साथ – साथ प्रकृति को बचाने के लिए आदिवासी हिन्दी साहित्य विमर्श की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही । आदिवासी विमर्श में आदिवासी जनजाति में जन जागृती करके आदिवासियों को हमारी मुख्य धारा में लाने का कार्य किया जा रहा है ।

आदिवासी साहित्य के विकास का अध्ययन करते समय हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिए की वह साहित्य मूल रूप से किसके द्वारा लिखा गया है । आदिवासी साहित्यिक द्वारा या गैर आदिवासी साहित्यिक द्वारा यह बात जानना समझना जरूरी है , क्योकि कोई भी साहित्य अपनी चर्मोत्कर्ष पर तभी पहूँचता है जब उसमे उस लेखक द्वारा स्वानुभूती के भाव प्रकट हो ।आदिवासी साहित्य को सही मात्रा में न्याय तभी मिलेगा जब वह साहित्य किसी आदिवासी साहित्यकार द्वारा लिखा जाए । एसा नही की गैर आदिवासी साहित्यकारों द्वारा आदिवासी साहित्य को न्याय नही मिलता । गैर आदिवासी लेखकों ने भी प्रचुर मात्रा में आदिवासी साहित्य लिखकर आदिवासियों की समस्याओं को उजागर करने का प्रयास किया है । लेकिन आदिवासियों की अपनी अलग दुनिया है , उनकी अपनी अलग संरचना है । आदिवासी साहित्यकार उनमें से ही एक होने की वजह से उनकी समस्याओं को उनके दुख दर्द को नजदिकी से समझ सकता है, जिससे उस साहित्य में आदिवासी जनजाति की संवेदना अच्छेसे उभर आती है ।

आदिवासी लोगों के जीवन की समस्याएँ सामान्य लोगों से अलग होती है । भारत के हिंदू समाज से आदिवासी समाज की स्थिति अलग है । यह भिन्नता सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा लगभग सभी स्तरों पर अलग है । इस दृष्टि से आक्रोश (गोविंद निहलानी ,1980) औऱ ‘लाल सलाम’ (गगनबिहारी बारोट 2002)की कथाएँ आदिवासी समस्याओं पर केंद्रित है । वर्तमान साहित्यकारों ने आदिवासियों को केंद्र में रखकर कई रचनाएँ की है । जिसमे आदिवासियों के रीति - रिवाज, संस्कृति, आचार – विचार आदि प्रस्तुत है । आदिवासी विमर्श में उनकी सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था, कलाओं, प्रथाओं का वास्तविक चित्रण मिलता है । आदिवासियों की शोषण की वास्तविक स्थिति समाज के सामने आती है, जिससे आदिवासी चेतना जागृत होती है । आदिवासी साहित्यकारों ने अपनी मौखिक साहित्य परंपरा को लिखित साहित्य में लाकर समृद्ध करने का प्रयास किया है । औऱ इस प्रयास को आगे लेकर जानेवाले आदिवासी साहित्यकार कुछ इस प्रकार है-

निर्मला पुतुल –

निर्मला जी संथाली भाषा की एक प्रसिद्ध आदिवासी लेखिका है । उनका जन्म 06 मार्च 1972 को दुधानी, दुमका जिले में हुआ । उन्होंने नर्सिंग डिप्लोमा करने के बावजुद स्वयं को सामाजिक कार्य तथा साहित्य लेखन में समर्पित किया । निर्मला जी हिन्दी आदिवासी साहित्य धारा की सर्वाधिक चर्चित कवयित्री है । उनकी कृतियाँ कुछ इस प्रकार है –‘ अपने घर की तलाश में (2004), ‘नगाडे की तरह बजते शब्द’(2005), ‘बेघर सपनें’ (2009) आदि ।

चादर में बच्चे को पीठ पर लटकाये ,
धान रोपती पहाडी स्त्री ।
रोप रही है अपना पहाड - दुख ,
सुख की एक लहलहाती फसल के लिए।
पहाड तोडती , तोड रही है ,
पहाडी बंदिश और वर्जनाएं.........

वंदना टेटे-

वंदना जी का जन्म 13 सितंबर 1969 को राजस्थान में हुआ । उन्होंने राजस्थान से ही स्नातकोत्तर पदवी प्राप्त की । स्कूल कॉलेज में ही उन्होंने लिखना शुरू किया था । उन दिनों ऊनकी कविता, लेख, कहानियाँ स्थानिक एवं राष्ट्रीय पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही । वंदना जी शोषित एवं वंचित आदिवासी समाज के शिक्षा, साक्षरता तथा अन्य मुद्दों पर पिछले 25 सालों से सक्रिय है ।

हम बस प्रकृति चाहते है ,
भात जितना, नदियाँ चाहते है ।
माड - झोर (दाल) जितना ,
साग तिथन चाहते है ।

जंगल जितना औऱ पहाड ,
बस नमक भर ....

सुषमा असुर –

सुषमा असुर, असुर समुदाय से है। अन्य आदिवासी समुदायों सें असुर आदिवासी समुदाय अभी भी 'लेखन संस्कृति' में अविकसित है। सुषमा जी को असुर समुदाय में पहले साहित्यकार होने का श्रेय प्राप्त है। उनकी 2010 में प्रकाशित 'असुर सिरिंग ' असुर साहित्य की प्रथम पुस्तक है।

हे धरती के पुरखों,
हे आसमान के पुरखों ,
ओ हमारे माता – पिता,
ओ सभी असुर बुढा – बुढिया,
हम सिखेंगे तुम्हारी तरह बोलना.........

इस तरह आदिवासी साहित्यकारों ने अपनी अलग – अलग प्रभावशाली रचनाओं द्वारा आदिवासी समस्याओं को वाणी देने की कोशीश की है।

इन तीनों साहित्यकारों की तरह अन्य भी आदिवासी साहित्यकार प्रसिद्ध है जैसे की – सुशीला सामंत, राम दयाल मुंडा, लाल मीणा, बाबुलाल मुर्मू , महादेव टेप्पो, मंगल सिंह मुंडा आदि। शब्दों की मर्यादा की वजह से सबका सविस्तर परिचय देना संभव नही इसलिए आदिवासी लेखकों की संक्षिप्त जानकारी देना ही उचित लगता है। आदिवासी साहित्यकारों की तरह गैर आदिवासी साहित्यकारों का भी आदिवासी विमर्श में योगदान सराहनीय है , तथा कुछ गैर आदिवासी साहित्यकारों की मुख्य रचनाओं का संक्षिप्त परिचय हम लेते है। जिसमें आदिवासी विमर्श मुख्य रूप से उभर आया है।

महाश्वेता देवी : 'जंगल के दावेदार' –

इस उपन्यास में महाश्वेता देवी जी ने बिहार के अलग –अलग जिलों के वनों में रहने वाले आदिवासियों का चित्रण किया है। वास्तव में 'जंगल के दावेदार' यह उपन्यास एक बांग्ला उपन्यास 'अरण्येर अधिकारी' का हिन्दी अनुवाद है, जो महाश्वेता देवी जी ने किया है। बिहार के मुंडा आदिवासियों के लोकगीतों तथा उनके जीवन मूल्य, अशिक्षा, अंध विश्वासों का चित्रण इस उपन्यास में मिलता है।

मैत्रेयी पुष्पा : 'अल्मा कबुतरी '-

'अल्मा कबुतरी' यह उपन्यास मध्य प्रदेश के जंगलों में बसनेवाले खानाबदोश कबुतरा आदिवासियों की उपेक्षित, अपमानित ,प्रताडित महिला की स्थिति का सजीव चित्रण है।

डॉ. रमणिका गुप्ता : 'सीता- मौसी' –

'सीता - मौसी' एक उपन्यास न होकर 'सीता' और 'मौसी' दो अलग -अलग उपन्यास है, यह उपन्यास आदिवासी की उस स्थान पार केंद्रित है ,
जो धीरे – धीरे विकसित होकर औध्योगिक केंद्र बन चुका है ,जिससे आदिवासी संस्कृति खत्म होती जा रही है और आदिवासी समाज मजबूरी में मजदूर बनता जाता है।

इसतरह आदिवासी विमर्श में आदिवासी तथा गैर आदिवासी लेखकों का समान योगदान है, जिसकी वजह से आदिवासियों की समस्याओं को उजाले में लाने का एक नया मार्ग मिल गया।

निष्कर्ष -

आदिवासी साहित्य केवल एक सहानुभूती नही बल्कि उनके जीवन संघर्ष से प्रेरित एक आंदोलन है। आदिवासी विमर्श से समाज में नए दृष्टिकोन का विकास हुआ, जिससे आदिवासी संस्कृती को देखने का नजरियाँ बदलकर आदिवासी संस्कृती को बचाने में सहयोग मिला। प्रारंभ में आदिवासी और दलित साहित्य एक माना जाता था। लेकिन आदिवासी की व्याप्ति, विशेषता देखकर उनका अलग रेखांकन किया जाने लगा, उसका ही नाम आदिवासी विमर्श है। आदिवासी साहित्य के अंतर्गत आदिवासी

तथा गैर आदिवासी साहित्य का समावेश होता है। तथापि दोनो भी साहित्यकारों ने मिलकर आदिवासी समस्याओं को उजाले मे लाकर आदिवासी विमर्श को न्याय दिलाने में समान योगदान दिया है। और इसी साहित्यिक आंदोलन से आदिवासी विमर्श को देखने की एक नई दृष्टी निर्माण हुई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1) आदिवासी गरासिया साहित्य, 'भाखर रा भौमिया'- अर्जुनसिंह शेखावत , साहित्य अकादमी , न्यू दिल्ली
2) आदिवासी साहित्य : परंपरा और प्रयोजन – वंदना टेटे, प्यारा केरकेट्टा फाऊंडेशन रांची, झारखंड -2013
3) आदिवासी साहित्य यात्रा : रमणिका गुप्ता, रमणिका फाऊंडेशन प्रथम संस्करण , राधाकृष्ण प्रकाशन- 2008
4) आदिवासी साहित्य में आदिवासी समाज व संस्कृती का विवेचनात्मक अध्ययन – सीमा मोनरिया , भूपाल नोबल्स विश्वविद्यालय , उदयपूर
5) समकालीन आदिवासी कवियों की कविताओं में अभिव्यक्त आदिवासी विमर्श – श्री हिरामन टोंगारे, सांगली - 2019

“हिंदी उपन्यास साहित्य में आदिवासी विमर्श”

श्री. सुभाष विष्णु बामणेकर
शोधार्थी,
हिंदी विभाग,
शिवाजी विद्यापीठ, कोल्हापूर
मो. 7875586916
Email- bamnekarsv@gmail.com

शोध आलेख का सार -

आदिवासी विमर्श एक नया विमर्श है। बहुत सालों से हाशिए पर रखे गये आदिवासी समुदाय को आज साहित्य में जगह मिल रही है। आदिवासियों व्दारा भी अपने अस्तित्व एवं अस्मिता के लिए संघर्ष किया जा रहा है। आदिवासी साहित्य विधा मे संघर्ष महत्तवपूर्ण ‘उपन्यास विधा’ रही है। आदिवासी समाज के जीवन संघर्ष के साथ-साथ आदिवासी समाज के सामाजिक जीवन संघर्ष को अभिव्यक्त किया है। उनका विस्थापन, अशिक्षा, अभाव, अंधविश्वास, गरीबि, अस्तित्व एवं अस्मिता का सवाल, विद्रोह, आदि की प्रमुखता मिली है। उपन्यास के माध्यम से आदिवासी यथार्थ को उनके साथ हो रहे शोषण, दमन को केंद्रे मे रखकर उनकी सच्चाई को सामने लाया जा रहा है। वैश्वीकरण के पडिप्रश्च मे एक ओर देश वैश्विक महासत्ता का सपना देख रहा है। वही दूसरी ओर समाज की मूख्य धारा से वंचित, पहाडों और जंगलों में रहनेवाला आदिवासी समाज बुनियादी सुविधाओं से कोसों दूर रहा है। उपेक्षा, अभाव और शोषण की त्रासदी झेल रहा है। आधुनिक माहौल में रहकर भी सबसे पिछडा हुआ समाज कोई है जो वह है आदिवासी समाज है।

मूल शब्द – अस्तित्व, विस्थापन, वैश्वीकरण, अंधविश्वास ।

वर्तमान समय में कई विषयों को लेकर साहित्य का सृजन हो रहा है। साहित्य के माध्यम से ही समाज में स्थिर अनेक विषयों को उजागर हिंदी के लेखक अपने लेखन विषय से करते नजर आते हैं। साहित्य में कई विषयों को लेकर विमर्श हो रहे है। जिसमें, किन्नर विमर्श, किसान विमर्श, पर्यावरण विमर्श, बाल विमर्श, वृध्द विमर्श, मुस्लिम विमर्श, दिव्यंग विमर्श, दलित विमर्श एवं आदिवासी विमर्श आदिवासी के माध्यम से समाज का वास्तव पाठकों के सामनें आता है। आदिवासी समाज की मुख्य समस्या के रुप में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक आदि को उजागर किया है।

विश्व के हर गाँव में विकास हो रहा है। इन सबके बावजूद आज भी समाज में आदिवासी समाज जंगली, पहाडों की परिस्थितीयों में किसी तरह से अपना जीवन यापन कर रहे है। आदिवासी समाज तक किसी भी प्रकार का विकास नहीं पहुँच पा रहा है। इनका पूर्व जीवन सुखमय था लेकिन आज समाज में आदिवासियों का जीवन शोषित बन गया है। विकास के नाम पर आदिवासी समाज को मूलभूत आवश्यकताओं जैसे जंगल, जल, जमीन से उन्हें बेदखल किया जा रहा है। आदिवासी समाज की अस्मिताएवं अस्तित्व और उनकी संस्कृति पर प्रभाव पड जाता है। आधुनिक सभ्यता के लाभों से वंचित एवं उन्नति के दौर में पिछडे हुए आदिवासियों के जीवन में कुछ हद तक परिवर्तन आया है। इस बदलाव या परिवर्तन श्रेय साहित्य को ही मिलता है।

वस्तूत: किसी देश के मूल निवासी को आदिवासी कहा जाता है। हमारे भारत देश के संदर्भ में कहना हो तो आदिवासी प्राय: जंगल तथ पहाडीं क्षेत्र में रहते है। याह आदिवासी वह है जो वहाँ पहले से निवास करती आई है। डॉ. अर्जुन चव्हाण जी अपनी विमर्श के विविध आयाम (समकालीन हिंदी तथा मराठी-बृहत उपन्यासों के संदर्भ में) किताब में कहते है “जंगल पहाडी प्रदेश तथा दुर्गम भागों में रहने के कारण आदिवासी समाज आज भी पिछडा हुआ नजर आता है। आधुनिककालीन माहौल में भी अगर सबसे पिछडा हुआ समाज कोई है तो हमारे यहॉं आदिवासी समाज है। जंगलो तथा दुर्गम भागों में रहनेवाली वह जनजातियाँ साधनसुविधाओं से वंचित तो है ही लेकिन अज्ञान और अशिक्षा के कारण अपनी रुढि और परंपराओं के चंगुल से बाहर नहीं आ पाई हैं।

वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में एक ओर देश वैश्विक महासत्ता का स्वप्न देख रहा है। वहीं दूसरी ओर पहाडों ओर जंगलो में रहनेवाला आदिवासी समाज बुनियादी सुविधाओं से कोसों दूर रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के कई वर्ष बाद भी भारतीय संस्कृति के सच्चे रक्षक थे आदिवासी समाज उपेक्षा, अभाव एवं शोषण की त्रासदी झेल रहे हैं। सरकार व्दारा आदिवासी मंत्रालय से घोषित योजनाएँ उन तक नहीं पहुँच पाती है। हिंदी साहित्य का वर्तमान युग हाशिए पर जीवन जी रहे इस आदिवासी समाज के प्रति संवेदनशील रहा है। हिंदी के साहित्यकारों व्दारा आदिवासी समाज के प्रति गंभीर चिंतन दृष्टिगोचर होता है। प्रकृति के सानिद्य मे

रहनेवाले, अशिक्षा, अंधविश्वास, भुखमरी, शोषण से ग्रस्त आदि पर समकालीन हिंदी उपन्यासों आदिवासी विमर्श को केंद्र मे रखकर अनेक कृतिओं का सृजन हुआ है।

समकालीन हिंदी उपन्यास कृतियों में आदिवासी विमर्श को केंद्र मे रखकर लिखे गए उपन्यासों भरमार है। शिवाप्रसाद सिंह का 'शैलूष', संजीव का पाँव तले की दूब, 'सावधान नीचे आग है', 'जंगल जहाँ शुरु होता है', 'धार' राजेंद्र अवस्थी का 'जंगल के फूल', जाने कितनी आँखे, सूरज की छाँव, मैत्रेयी पूष्पा का अम्ला कबुतरी, राकेश वत्स का 'जंगल के आसपास', मृणाल पाण्डेय का 'देवी', चंद्रकांता का 'कथा सतीसर', हिमांशु जोशी का 'कमार की आग', पुत्नीसिंह का 'सहरान्त', प्रकाश मिश्र का 'जहाँ बास फुलते हैं', मनमोहन पाठक का 'गगन घटा गहरानी', तथा तेजिन्द्रसिंह का 'काला पादरी' जैसे कई उपन्यास है जो आदिवासियों के जीवन को केंद्र में रखकर इनके आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक पहलुओं के साथ आदिवासी समाज का यथार्थ चित्रण किया है।

शिवप्रसाद सिंह के 'शैलूष' उपन्यास की स्त्री रुपा में यही प्रवृत्ति दिखाई देती है कि, "मारकर तोड दूँगी तेरा हाथ रसाला तू क्या समझता है कि नट नटुली जिंदगीभर अनपढ और अंधेरे में ही सडते रहेंगे? म्या उनकी जिंदगानी में कभी रोशनी आएगी ही नहीं?" 2. आदिवासी स्त्री रुपा के इस कथन से आदिवासियों में शिक्षा के प्रति बढती आस्था का और अपनी उपेक्षा के कारण विकसित हो रही चेतना दिखाई देती है। वस्तुत: आदिवासी समाज यहाँ का मूल निवासी है और मूल मालिक भी। जिस पहाड, जंगल या दुर्गम प्रदेश में वह रहता है, वहाँ का मालिक , वह स्वयं है। अनपढ तथा शिक्षा से वंचति होने के कारण दलितो की तरह आदिवासियों का भी शोषण खूब किया गया। शोषण करनेवाले उसी समाज के सत्ताधारी, माफिया, दलाल, ठेकेदार, साहुकार भी दिखाई देते है। यहाँ तक की कॉमरेड नेता भी आदिवासीयों के शोषण में पीछे नहीं हैं। आदिवासीयों के प्रति किसी में भी हमदर्दी या संवेदना नजर नहीं आती है।

संजीव के 'धार' उपन्यास में आदिवासियों के शोषण का चित्रण दिखाई देता है। उद्योग-धंदो का प्रतिनिधि करनेवाले महेंद्र बाबु आदिवासियों के इलाके मे तेजाब का कारखाना शुरु करते है। इसके संदर्भ राजेश्वरी जी लिखा है "आदिवासियों को कई समस्या का सामना करना पडता है। जन्म से मृत्यु तक उनकी जिंदगी कई मुश्किलों से होकर गुजरती है। जीविमोपार्जन हेतु घोर संघर्ष करना पडता है।" 3. इस तरह कारखाने से निकलने वाले कचरें की वजह से गौर की खेती-बाडी, कुँआ-पोखर सब खराब हो जाता है। कुँए का पानी पीने लायक नहीं रहता। सारे खेत बजर हो जाते है। सारे आदिवासी समाज के लोग इस परिवेश के कारण विशक्त हो जाते है। तेजाब की फॅक्टरी का धुआँ आदिवासीयों के लिए जानलेवा था। अत: आदिवासियों को जीवनयापन की समस्या से जुझना पडता है। इसके संदर्भ में खगेन्द्र ठाकुर जी ने लिखा है।" 4. आदिवासियों के साथ समाज के रक्षक अमानवियता का व्यवहार करते है इसका चित्रण मिलता है। उपन्यास में मैना के माध्यम से आदिवासी नारी के संघर्षशील चरित्र को प्रस्तुत किया है।

संजीव के 'धार' उपन्यास में आदिवासीयोंके शोषण का चित्रण दिखाई देता है। उद्योग-धंदो का प्रतिनिधित्व करनेवाले महेंद्र बाबू आदिवासायों के इलाके मे तेजाब का करखाना शुरु करते है। इसके संदर्भ राजेश्वरी जी लिखा है "आदिवासियों को कई समस्या का सामना करना पडता है। जन्म से मृत्यु तक उनकी जिंदगी कई मुश्किलों से होकर गुजरती है। जीविकोपार्जन हेतु घोर संघर्ष करना पडता है।" 3. इस तरह कारखाने से निकलने वाले कचरें की वजह से गॉव की खेती-बाडी, कुँआ-पोखर सब खराब हो जाता है। कुँए का पानी पीने लायक नही रहता। सारे खेत बंजर हो जाते है। सारे आदिवासी समाज के लोग इस परिवेश के कारण विशक्त हो जाते है। तेजाब की फॅक्टरी का धुँआ आदिवासीयों के लिए जानेलेवा था। अत: आदिवासियों को जीवनयापन की समस्या से जुझना पडता है। इसके संदर्भ में खगेन्द्र ठाकुर जी ने लिखा है " उनके संघर्ष की जहिलता के पीछे पूंजीपतियों और सरकारी कुटिलता काम करती रहती है।" 4. आदिवासायों के साथ समाज के रक्षक अमानवियता का व्यवहार करते है इसका चित्रण मिलता है। उपन्यास में मैना के माध्यम से आदिवासी नाही के संघर्षनीय चरित्र को प्रस्तुत किया है।

राजेंद्र अवस्थी कें 'जंगल के फूल' उपन्यास में आदिवासियों के जीवन का चित्रण प्रस्तुत है। यह उपन्यासमध्य प्रदेश के पश्चिम कें स्थित बस्तर और वहॉ के आदिवासियों की पृष्ठभूमि पर आधारित है। बस्तर में 1908 में 'भूमकाल' विद्रोह हुआ था। 'भूमकाल' आंदोलन के पूरे सौ वर्श पूरे हुए फिर भी वहॉ के आदिवासियों को अपनी जमीन पर अधिकार की लडाई शुरु है। लेखक ने बस्तर के आदिवासीयों का घोटूल जीवन, उनकी संस्कृति, रीति-रिवाज, और जीवन के अनेक पहलूओं को केंद्र में रखकर उपन्यास लिखा है । डॉ. अर्जुन चव्हाण जी के विचारों से आदिवासीयों के जीवन के संदर्भ में कहते है, "दुनिया के सादे आदिवासी समान के लोग मानव संस्कृति की मुख्यधारा से अलग हुए व्दीप जैसे है। बिखराव और अभाव आदिवासी जीवन का अभिन्न अंग रहा है।"

रणेन्द्र के " ग्लोबल गॉव के देवता" तथा गायब होता देश इन दोनों उपन्यास कें केंद्र में आदिवासी समाज है | आदिवासी समाज के जीवन यथार्थ का संघर्ष व उनकी चुनौती को दन दो उपन्यास में लेखक ने रेखांकित किया है | गोल्बल गाँव के देवता उपन्यास मे असुरों का संघर्ष चित्रित किया है | उपन्यास मे ललिता के शब्दों में असुर संस्कृति को समझ सकते है | " हमारे महादिनया महोदव वह नही है, लंगटा बाबा के है | हमारे महादेव यह पहाड है | जो हमें पालता है | हमारी सरना भाई न केवल सखुआ गाए में बल्कि सारी वनस्पितीयों मे समाई है | हम सार जीवों सें अपने गोत्र को जोडते है | छोटे जीवों कीट- पतंगों को भी अपने से अलग नही समझते, हमारे यँहा "अन्य" की अवधारणा नही है | जिस समाज के पास इतनी बडी सोच हो असे किसी लंगटा बाबा या किसी और की शरण में जाने की जरुरत ही क्या है ? [6]"उपन्यासकार ने आदिवासी समाज के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विविध पहलुओं पर हो रहे शोषण दमन को ग्लोबल सोच के साथ दिखाया है | आदिवासी समाज तमाम यातनाओं के बाद संघर्ष करना नही छोडता बल्कि निरंतर संघर्ष के लिए, अपने अस्तित्व एंव अस्मिता के लिए संघर्ष करता नजर आता है | लेखक का दूसरा उसके शोषण- दमन संघर्ष को उजागर किया है. प्रसिध्द कथाकार रमेश उपाध्यास इस उपन्यास के बारे में लिखते है | " यह उपन्यास भूमण्डलीय य्थार्थवाद का उत्कृष्ट उदाहरण है |"[7] उपन्यास का प्रमुख पान सोमेश्वर के माध्यम से लेखक ने मुण्डा आदिवासीयों को अपने देश से कितना प्यार है | यह उनके शब्दों मे "सोने जैसा देश " से प्रकट हो जाना है | और वही सोने जैसा देश गायब हो जा रहा है | इसका चित्रण मिलता है | लेखक ने ग्लोबल गाँव के देवता में असुर समुदाय तथा गायब होता देश उन्यास में आदिवासी मुण्डा समुदाय के जीवन को केंद्र में रखकर उनके ऐतिहासिक, सामाजिक, एवं सांस्कृतिक दस्ताऐवज के साथ उनके शोषण के बारे में चित्रण मिलता है | तथा इन समुदायों के संघर्ष को भी बखूबी उजागर किया है |

मैत्रेयी पुष्पा का 'अल्मा कबुतरी' उपन्यास बुंदेलखंड की कबूतरी आदिवासी जनजाती के माध्यम से समाज में 'जन्मजात अपराधी घोषित की गई अनेक जनजातियों का दस्तावेज चित्रित करता है। अंग्रेजो ने सजा तौर पर 1879 के अधिनियम के तहत 'जन्मजात अपराधी' घोषित कर दिया है। उपन्यास की मुख्यपात्र भूरी एक के माध्यम से शोषित तथा संघर्ष करनेवाले स्त्री का यथार्थ जीवन चित्रित किया है।अपने बेटे को सभ्य बनाने के लिए भूरी कबुतरा जीवन तथा बदनामी का बोझ ढोती है। लेकिन बेटे लिए जो सपना था वह दूधा है। वह पुलिस का दलाला बनता है। अत: वह मारा जाता है। यहाँ लेखिका वो कबुतर जनजाति को नारी अपने परिवार के लिए संघर्ष करती दिखाई देती है। "कबुतरा पुरुष या तो जंगल में रहता है या जेल में ….. स्त्रियों शराब की भट्टियों पर या हमारे बिस्तरों पर …" 8. लेखिका ने इन्हीं अपरिचित लोगो की कहानी उपन्यास में कठाई है। उपन्यास में कबुतरी समाज का लगभग संपूर्ण ताना-बाना यहाँ मौजुद है यहाँ, यहाँ के जीवन, प्रेम, झगडे, शौर्य आदि क्षेत्र उमें स्थित जनजातियों के जीवन पर आधारीत वंचित, उपेक्षित और अभावग्रस्त आदिवासी समाज का चित्रण प्रस्तुत किया है।

आदिवासी समाज को केंद्र रखकर तथा आदिवासीयों की समस्याओं पर महत्तवपूर्ण साहित्य हिंदी साहित्य में लिखा गया है। प्रारंभिक हिंदी उपन्यासकारों में प्रमुख रुप से रामचीज सिंह कृत 'वन विहंगिनी, मन्नन व्दिवेदी कृत, 'रामलाल', देवेंद्र सत्यार्थी व्दारा 'रथके पहिये', योगेन्द नाथ, व्दारा वनलक्ष्मी, डॉ.रागेव राघव कृत – कबतक पुकारु, नागार्जुन कृत-वरुण के बेटे, संजीव, मनमोहन पाठक, भगवान दासमोखाल, राकेशवत्स, पुन्नी सिंह, तेजिन्दर आदि उपन्यासकारों का प्रमुख रुप से नाम आता है।

अत: आदिवासी-विमर्श की दृष्टि से समकालीन हिंदी आदिवासी उपन्यासों का अध्ययन करने के पश्चात यह निष्कर्ष सामने आता है की इस विषय पर हिंदी उपन्यासों की भरमार है। यह विषय एक शोध विषय बनता है। आदिवासी जीवन चिंतन का विषय है। शोषित, वंचित, उपेक्षित, अभावग्रस्त जीवन जी रहा यह समुदाय, समाज की मुख्य धारा से अलग है। सरकार की योजनाओं का लाभ उनको प्राप्त नहीं हो रहा है। वर्तमान समय में परिणामस्वरुप आदिवासियों के प्रति संवेदना दिखाई दे रही है। उनमें आज संगठन, की भावना पनपने लगी है। अन्याय, शोषण के खिलाप, साहस के साथ विद्रोह कर रहे है। अत: समकालीन हिंदी उपन्यासकारों ने आदिवासी जीवन का चित्रण अत्यंत संवेदना के साथ उजागर किया दृष्टिगोचर होता है ।

संदर्भ ग्रंथ :

1. डॉ. अर्जुन चव्हाण, विमर्श के विविध आयाम, पृ. 181
2. डॉ. अर्जुन चव्हाण, विमर्श के विविध आयाम, पृ. 182
3. डॉ. म.द.क्षीरसागर, डॉ. राजश्री तावरे, हिंदी और मराठी साहित्य में नए साहित्यिक प्रवाह पृष्ठ 133
4. ठाकुर खरेन्द्र, उपन्यास की महान परम्पस पृष्ठ 254
5. डॉ. अर्जुन चव्हाण, विमर्श के विविध आयाम पृष्ठ 185
6. रणेन्द्र , ग्लोबल गाँव के देवता , पृ.72
7. सं लीलाधर मंडलोई, नया ज्ञानोदय, जुलाई 2014. अं.क 137 पृ.110

हिंदी साहित्य में पर्यावरण विमर्श

कामिनी जनार्दन मोहिते
पीएच डी शोधार्थी,
मोबाइल नंबर ९१६४३०३०९६
Email : solapuretasneem@gmail.com

सारांश:-

पर्यावरण मानव जीवन के विभिन्न आयामों को सख्त रूप से प्रभावित करता है। हिंदी साहित्य में सभी ख्याति प्राप्त साहित्यकारों ने अपने काव्यों, कहानियों, उपन्यासों, नाटकों में बखूबी प्रकृति का चित्रण किया है। प्रकृति के चित्रण के बिना साहित्य अधूरा है। साहित्य का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि मानव और प्रकृति के बीच अटूट गहरा संबंध है। हमारे साहित्य में भी पर्यावरण की चिंता केंद्र बिंदु में रही है| हिंदी साहित्य की परंपरा में साहित्यकारों ने पर्यावरण के प्रति अपनी जिम्मेदारी को निर्वाहन करते हुए लगातार समाज को इस ज्वलंत समस्या के बारे में जागरूक करने का प्रयास किया और यह प्रयास अनवरत जारी है।

वैदिक काल के अध्ययन से से पता चलता है की तत्कालीन सभ्यता के लोग प्रकृति की पूजा करते थे धरती उनकी माता थी। जिसकी रक्षा के लिए तथा जिस पर जीवन बनाएं रखने के लिए अपनी सभी कर्तव्यों का पालन करते थे।

बीज शब्द: पर्यावरण, प्रकृति, संस्कृति।

प्रस्तावना:-

पर्यावरण शब्द का निर्माण दो शब्दों से मिलकर हुआ है। 'परि' तथा आवरण का अर्थ है 'चारों ओर' तथा आवरण का अर्थ है 'घेरे हुए' अर्थात जो हमें चारों ओर से घेरे हुए हैं पर्यावरण कहलाता है। पर्यावरण शब्द एवं उसका अर्थ अत्यंत व्यापक है। जिसमें सारा ब्रह्मांड ही समा जाता है। हमारा यह संसार आकाश, जल, वायु पृथ्वी अग्नि तथा वृक्ष नदी पहाड़ समुद्र एवं पशु पक्षी से आवृत्त है। मनुष्य के भोगवादी प्रवृत्ति ने आज पर्यावरण का संतुलन को खतरे में डाल दिया है। बढ़ते हुए प्रदूषण के कारण पर्यावरण असंतुलित होता जा रहा है। यही कारण है कि हमें अकाल, बाढ़, सूखा, आदि का निरंतर समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। जंगल कटने के कारण वन संपदा का दोहन करने के कारण वन संपदा का दोहन तो हुआ ही है। इससे जल और शुद्ध वायु पर भी गहरा प्रभाव पड़ रहा है। जंगल की अंधाधुंध कटाई से वर्षा कम हो गई है और नदियां सूखने लगी है। शहरों में बढ़ती आबादी में जमीन के नीचे से पानी को सोख लिया है।

पर्यावरण हमारे चारों ओर का वह परिवेश है जो हमें नित्य प्रभावित करता है। आज का पर्यावरण मुख्य रूप से जनसंख्या वृद्धि से अभी शापित हो गया है।

शोध विषय का विश्लेषण:-

हिंदी साहित्य में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक प्रकृति को हमेशा विशिष्ट स्थान मिला है। पर्यावरण चेतना की समृद्ध परंपरा हमारे साहित्य में रही है।भारतीय संस्कृति में मूलत:अरण्य संस्कृति रही है, अरण्य अर्थात वन। जन्म से ही मनुष्य का नाता प्रकृति की आराधना तथा पर्यावरण की संरक्षण करना हमारा पुरातन भारतीय चिंतन है। प्रकृति के साथ सह अस्तित्व की भावना से युक्त जीवन व्यतीत करने वाले हमारे पूर्वजों, ऋषियों, एवं विद्वानों ने हजारों वर्षों पहले ही पर्यावरण महत्व को समझ लिया था।

हिंदी साहित्य में प्रारंभ से ही प्रकृति के अनावश्यक दोहन शोषण का विरोध किया गया है। अतः प्रकृति के प्रति प्रेम संरक्षण आत्मानुभूति तथा किसी को भी हानि न पहुंचाने का भाव हिंदी साहित्य में मिलता है।

वर्तमान में अब तकनीक बदल रही है। आज के समय में अधिकतम कार्य ऊर्जा उत्पादन विद्युत उत्पादन नाभिकीय विखंडन एवं नाभिकीय संलयन आदि विधियों से किया जा रहा है। इन से अधिक मात्रा में रेडियोएक्टिव वि किरण उत्सर्जित होता है। लोगों के सामने त्वचा रोग, कैंसर, फेफड़ों की हानि, आंखें, सांस लेने की बीमारियां होने का कारण है।

वर्तमान परिवेश की पर्यावरण की समस्याएं जैसे ओजोन परत का क्षय, ग्लेशियरों का पिघलना, प्रदूषित जल, वृक्ष काटना, भूस्खलन, प्रदूषण जलवायु परिवर्तन इत्यादि मनुष्य को अपनी जीवन शैली के बारे में पुनर्विचार के लिए प्रेरित कर रही है।

हिंदी साहित्य में पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं प्रकृति के सौंदर्य चित्रण व मानवीकरण से लेकर पर्यावरण प्रदूषण भूमंडलीकरण व अन्य महत्वपूर्ण समस्याओं पर मंथन किया गया है चिंतन करने के साथ ही साथ उन समस्याओं का तार्किक उपयुक्त समाधान भी प्रस्तुत किया गया है।

भारतीय साहित्य और दर्शन संपूर्ण रुप से पर्यावरण पर केंद्रित रहा है। मानव का प्रथम कर्तव्य होता है कि वह प्रकृति की रक्षा करें। हिंदी साहित्य में प्रारंभ से ही प्रकृति के अनावश्यक दोहन का विरोध किया गया है। हिंदी साहित्य में भक्तिकाल के कवियों में जैसे कबीर, रहीम, जायसी, तुलसीदास, मीराबाई आदि ने अपनी रचनाओं में प्रकृति का कई स्थानों पर रहस्यमय वर्णन किया है।

तुलसीदास ने रामचरितमानस में लक्ष्मण और सीता को वृक्षारोपण करते हुए दिखाया है, यथा–

"तुलसी तरुवर विविध सुहाए
कहूं कहूं, सीये, कहूं लखन लगाए।"

हिंदी साहित्य में आदिकाल से लेकर रीति काल तक किसी न किसी रूप में कवियों ने काव्य में प्रकृति एवं पर्यावरण को वर्णित किया है वही आधुनिक काल से पर्यावरण के प्रति प्रौढता दृष्टिगोचर होने लगती है।

आधुनिक काल में हजारी प्रसाद द्विवेदी, अयोध्या सिंह उपाध्याय, श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि ने अपने काव्य में प्रकृति एवं पर्यावरण सौंदर्य का चित्रण सुंदरता के साथ किया है। अयोध्या सिंह उपाध्याय हरि ओम जी के प्रिय प्रवास महाकाव्य में प्रकृति का वर्णन मिलता है।

दिवस का अवसान समीप था।
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरु शिका पर थी अब राजती।
कमलिनी – कुल – वल्लभं का प्रभा।

छायावादी काव्य में प्रकृति संबंधी कविताओं के बाहुल्य और उसमें पति फलित प्रकृति पर दृष्टिकोण को देखकर कुछ विचारकों ने छायावाद को प्रकृति काव्य भी कहा है। इस काल के छायावादी कवियों में महादेवी वर्मा, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी, सुमित्रा नंदन पंत आदि ने अपने काव्य में प्रकृति एवं पर्यावरण चित्र को साथ ही संजोया है। जिसमें जयशंकर प्रसाद जी ने अपने महाकाव्य कामायनी में प्रकृति के विविध रूपों का वर्णन इस प्रकार किया है।

"प्रकृति रही दुर्जन पराजित हम सब भूलो थे मद में|
भोले थे, हां तिरते केवल सब बिलासिता के मद में।
वे सब डूबे डूबे बिभव, बन गया पारावार|

प्रगतिवाद व छायावाद के विरोध में प्रयोगवाद आया। इस काल के प्रयोगवादी कवियों में हीरानंद सच्चिदानंद वास्तायन, मुक्तिबोध, नेमीचंद्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, नंददुलारे वाजपेयी। अज्ञेय जी की कविता असाध्य वीणा में प्रकृति के बारे मैं चित्रण किया है इस प्रकार—

हां मुझे स्मरण है,
बदली कौंध पत्तियों पर वर्षा बूंदों की पटपट,
घनी रात में महूए का चुपचाप टपकना।
चौके खग शावक की चिहूंक l
शिलाओं को दुलार ते वन झरने के
द्रुत लहरी ले जल का कल– निनाद।

निष्कर्ष:-

आज संपूर्ण विश्व ग्लोबल वार्मिंग जैसे शब्द से भलीभांति परिचित और पीड़ित भी है। कार्बन गैसों के उत्सर्जन से हमारे जीवन की सुरक्षा पहुंचने वाली ओजोन परत में छिद्र हो गया है, धरती का तापमान दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है।

पर्यावरण संतुलन आज की एक गंभीर आवश्यकता है, जिसे बनाने में में हम सभी को अपना सहयोग देना ही होगा। केवल पर्यावरण के संरक्षण द्वारा ही हम अपने जीवन उसे अस्तित्व व मानव जीवन की गरिमा की रक्षा कर सकते हैं।

आज जहां पर्यावरण संरक्षण के लिए लोगों में जागरूकता फैलाने के लिए विश्व में एक दिवस निर्धारित किया गया है। जिसे पर्व के रूप में मनाया जाता है। भारतीय संस्कृति सदैव प्रकृति और पर्यावरण के महत्व एवं संरक्षण के प्रति सदैव ही जागरूक रही है।

संदर्भ ग्रंथ:–

1. 'रामचरितमानस', तुलसीदास, २/236/3
2. 'प्रियप्रवास', अयोध्या सिंह उपाध्याय, 'हरिऔध' प्रथम सर्ग, प्रथम संस्करण 1914
3. 'कामायनी', जयशंकर प्रसाद, प्रथम संस्करण 1995

'पांव तले की दूब' उपन्यास में चित्रित आदिवासी समस्याएँ

प्रा. हणमंत परगोंडा कांबले
यशवंतराव चव्हाण वारणा महाविद्यालय,
वारणानगर
मो. नं. 9579728080
ईमेल- kamblehp4@gmail.com

सार:-

भारतीय समाज में अनेक धर्म विशेष, जाति विशेष के लोग एकत्रित रहते हैं। अनेकता में एकता भारत का वैशिष्ट्य है। अनेक जाति धर्मों के लोग रहते हुए भी भारत हमेशा एकजुट रहा है। इन सभी जाति धर्म की अपनी अलग पहचान, अपनी अलग संस्कृति, अपने अलग रीति-रिवाज है। सारे जाति समुदाय अपनी संस्कृति, रीति-रिवाज को महत्वपूर्ण मानते हुए, उन्हें अखंडित रखना चाहते हैं और यह अधिकार हमें संविधान ने भी दिया है। इन सभी समाजों में एक आदिवासी समाज भी है, जो अपनी संस्कृति, अपनी रीति-रिवाज, अपनी परंपरा को अखंडित रखना चाहता है। आदिवासी शब्द का अर्थ ही है 'आदि से वास करने वाले'। यह लोग जंगल में रहते हैं। आदिवासी समाज अपनी संस्कृति का विशेष ध्यान रखते है। इस उपन्यास में आदिवासी समाज के संस्कृति, परंपरा, उनकी समस्याएँ आदि का विस्तृत विवेचन किया हैं।

बीज शब्द:- आदिवासी, उपन्यास, फैक्ट्री, बेरोजगारी, शिक्षा।

प्रस्तावना:-

मूलतः आदिवासी समाज आत्मनिर्भर हैं। आधुनिक युग में सभी लोग अपने रहन-सहन को बदलने लगे हैं, लेकिन आदिवासी समाज अपनी संस्कृति, रहन-सहन का पूरी तरह से पालन कर रहा है। आदिवासी लोग पेड़, पर्वत, पत्थरों को अपना देवता मानते हैं और उनकी पूजा करते हैं। आधुनिक युग के सभ्य समाज के संपर्क में आने के बाद भी ज्यादातर आदिवासी जनजातियां अपने मौलिक जीवन-यापन का ही प्रतिनिधित्व करते है।

आदिवासी समाज भारत का प्राचीनम समाज हैं। 'पाँव तले की दूब' उपन्यास भी आदिवासी समुदाय की समस्याओं को लेकर लिखा हैं। संजीव अपने उपन्यासों में आदिवासी जनजीवन को बारीकी से प्रस्तुत किया है, और यह प्रस्तुतीकरण इस उपन्यास में भी मिलता हैं। हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श पर उपन्यास लिखने की शुरुआत कई दशक पहले से हुई। आज यह विमर्श प्रौढ़ अवस्था मैं हैं। सजीव आदिवासी विमर्श लिखने वाले प्रमुख उपन्यासकारों में से एक है। संजीव ने इस उपन्यास को आत्मकथनात्मक शैली में लिखा है। इसका नायक सुदीप्त उर्फ सुदामा प्रसाद है।

आदिवासी समाज देश के हर क्षेत्र में हमें मिलते हैं। परंपरागत समाज व्यवस्था और गांव में इनके लिए कोई स्थान नहीं होता। इसलिए वह जंगलों में ही अपना घर बनाते हैं। वे वन औषधियां बेचकर अपना उधर निर्वाह करते हैं। आदिवासी समाज धरती को अपनी मां मानता है। इनमें से ज्यादातर लोग अनपढ़ ही होते हैं। इसी वजह से इन में कुछ कुरीतियां, अंधश्रद्धाएँ भी है जो उनके लिए घातक साबित होते हैं। सरकार आदिवासियों के विकास के लिए हर साल करोड़ों रुपए खर्च करती है, अनेक योजनाएं बनाती है। लेकिन भ्रष्टाचार जैसे कारणों की वजह से यह योजनाएं आदिवासी जनसमुदाय तक पहुंच नहीं पाती, अगर पहुंचती भी है तो बहुत कम मात्रा में। इसीलिए उन्हे अनेक समस्याओं का सामाना करना पड़ता हैं।

स्वास्थ्य की समस्या:

जैसे-जैसे भारत विकसित हो रहा है वैसे वैसे कारखानों की संख्या में बढ़ोतरी हो रही है। इन कारणों की वजह से हवा प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदा प्रदूषण इन जैसे प्रदर्शनों में बढ़ोतरी भी हो रही है और इसका सीधा परिणाम मनुष्य पर पड़ता है किससे मनुष्य का जीवन छोटा होता जा रहा है। संजीव ने इस उपन्यास में मनसा नाले का जिक्र किया है। इस नाले में फैक्ट्री का दूषित पानी छोड़ा जाता है और यही पानी आदिवासी समुदाय अपने रोजमर्रा की जिंदगी में इस्तेमाल करता है इसी वजह से उन लोगों में अनेक बीमारियां अपने पैर फैला रहे हैं। दूषित पानी की वजह से आदिवासी समुदाय के लोगों को लकवे की बीमारी हो गई है। "माझी हडाम के घर जाकर मैंने उसकी लकवा की मारी 18 साल की बेटी 'जानकी' को देखा हाथ, पांव, चेहरा सूख के मरीज जैसे पतले और डरावने।"[1] आदिवासी समुदाय की बीमारी के अनेक कारण है उसमें से एक और है प्लांट से निकली हुई काली छाई। यह छाई वहां के पेड़ और पत्थरों के ऊपर जम जाती है इससे पेड़ों में भी प्रदूषण आ जाता है और यह पेड़ और पत्ते आदिवासियों के पशु खाते हैं और उन पशुओं के सहारे वह मनुष्य में घुस जाते हैं। "पेड़ों पर पसंद में आए पत्ते तक काले हैं दो ही

महीने में ऐसे हो गए मैंने पूछा पलक झपकते ही उछल कर एक युवक ने जामुन का पत्ता तोड़ कर दिखाया इस पर बिजली कारखाने की छाई है साहब।"[2] इन सभी कारणों से उनका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है।

स्वास्थ्य सुविधाओं की समस्या:

आदिवासी समुदाय जंगलों में रहता है। इसी वजह से उनके यहां यातायात के साधन बहुत कम होते हैं, क्योंकि जंगलों से शहर तक आने के लिए अच्छी सड़क नहीं होती। इसी कारण से वे लोग कई कई सुविधाएं उन्हें मिल नहीं पाती, और कभी मिल पाती है अभी तो उनकी आदिवासी होने के कारण उन्हें नीचा दिखाया जाता है, और वहां से बिना इलाज के भगा दिया जाता है। सुदीप्त ने जब हड़ाम से पूछा कि तुम अस्पताल क्यों नहीं ले जाते तो इसके जवाब में हड़ाम कहता है "वहां कौन सुनता? ले गए थे। डांट के भगा दिया डागडर। तब से झड़ाई - फुंकाई होता है।"[3]

शासन या ठेकेदारों की समस्या:

आदिवासियों के ज्यादातर जमीनों पर सरकार का या उस जगह पर स्थापित कंपनी वालों का या ठेकेदारों का कब्जा होता है। उन लोगों को अपने ही घर जमीन से दूर करने का काम यह ठेकेदार लोग करते हैं। उन्हें जंगल से दूर रहने की सलाह दी जाती है अगर वह गलती से भी लकड़ी काटने या फिर अन्य किसी काम से जंगल में जाते हैं तो उन्हें पकड़ कर उनके ऊपर अत्याचार किया जाता है। सारे बातों से आदिवासी ठेकेदारों से नाराज है और उनसे नफरत करते हैं। "साहब, सरकार तो बहुत मेहरबान है ना हम पर?.... ये ई मेहरबानी है ना कि यह छोटा बुरु के जंगल शालवनी से हमारा बाप - दादा काठ काट के लाता रहा, अब हमारा लड़का - जनाना दातुअन भी नहीं तोड़ने सकता?"[4] इस पर जब सुदीप्त कालीचरण को समझाने के लिए कहता है कि "जंगल बचे रहे, इसमें हम सब का फायदा है न! मैं उसकी जलन पर मरहम लगाने की गरज से बोला, ये सख्ती शायद उसी के लिए की गई होगी।"[5] इस पर कालीचरण कहता है "हां बचाने के लिए…और ठेकेदार, अपीसर टरक- का - टरक जंगल काट के ले जाता, सो…? हियां प्रीतम सिंह का गोला में का है जा कर देखिए।"[6] ठेकेदार अफसर के साथ मिलकर उन्हें पैसा खिलाकर जंगल के वनों को तोड़कर अपने फायदे के लिए ले जाते हैं। लेकिन जंगल की रक्षा के लिए आदिवासी अगर सामने आए तो उन्हें घी में पड़े मक्खी की तरह उठाकर बाहर फेंक दिया जाता है।

अंधविश्वास की समस्या:

आदिवासी लोगों को शिक्षा नहीं मिल पाती इसी वजह से वह लोग अनपढ़ होते हैं और इसी अज्ञानता के कारण अंधविश्वास उन्हें अपने में समेट लेता है और इसी अंधविश्वास के कारण कभी-कभी उनके जान पर भी आती है लेकिन वह इस अंधविश्वास से दूर नहीं जाते इसका सबसे महत्वपूर्ण कारण है उन्हें शिक्षा ना मिलना। अगर कोई सुशिक्षित व्यक्ति उन्हें समझाने की कोशिश करें की अंधविश्वास बुरी बात है और इससे तुम दूर रहो तो वे लोग सुनते नहीं अंधविश्वास उनके दिलों दिमाग पर हावी है। सुदीप्त इसी बात को कालीचरण को समझाने के लिए कहते हैं "सोचो, अगर इस तंत्र मंत्र में इतनी ही ताकत होती तो तुम्हारे गुरु अब तक जेल में क्यों सड़ रहे होते।"[7] कभी कबार इस अंधविश्वास के कारण लोग किसी की जान लेने के लिए भी आगे पीछे नहीं देखते। सुदीप्त कहता है, "एक मनहूस खबर मिली की मोझीया वालों ने अपने ही गांव की एक बांझ औरत को डायन करार देकर पीट-पीटकर बेरहमी से मार डाला था।"

नशे की समस्या:

चाहे सभ्य समाज हो या आदिवासी समाज दोनों समाजों में नशा करने की समस्या हमें मिलती है। इस नशे से ना सभ्य समाज बच पाया ना ही आदिवासी समाज बच पाया। आदिवासी समाज में नशा करना इतना बुरा नहीं माना जाता जितना सभ्य समाज में माना जाता है। नशे के दुष्परिणाम को वे अशिक्षा के कारण समझ नहीं पाते उपन्यास में भी नशे की समस्या को उठाया गया है आदिवासी युवक कालीचरण वह दारू पीकर दफ्तर में आता है और सुदीप्त उसे हर बार समझाने का प्रयास करता है लेकिन कालीचरण जो है वह एक कान से सुनता है और दूसरे कान से छोड़ देता है फिर भी सुदीप चुप नहीं बैठ जाओ बाहर और उसे समझाता ही रहता है। वह कहते हैं "किस्कू तुमने दारू अभी तक नहीं छोड़ी…? क्यों मुझे और खुद को जलील करने पर तुले हुए हो …? या देखो किसको तुम जिस समाज से आए हो वह सदियों से अपेक्षित रहा है।"[9]

बेरोजगारी की समस्या:

ज्यादातर आदिवासी समाज अनपढ़ था। लेकिन इस समाज में कुछ ऐसे व्यक्ति भी थे जिन्होंने थोड़ी बहुत पढ़ाई की थी और इसी वजह से वे चाहते थे कि नौकरी करें। सरकार ने भी आदिवासी लोगों के लिए आरक्षण घोषित किया है, लेकिन असल में इन आरक्षित जगहों पर दूसरे लोग जो इस आरक्षण के लिए पात्र नहीं हैं वे आकर बैठ जाते हैं। इसके कारण जिन स्थानों पर आदिवासी युवक को रोजगार मिलना चाहिए वह उसे नहीं मिलता और वहां बेरोजगार होता है। इस उपन्यास में संजीव ने इस समस्या को लोगों के सामने रखा है। पंडित अपने भाई के बेटे के लिए जब सुदीप के पास नौकरी मांगने जाता है तब सुदीप्त उसे कहता है, कि वह आरक्षित जगह है तब पंडित कहता है ‘‘बहुत देखा कानून साहेब! पंडित की गर्दन स्प्रिंग सी तन गई, सब बार पाक गया देखते - देखते। ‘कैंडीडेट नहीं मिला’ कहकर कितनी बहालिया हुई बताए...? ई कहिए की तकदीर खराब थी कि यही रह गए वरना दिखाते कैसे नहीं होता है।”[10] इससे यह बात साबित होती है कि आरक्षित जगहों पर दूसरे आदमी को बिठाना आम बात हो गई है और इसी वजह से आदिवासी समाज रोजगार से वंचित रह गया है।

निष्कर्ष:

आदिवासी समाज की समस्याओं को अगर हमें जड़ से मिटाना है, तो सरकार की योजनाओं को उन तक पहुंचाना यह जिम्मेदारी हर एक व्यक्ति की रहेंगी। आदिवासी समाज के लोगों में जनजागृति कर अंधविश्वास और विज्ञान इन दोनों के बीच का अंतर उन्हें समझा कर, उन्हे शिक्षा के लिए प्रेरित करना चाहिए। साहित्यकारों का सबसे महत्वपूर्ण काम यह है कि वह अपनी रचनाओं में आदिवासियों के दुख, दर्द, समस्याएं लिखकर सभ्य समाज में उनके प्रति मानवता की भावना निर्माण करें। आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा की व्यवस्था कर उन्हें सुशिक्षित करें तो वह इन सारी बातों से आगे बढ़कर खुद का विकास खुद ही कर सकते है।

संदर्भ ग्रंथ

1) ‘पाँव तले की दूब’, संजीव वाग्देवी प्रकाशन बीकानेर पृष्ट क्र. 66
2) ‘पाँव तले की दूब’, संजीव वाग्देवी प्रकाशन बीकानेर पृष्ट क्र. 68
3) ‘पाँव तले की दूब’, संजीव वाग्देवी प्रकाशन बीकानेर पृष्ट क्र. 66
4) ‘पाँव तले की दूब’, संजीव वाग्देवी प्रकाशन बीकानेर पृष्ट क्र. 32
5) ‘पाँव तले की दूब’, संजीव वाग्देवी प्रकाशन बीकानेर पृष्ट क्र. 32
6) ‘पाँव तले की दूब’, संजीव वाग्देवी प्रकाशन बीकानेर पृष्ट क्र. 32
7) ‘पाँव तले की दूब’, संजीव वाग्देवी प्रकाशन बीकानेर पृष्ट क्र. 33
8) ‘पाँव तले की दूब’, संजीव वाग्देवी प्रकाशन बीकानेर पृष्ट क्र. 25
9) ‘पाँव तले की दूब’, संजीव वाग्देवी प्रकाशन बीकानेर पृष्ट क्र. 31
10) ‘पाँव तले की दूब’, संजीव वाग्देवी प्रकाशन बीकानेर पृष्ट क्र. 23

'स्वांग शकुंतला' के नाट्यगीतों का विश्लेषण और पर्यावरण

चन्द्र पाल
हिंदी विभाग,
हैदराबाद विश्वविद्यालय
संपर्क–**6393177918**
मेल–**chandrapal283@gmail.com**

सुप्रसिद्ध रंगनिर्देशक और कवि,नाटककार अलखनन्दन द्वारा रचित है स्वांग शकुंतला नाटक। यह नाटक कालिदास द्वारा रचित नाटक की पैरोडी है। अलखनन्दन ने इसे आधुनिक संदर्भों में विश्लेषित करने की कोशिश हास्य और व्यंग्य विनोद के माध्यम से की है। स्वांग शकुंतला नाटक सुप्रसिद्ध नाट्य पत्रिका 'नटरंग' के 73वें अंक में प्रकाशित हुआ था। इस नाटक स्त्री अशिमता के अनेक गंभीर सवालों को उठाने की कोशिश की है। नाटक में समाज की विकृतियों का पर्दाफाश किया गया है। पाखंड का मख़ौल उड़ाया गया है। इसकी अलखनन्दन ने बहुशः प्रस्तुतियां भी दी हैं। बाद कुछ विवाद होते देख अलखनन्दन को इसकी प्रस्तुतियों को रोकना भी पड़ा था। यह नाटक अपने कलेवर में बुन्देली लोकनाट्य शैली में है और बुंदेलखंडी वातावरण का सृजन करने में पूर्णतः सफल हुआ है। यह आपको यूट्यूब पर देखने को भी मिल जाएगा। इसमें अलखनन्दन ने अपनी सूक्ष्म पैनी दृष्टि का इस्तेमाल किया है। अलखनन्दन एक विलक्षण प्रतिभा के धनी व्यक्ति रहे हैं। उन्हें समकालीन रंगजगत के मूर्धन्य रंगसाधकों के साथ काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। यूं अलखनन्दन पेशे से रक्षा विभाग के कर्मचारी से लेकर कवि, पत्रकार,नाटककार, रंगकर्मी, अभिनेता के रूप में हमारे सामने आते हैं। अलखनन्दन अपने समय के सबसे निडर रंगकर्मियों में से एक रहे हैं। बहरहाल यहां बात होगी नाट्यगीतों,गीतों में अभिव्यक्त अनेक विचारों की जो उन्होंने अपने दर्शकों के सामने, पाठकों के सामने रखे थे। एक तरह से देखा जाए तो यह लोकनाट्य बुन्देली के प्रति उनकी उन्मुक्त सृजनशीलता का उत्कृष्ट उदाहरण है। उन्होंने एक तरह से शास्त्रीय नाटक का आधुनिक लोकनाट्य रूपांतरण किया है। और वह भी चुटीले अंदाज में। इस शोधालेख के माध्यम से आप नाट्यगीतों के निहितार्थों को समझ पाएंगे। नाट्यगीतों में आपको पर्यावरण और व्यंग्य, विनोद पाखंड का विश्लेषण और बौराये प्रेम की तड़प की स्पष्ट झलक मिल जाएगी।

नाट्यगीतों में पर्यावरण

पर्यावरण की समस्या भी अलखनंदन अपने नाट्यगीतों, गीतों में उठाते हैं। जल की कमी, शुद्ध जल की कमी उनको खलती रही है। और घर परिवार की आपसी कलह को आग से कम नहीं मानते थे। वह कलह रूपी आग अपने घर को जलाने वाली कहते हैं, परिवार को जलाने वाली कहते हैं। घर के ही लोग-लोगों को ही अलख जी यमराज रूपी मानते हैं । जो आपसी कलह में मर मिटते हैं। प्रदूषण से सारा संसार हाहाकार कर रहा है। वायु प्रदूषण आज चरम पर है। अमेरिका की जहरीली खाद की अलकनंदन आलोचना करते हैं। इससे धरती जहरीली होती जा रही है। खेतों का रंग काला पड़ने पर विवश है। प्रकृति की प्राकृतिकता विनष्ट की जा रही है। अमेरिका इसके लिए कहीं ना कहीं जिम्मेदार है। जो विकास की अंधी दौड़ में शामिल है। क्योंकि अमेरिका अपने आपको देवता ही कहता आ रहा है लेकिन बहुत कुछ उल्टा भी है। इन सबके उदाहरण अलखनन्दन के नाट्यगीतों में देखिये–

"सूत्रधार : जल जो आजकल
कहीं शुद्ध नहीं मिलता
अग्नि जो भगनियों को
जलाने के काम आती है
यजमान
यानी सास ,ससुर, देवर ननदें
बहुओं की आहुति चढ़ाते हैं
समय के बारे में
भ्रांतियां पैदा करते
आधुनिक चंद्र सूर्य
विश्व पर छाया हाहाकार करता प्रदूषित आकाश
प्राणियों के प्राण हरतीं

गैस भरी हवाएं
अमेरिकी फार्मूले में
बनी खाद से
जहरीली होती धरती
काले पड़ते खेत
इन समस्त रूपों में उद्भासित
जो न्यूयॉर्क निवासी एक राक्षस जी हैं
वह हम सबकी रक्षा करें
क्योंकि हे राक्षस जी
आप ही सुर हैं
और आप ही असुर
खुदा हैं आप ही
आप ही शैतान हैं" नटरंग ,अंक-**73**,स्वांग शकुंतला ,पृ **6**

अफसरशाही की सांठगांठ की पूरी खबर अलखनंदन जी अपने नाट्यगीतों में रखते हैं उनको पता है कि व्यवस्था क्या खेल खेलती है।

"सूत्रधार : जब तक इन सीटों की टोली
मंत्री ,अफसर और हमजोली
खुश ना हों तब तक ओ भोली
चाहे कितनी करे ठिठोली
ग्रांट कहां से आएगी?" वही,पृ**6**

गर्मी से जनता बेहाल है। और बारिश ही समय से नहीं होती है। पानी की चिकल्लस बढ़ने वाली है। जनता तो त्राहिमाम त्राहिमाम कर ही रही है। लेकिन विलासी वर्ग को इसकी कोई फिक्र नहीं। उन्हें सब सुविधाएं बराबर मिलती रहती हैं। उनमें कटौती नहीं होती। लू से मरना है तो मरेंगे तो गरीब लोग ही, जनता। इससे तो निर्धन प्रजा की ही बिजली कटौती खूब होगी। गरीबों को मच्छर खा लेंगे। उनके शरीर में भी अनेक रंग बिरंगे निशान देखने को मिलेंगे ही। कुछ चंद उदाहरणों से बात पुष्ट हो जाएगी–

नटी : आई गर्मी की बहार
अब हम होंगे जार जार
पिछले साल नहीं हुई वर्षा
अब किल्लत होगी पानी की
जनता की गगरी सूखेगी
छलकेगी राजा रानी की
जनता की गगरी सूखेगी
छलके की राजा रानी की
लू से लोग मरेंगे छम -छम
चलेंगे बीयर बार
आई गर्मी की बहार
उखड़े देहों के पैबंद
खुजा-खुजा चटपटी घमौरी
भूल गए कवि लिखना छंद
आई गर्मी की बहार" वही, पृ**6,6**

पाखण्ड, प्रेम लीला और व्यंग्यबाण

अलखनंदन अपने नाट्यगीतों में जनता की भी खबर लेते हैं। उसके काहिलीपन पर भी बखिया से उधेड़ देते हैं। केवल उच्च वर्ग की आलोचना नहीं करते अपने नाट्यगीतों में। वह सब की खबर लेते हैं। उनमें व्यंग है, विनोद है, हास्य है और चुटीला पर भी है। उनके गीत अनुपम बन पड़े हैं। जो दर्शकों में गुदगुदी लगाने में पूर्णतया सक्षम हैं। छोटे-छोटे गीतों और तुकबंदियों के

माध्यम से अलखनंदन स्थितियों- परिस्थितियों को अपने नाटकों में स्पष्ट करते चलते हैं। उनके एक-एक गीत, नाट्यगीत नाटक के कथ्य ,कथानक को ,उसकी गतिशीलता को, नाटक के संघर्ष को आगे बढ़ाने का काम करते हैं। अलखनंदन कवि थे। इसलिए उनको गीत लिखने में आसानी रहती थी। उन्हें शास्त्रीय संगीत का ,लोकगीतों का गहरा ज्ञान था। गहरी समझ थी गहरा बोध था। इसलिए उनके गीत अनोखे और अनुपम बन पड़े हैं। एक गीत का उदाहरण देखिए–

"सूत्रधार : बहुत दिनों का भूखा प्यासा
कल कुछ पैसे झटके थे
पूरी बोतल खुद ही पी ली
एक थे हम बेखटके थे" वही,पृ7

स्वांग शकुंतला नाटक में अलकनंदन ने इसके एक पात्र दुष्यंत के माध्यम से शायरीनुमा और तुकबंदियां करवाई हैं। जिससे पता चलता है की अलखजी के नाट्यगीत हल्के प्रतीत होते हैं। लेकिन यह नाटक भी तो पैरोडी था और लोकनाट्य परंपरा का है। इसलिए इसमें इस तरह की गुंजाइश बनी रहती है। इससे जनता बंधी रहती है। और भागती नहीं है। उनके गीत, उनके नाट्यगीत जनता को ,दर्शकों को बांधे रखते हैं। यह हमें आंसू कविता की ओर इशारा करते हैं। यह गीत आंसू कविता जैसे लगते हैं।

"दुष्यंत : आलू खाना छोड़ दो
पियो मूंग की दाल
जिससे लोच बनी रहे
चलो हिरन की चाल !
जय कामदेव जी की!
मुझे ना भाए गुड़- चीनी
मीठी आपकी बात
मन मेरा तर हो गया
ठंडी हो गई गात
जय कामदेव जी की !
राम झरोखे बैठकर
जग का मुजरा लेय
जो जैसी करनी करें
ताहि तैसो फल देय
दुहरी है काया
घमौरियों की खुजली है
तिस पर दुहना भारी भैंस
अब इतने घाम में उपले बनाएगी
हो जाएगा इसको क्लेस
जय कामदेव जी की" वही,पृ **10,11**

प्रेमजन्य जो पीड़ा है। अलखनंदन के नाट्य गीत उनकी मुखर अभिव्यक्ति देने में पूर्णता सफल हुए हैं। अलख के नाट्य गीतों में आपको चुहलबाजी के स्पष्ट दर्शन हो जाएंगे। उनके नाट्यगीत हास्य, ठहाके लगाते जान पड़ेंगे। गुदगुदी उठे बिना नहीं रह सकती। आप को सस्ती सी शायरी वाला अंदाज इनके यहां देखने को मिल सकता है। ग्रामीण प्रेम के अनुपम प्रेम सौंदर्य की छटा देखिए इन नाट्य गीतों में–

"दुष्यंत : एक अजीब सी
उठापटक से
गुजर रहा हूं मैं
जिसमें कभी शरीर
दाएं जाता है तो मन बाएं
कभी मन बाएं जाता है
तो शरीर दाएं

ऐ मन तू ही बता
जाएं तो कहां जाएं? वही,पृ**12**

" दुष्यंत : जिसकी बहन अंदर
उसका भाई सिकंदर
देखत रह गए लल्लू लाल
ले गओ माल कलंदर" वही ,पृ**13**

(शकुंतला पत्र लिखती है। गीत सुनाई पड़ता है)

"सजन तेरी अँखियां
गड़ गई छतियों में
दिन भर तेरी याद सतावे
नींद ना आए रतियों में
दिल धड़के, तन चटके
मन बन- बन में भटके
सांस गरम तपती सी
लगें खटाखट झटके
बातें ना बने कौनो बतियों में
सजन तेरी अँखियां
गड़ गई छातियों में" वही,पृ**15**

पाखंडी और ढोंगी बाबाओं की खबर भी अलखनंदन अपने नाट्यगीतों में लेते हैं। इन लुटेरों से सावधानी ही अच्छी है। इन से दूरी बनाकर रखना ही अच्छा है। यह लोगों, आम जनता को ठगते हैं। आम जनता को और जनता भी इनके बहकावे में खूब आ जाती है—

" अंतर्यामी : (गाता है ,लोग दोहराते हैं)
बाबा पक्का अंतर्यामी
कौन है सज्जन
कौन कमीना
जानत कौन हरामी
बाबा पक्का अंतर्यामी
चोर कौन मन
मोर कौन है
को है विषयी-कामी
बाबा पक्का अंतर्यामी" वही ,पृ**22**

"अंतर्यामी : प्रभु का भजन करले मनवा
प्रभु रस पी ले रे
कें कें मत कर नाम सुमर ले
कुत्ते पापाचारी
धाम सुमिर ले
राम सुमिर ले
ओ मन व्यभिचारी
प्रभु रस पीले रे" वही,पृ**23**

आखिरकार अलख नंदन यह जानते हैं की जनता की जो दुर्गति होनी है वह होनी ही है। इसलिए संभल कर रहने में ही भलाई है। ऐसा अलख जी अपने अंतिम नाट्य गीत के माध्यम से लोगों को आगाह करते जान पड़ते हैं ।कोई आपको लूट ना ले ,कोई बाधा ना बने आप की संभलने में ही भलाई है। नाटक अभी जरूर खत्म हो रहा है। लेकिन नाट्यगीतों के सुखात्मक संदेशों के साथ—

"सभी कलाकार मंच पर आकर गाते हैं
गीत : खत्म हुआ नाटक अब तो
अपने -अपने घर जाओ
सोते- जगते
चलते-फिरते
धक्के-मुक्के खाओ
सम्हल के कोई जेब ना काटे
चलते-फिरते टांग ना खींचे
देख के कोई मूंछ ना काटे
बचा के कोई लांग ना खींचे
बचे हुए ताहिररों- ब्रिजों को
बढ़ो,बचाओ
खत्म हुआ नाटक अब तो" वही,पृ27

समकालीन कथा साहित्य में आदिवासी विमर्श

कु. भाग्यश्री दादासाहेब चिखलीकर
पीएच.डी शोध छात्रा
शिवाजी विश्वविद्यालय कोल्हापुर
दूरभाष: 8379962817

सारांश:

समकालीन कथा साहित्य में आदिवासी विमर्श एक कमजोर स्थिति में है। उसके कारण बहुत स्पष्ट है। आदिवासी विमर्श करने के लिए आदिवासियों के बारे में जानना बहुत जरुरी है। और आदिवासियों के बारे में जानने के लिए उनके बीच जाना बहुत जरुरी है।

'देहरी की खातिर': इस कहानी में 'मेहरून्निसा परवेज' ने इस कहानी में आदिवासी स्त्रियों का शोषित रूप को ही चित्रित किया है। आदिवासी स्त्रियों की शोषित रूप को ही चित्रित किया है। अपितु उससे एक कदम आगे जाकर उन्होंने आदिवासी स्त्रियों में विरोध करने की क्षमता को भी व्यक्त किया है।

'अपराध' :- यही कहानी 'संजीव' द्वारा लिखित जो की उनकी श्रेष्ठ कहानियों में से एक है, नक्सलवादी आन्दोलन की पृष्ठभूमी पर लिखी गयी है।

'औरत': औरत नामक कहानी के माध्यम से संजीव आदिवासी समाज के साथ-साथ उन शोषनकारी आतताईयों को भी आदिवासी संघर्ष के इतिहास में बताते है। संजीव के लिए विरोध और प्रतिरोध करनेवाली औरत ही दुनिया की सबसे हसीन औरत है।

बीज शब्द- विमर्श, शोषण, अत्याचार, नारी आदिवासी, जनजाति, रूढी-परंपरा

प्रस्तावना:

जनजातीय पंचायतों के सशक्तिकरण के लिए कई कार्य स्वयंसेवी संघठनो को करने होंगे। समाज में पायी जानेवाली कुरीतियों व गुरबाजी को दूर करना होगा तथा आदिवासियों को विश्वास में लेकर सुधार के रास्ते मिल जुलकर तय करने होंगे। स्वयंसेवी संघठनो के कार्यकर्ताओ को अधिकांश समय समाज के मध्य बिताकर विकास में बाधक तत्वों, करणों व उनके निदान पर चर्चा करनी होगी। छोटे स्तर पर नीति निर्माण से लेकर नीति के क्रियान्वयन में आदिवासियों कि सहभागिता को बढाना होगा ताकि विकास की इच्छा समुदाय के ह्दय में कार्यरत संघठनो को आपसी सामंजस्य बढ़ाना होगा। और अपने संसाधनो तथा ज्ञान का आदान-प्रदान करके हुए मिलकर क्षेत्र के विकास के लिए जुटना होगा।

आदिवासी समाज की अपनी एक अलग संस्कृति एवं पहचान रही है। लेकिन हमने उनका उपयोग केवल कला के रूप में ही अधिक किया है, बल्कि पहचान के रूप में कम इसलिए आज बाजारीकरण के दौर में आदिवासियों के जीवन और अस्मिता को बचाना आवश्यक हो गया है। मुलत : आदिवासी जंगल के दावेदार होकर भी उन्हें जंगलो से खदेडने का प्रयास किया जा रहा है। विकास के नाम पर शासन एवं उद्योगपंतियों द्वारा भूमि अधिग्रहण करके उनकी जमीनें एवं कोयला खदानोंपूर जबरदस्ती से अधिकार जमाया जा रहा है। आज हम 21 वी सदी में पहुँचकर भी हमारे देश का आदिवासी समाज अपने विकास कोसों दूर है। इसलिए आज आदिवासियों के सामने विस्थापन कि भयंकर समस्या उत्पन्न हो रही है सरकार की उदासीन नीतियों के कारण आदिवासियों की स्थिति बिकट बनी हुई है। विकास के नाम पर आदिवासी पलायन और विस्थापन आदि समस्याओं पर आज विचार विमर्श होना आवश्यक है।

आदिवासियों कि समस्याएँ बहुत कठिन है। और उनके रिति-रिवाज, रहन-सहन, सभ्यता, आचार-विचार, संस्कृति, धर्म ललित कला आदि में सुधार कि जरुरत है। सभ्य समाज से सम्पर्क में आने के कारण उनके सामने अनेक समस्याएँ खड़ी हो गई है। बाहरी संस्कृति के सम्पर्क में आने के कारण वे अपनी संस्कृति का त्याग करते जा रहे हैं। विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों तथा आरक्षण के बाद भी आदिवासी समाज का एक बड़ा भाग सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से पिछडा ही रह गया। अब ऐसे प्रयास किए जाने चाहिये जो जनसामान्य तक पहुँच सके, जिससे इनका विकास हो सके।

1) मेहरुन्निसा परवेज- ने आदिवासी स्त्रियों के शोषित रूप को ही चित्रित नहीं किया है अपितु उससे एक कदम आगे जाकर उन्होने आदिवासी स्त्रियों में विरोध करने की क्षमता को भी व्यक्त किया है। आदिवासी समाज की स्त्रियों अपने ऊपर हो रहे शोषण अत्याचार को अपनी नियति नही समझ कर नहीं बैठ जाती है देहरी की खातिर में जब पापा को घर से निकाल देते हैं। तब गाँव की

एक काकी उसे अपने घर आश्रय देती है। चूँकि वह माँ बनने वाली थी। काका-काकी उसे बहुत स्नेह और दुलार से अपने पास रखते हैं। बच्चे के जन्म के बाद काकी हो उसके और बच्चे का ख्याल रखती हैं। लेकिन काका कि नीयत में खोट आ जाता है। वह बेटी जैसी लडकी को अपने हवस का शिकार बनाना चाहता है। काकी सही समय पर पर पहुँचकर उसे बचा लेती हैं। एक लडकी की अस्मिता को बचाये रखने के काकी टॅगिया से अपने ही पति खून कर देती है। सुकी बयडी में थोरा का पति जब दुसरी औरत को घर परलाता है लेकिन थोरा अपने पत्नी होने के अधिकार को छोडने के लिए तैयार नहीं है। वह अपनी पति का विरोध करती है.... जा, चले जा कोठरी में खाली नी करूँ। म्हारे बापू ने ब्याह कराया हैं फेरे लेकर लाया है। ब्याहवाली हुँ। म्हारी इज्जत है। इसप्रकार आदिवासी स्त्रियाँ भी अपनी अस्मिता और अधिकारों के लिए आवाज उठा रही है।

2) संजीव द्वारा लिखित 'अपराध' कहानी जो कि उनकी श्रेष्ठ कहानियों में से एक है, नक्सलवादी आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी है।संजीव के प्रिय सूर्यनारायण शर्मा को नक्सलवादी आन्दोलन में शामिल होने के 'अपराध' में पुलिस ने हजारीबाग जेल में बंदूक की नालों से कोंच-कोंच कर मार डाला था। इसी के चलते वे 'अपराध' कहानी लिख पाते है। संजीव ने इस कहानी में प्रशासन पुलिस, न्यायपालिका, राजनेताओं सब पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया है। अपराध कहानी के नायकसचिन (बुलबुल) को जब सजा दि जाती है तो उससे बचाव के लिए बोलने को कहा जाता है तब वह कहता है 'मुझे इस पुजीवादी, प्रतिक्रियावादी न्यायव्यवस्था में विश्वास नहीं है। आम जनता भी जिसे न्याय का मंदिर कहती है वह लुटेरे-पंगे और जुता-चोरो से भरा पडा है। ये लाल थाने, लाल जेलखाने और लाल कचाहरियाँ इनपर कितने बेकसुरों का खून पुता हैं, वकीलों और जजों का काला गाऊन न जाने कितने खून के धब्बों को छुपाए हुए हैं। परिवर्तन के महान रास्ते में एक मुकाम भी आएगा। जिस दिन इन्हें अपना चरित्र बदलना होगा वरना इनकी रोबिली बुलन्दियाँ धुल- चाहती नजर आएगी। कहानी में बताया हैं कि सत्ता और व्यवस्था समाज के तमाम विरोधियों व अपराधियों को संघर्ष और विरोध के माध्यम से हराया जा सकता है। भले ही उसके लिए से समांतर सत्ता और व्यवस्था की स्थापना हि क्यो नहीं करनी पडे। संजीव मानते हैं कि आदिवासी किसान, मजदूर व नारी द्वारा सामंतवाद, पुँजीवादी के फैलते वर्चस्व का हिंसात्मक विद्रोह और संघर्ष ही नक्सलवादी आन्दोलन है।

उदारीकरण, भूमंडलीकरण और बाजारीकरण के दौर में आदिवासी पर हो रहे अत्याचारों का वे विरोध कर रहे हैं संघठीत होकर लेकिन पुलिस के माध्यम से शोषणकारी व्यवस्था उन्हें कुचलने पर आमदा है। आदिवासी समाज का शोषण और अत्याचार के खिलाफ संघर्ष और विद्रोह कि परम्परा का लम्बा इतिहास रहा है। पहले आर्यो के खिलाफ संघर्ष किया है तो फिर मुगलों के साथ फिर बाद में अंग्रेजों, सामंतो, जमीनदारों के साथ संघर्ष किया वर्तमान दौर में ग्लोबल गाँव के देवताओं हाहा, बिडला, अम्बानी पास्को वेदान्ता आदि के साथ संघर्ष कर रहे हैं।

3) आदिवासी समाज के इसी संघर्ष के इतिहास को याद दिलाती है। दुनिया को सबसे हसीन, **'औरत' नामक कहानी।** इस कहानी के माध्यम से संजीव आदिवासी समाज के साथ-साथ उन शोषणकारी आंतताईयों को भी आदिवासी संघर्ष के इतिहास में बताते हैं। संजीव के लिए विरोध और प्रतिरोध करनेवाली औरत ही दुनिया की सबसे हसीन औरत है। प्रेमचन्द्र ने दुनिया का सबसे अनमोल रत्न खून के उस आखिरी कतरे को माना या जो देश की हिफाजत के लिए गिरता है संजीव के लिए प्रतिरोध और संघर्ष करनेवाली औरत ही दुनिया की सबसे हसीन औरत है।

निष्कर्ष:

आदिवासी लेखन विविधताओं से भरा हुआ है। मौखिक साहित्य कि समृध्द परंपरा का लाभ आदिवासी रचनाकारों को मिला है। आदिवासी साहित्य कि उस तरह कोई केंद्रीय विधा नहीं है। जिस तरह स्त्री साहित्य और दलित साहित्य कि आत्मकथात्मक लेखन है। कविता, कहानी उपन्यास, नाटक सभी प्रमुख विधाओं में आदिवासी जीवन समाज की प्रस्तुति की है।

संदर्भ सूची :

1. मेहरून्निसा परवेज 'मेरी बस्तर की कहानियाँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
2. वंदना टेटे- आदिवासी साहित्य, परम्परा और प्रयोजन , प्रथम संस्करण
3. संजीव की कथा यात्रा –दुसरा पडाव वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली.
4. हिंदी साहित्य और साहित्यिक विमर्श : डॉ सुरेया शेख :

सोशल मीडिया और पर्यावरणीय चिंता

अनिल विठ्ठल मकर,
शोधछात्र, हिंदी विभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर।
दूरभाष- 9673417920
ई-मेल: anilmakar70@gmail.com

शोधालेख का सार

वर्तमान समय में पर्यावरण विषय चिंता एवं चिंतन का बन गया है। इसलिए तो वह साहित्य की विविध विधाओं के केंद्र में और सोशल मीडिया में भी छाया हुआ दिखाई देता है। आज डिजिटल मीडिया के युग में वॉट्स ऐप, यूट्यूब, फेसबुक, ट्यूटर, इन्स्टाग्राम, ब्लॉग जैसे विविध प्लेटफॉर्म मनुष्य जीवन का अभिन्न अंग बन गए हैं। इसमें रोजमर्रा की विविध घटनाओं के साथ विशेष अवसरों पर पर्यावरण संबंधी भी चर्चा होती रहती है। इसमें पर्यावरण समस्या संबंधी चिंता व्यक्त की हुई दिखाई देती है। आज डिजिटल के युग में छोटे-छोटे संदेश लोगों को लुभाते हैं। इसलिए पर्यावरण जागृति के लिए ऐसे संदेशों पर ही जोर दिया दिखाई देता है।

बीज शब्द : सोशल मीडिया और पर्यावरण, पर्यावरणीय चिंता, प्रदूषण।

आज का युग इंटरनेट का है। इंटरनेट के इस युग में मनुष्य को सोशल मीडिया के रूप में अभिव्यक्ति का सबसे बड़ा साधन मिल गया है। मनुष्य करीब-करीब होकर भी भलेही आपस में बातचीत न करें लेकिन सोशल मीडिया पर जरूर व्यक्त होता है। वॉट्स ऐप, टेलीग्राम, यूट्यूब, फेसबुक, ट्यूटर, इन्स्टाग्राम, ब्लॉग जैसे विविध वेब आधारित प्लेटफॉर्मो पर घरेलु लेकर राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय न जाने कौन-कौन से विषयों पर चर्चा होती रहती है। इसके लिए कोई भी विषय अछूता नहीं हैं। सोशल मीडिया विशेषज्ञ डॉ. जयसिंह बी. झाला इस संदर्भ में लिखते हैं-"सूचना एवं प्रौद्योगिकी के इस युग में पृथ्वी का दायरा सिमटता-सा नजर आ रहा है। आज विश्व के किसी भी कोने में घटित घटना हम घर में बैठे-बैठे ही देख रहे हैं। राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय मुद्दों पर हमारे विचारों का विनिमय इस तरह हो रहा है जैसे हम परिवार के लोगों से करते हैं।"[1] इसमें पर्यावरण विषय भी है। इस डिजिटल मीडिया पर पर्यावरण विषय पर भलेही रोज-रोज चर्चा न होती हो लेकिन 'पर्यावरण दिवस', 'जल दिवस' जैसे विशेष अवसरों पर इस विषय पर जरूर चर्चा होती है। इसमें वर्तमान समय में बढ़ते पर्यावरण संबंधी समस्याओं पर चिंता जताई हुई दिखाई देती है। फिलहाल इंटरनेट के विविध वेबसाइटों पर पर्यावरण संबंधी विविध लेख, किताबें तथा अन्य ढेर सारी जानकारी देखने को मिलती है लेकिन रोजमर्रा के उपयोग वॉट्स ऐप, ट्यूटर, फेसबुक, ब्लॉग, इन्स्टाग्राम जैसे विविध सोशल मीडिया प्लेटफॉर्मो पर साझा (शेअर) की जानकारी ज्यादा देखी जाती है। विविध डिजिटल प्लेटफॉर्मो पर साझा होनेवाला यह साहित्य ही है लेकिन वह अलग प्रकार का है। संक्षिप्तता यह उसकी महत्त्वपूर्ण विशेषता है। जो भी संदेश हो इस डिजिटल माध्यमों के माध्यम से कम शब्दों में प्रभावी रूप से भेजा जाता है। इसलिए तो आज 'सोशल मीडिया का साहित्य' अलग साहित्य प्रकार सामने आ रहा है। इसमें सभी के लिए अभिव्यक्ति के नए द्वार खुल गए हैं। साथही इसे प्रकाशित करने के लिए किसी प्रकाशक की जरूरत नहीं पड़ती। इसलिए आज मनुष्य इन डिजिटल प्लेटफॉर्मो के माध्यम से अबाध रूप में विचार व्यक्त कर सकता है, इसमें पर्यावरण जैसा गहन विषय भी है।

आज सोशल मीडिया के युग में लोगों को बहुत बड़े-बड़े संदेश या जानकारी पढ़ने की आदत कम हो गई है। इसलिए तो सोशल मीडिया में विशेष अवसरों पर पर्यावरण संबंधी संदेशों की धूम दिखाई देती है। ये संदेश पढ़े भी जाते हैं और एक-दूसरे को बड़े पैमाने पर साझा भी किए जाते हैं। पर्यावरणप्रेमी तो विविध माध्यमों से पर्यावरणसंबंधी चिंता जताते ही है लेकिन आम आदमी भी आज जागरूक होता दिखाई देता है। पर्यावरण हानी के दुष्परिणाम अब उसे भुगतने पड़ रहे हैं। इसलिए तो वह खुद न सुधरे लेकिन दूसरों को उपदेश देने के लिए क्यों न हो डिजिटल मीडिया के माध्यम से व्यक्त होता दिखाई देता है। फिलहाल जल, वायू, जमीन प्रदूषण बडे पैमाने हो रहा है। इसलिए पर्यावरण विशेषज्ञ भी इस संदर्भ में चिंता जताते हुए दिखाई देते हैं। बढते वायू प्रदूषण के संदर्भ में अभिजीत घोरपडे लिखते हैं- "वायूंचे वातावरणातील प्रमाण वाढण्यास कारखाने, औष्णिक वीजकेंद्रे, वाहने, जंगलतोड, जमिनीचा असंतुलित पद्धतीने वापर, शेतात रासायनिक खतांचा अधिक वापर ही कारणे आहेत. अर्थातच ही माणसाचीच 'देण' आहे. या वायूंचे प्रमाण वाढेल तशी जागतिक तापमान वाढ होते."[2] (वायु का वातावरण में प्रमाण बढने के लिए कारखाने, औष्णिक विद्युत केंद्र, वाहन, जंगल कटाई, जमीन का असंतुलित रूप में उपयोग, खेत में रासायनिक खाद का अधिक मात्रा में उपयोग आदि कारण हैं। असल में यह मनुष्य की ही देन है। जैसे-जैसे इन वायुओं का प्रमाण बढता है वैसे वैश्विक तापमान वृद्धि होती है।) संदर्भ में चिंता जताई दिखाई देती है। यह चिंता सोशल मीडिया के छोटे-छोटे संदेश, कविताओं छोटी'छोटी पंक्तियाँ, शेरो-

शायरी के माध्यम से व्यक्त होती दिखाई देती है। यहीं चुनिंदा शब्दों की चुनिंदा पंक्तियाँ पर्यावरण संबंधी समस्याओं पर निशाना साधने तथा लोगों को सचेत बनाने में सहायक बन जाती है।

पर्यावरण संबंधी समस्या को लेकर न सरकार गंभीर है न उद्यमी। ये उद्यमी कल-कारखानों के माध्यम से बड़े पैमाने पर पर्यावरण का दोहन करते हैं। सरकार को भी इन उद्यमियों के द्वारा टैक्स आदि मिलता है, इसलिए वह चूप बैठती है। इसलिए तो सोशल मीडिया के एक संदेश चिंता व्यक्त करते हुए कहा गया है-

"सरकार सत्ता के नशे में चूर है
जनता दूषित जल पीने को मजबूर है।"

इस प्रकार प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से प्रदूषण रोकने के लिए सरकार नाकाम ठहरने के कारण उसपर निशाना साधने का प्रयास किया है। अनेक बीमारियों का कारण अशुद्ध हवा और पानी ही है। करीब 70 प्रतिशत से ज्यादा बीमारियाँ दूषित जल के कारण फैलती है लेकिन इसे रोकने के लिए कोई कदम नहीं उठाता। इस प्रदूषण के लिए जिम्मेदार मनुष्य ही है। इसलिए तो शुद्ध जल के संदर्भ में लोगों को सचेत करते हुए एक सोशल मीडिया संदेश में लिखा है-

"उतनाही सुंदर कल होगा
जितना स्वच्छ जल होगा"

आज जल प्रदूषण काफी बढ़ गया है। पहले आदमी नदी, कुएँ, नहर आदि कहीं का भी पानी निःशंक रूप में पीता था। क्योंकि वह पानी शुद्ध होता था। वह पीने व्यक्ति को कोई तकलीफ नहीं होती थी। जैसे-जैसे प्रदूषण बढ़ने लगा वैसे-वैसे बोथलों में शुद्ध पानी बिकना शुरू हुआ। शुरू में यह लोगों को अचरज लगता था लेकिन आज हर गाँव में जल शुद्धिकरण प्रकल्प शुरू हो गए हैं। धरती पर ऐसा ही प्रदूषण बढ़ता रहा तो शुद्ध हवा के लिए भी ऐसे प्रकल्प शुरू ना करना पड़े इसप्रकार की चिंता भी सोशल मीडिया संदेशों के माध्यम से जताई दिखाई देती है। 'जल है तो कल है' यह सरकारी विज्ञापन भी पानी के संदर्भ में बहुत कुछ बताती है।

पर्यावरण संबंधी समस्या के लिए कोई अकेला व्यक्ति जिम्मेदार नहीं। इसके लिए थोड़ी-बहुत मात्रा में ही क्यों न हो सब जिम्मेदार हैं। इसी के परिणाम सभी को भुगतने पड़ रहे हैं। इस बात की ओर यह सोशल मीडिया संदेश निर्देश करता है-

"बीमारी रूपी मुसीबत
हर किसी के हिस्से में आया है
चाहे थोड़ा या ज्यादा सबने प्रदूषण फैलाया है"

इस प्रकार प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से हरएक को अपना-अपना आइना दिखाने का प्रयास किया है। बढ़ता शहरीकरण भी पर्यावरण को खतरा निर्माण करने के लिए जिम्मेदार है। इस संदर्भ में भी जागरूक लोक सोशल मीडिया संदेश के माध्यम से आवाज उठाते हुए दिखाई देते हैं। आज हरएक व्यक्ति शहर की ओर भाग रहा है। इससे पेड़ों को उजाड़ सीमेंट का जंगल बनाया जा रहा है। आज का मनुष्य शहर भी चाहता है और पर्यावरणपूरक अच्छी जिंदगी भी चाहता है। मनुष्य की दोगली वृत्ति मयंक तिवारी ने अपने वेब पर प्रकाशित कविता में लिखा है-

"बड़ी मासूम-सी है ये जिंदगी मेरी
शहर में रहूँ और गाँव भी चाहिए
बस बैठा रहूँ ऊँची इमारतों में मैं
पेडों को काटूँ और छाँव भी चाहिए।"

इस प्रकार उन्होंने मनुष्य किसप्रकार स्वार्थी है स्पष्ट किया है। सोशल मीडिया संदेशों के माध्यम से प्लास्टिक से पर्यावरण की होनेवाली हानी पर भी निर्देश किया है। प्लास्टिक के चलते मनुष्य, पशु तथा पृथ्वी पर स्थित जीवों विपरित परिणाम हो रहा है। उन्हें अनेक रोगों का सामना करना पड़ता है। प्लास्टिक आसानी से विघटन नहीं होता। आज लोग कोई भी चीज लाने के लिए प्लास्टिक की माँग करते हैं। ज्यादातर चीजें प्लास्टिक में ही पैक की जाती है। इसे पर्यावरण की बहुत बड़ी हानी होती है। इस ओर से सोशल मीडिया संदेशों के माध्यम से निर्देश किया है। सोशल मीडिया संदेश के माध्यम से प्लास्टिक मुक्ति संबंधी जनजागृति करते हुए लिखा है-

"प्लास्टिक थैली पर करो बहिष्कार
धरती पर करो यह उपकार
कपडे की बैग है इसका विकल्प
प्लास्टिक छोड़ने का करो संकल्प"

इस प्रकार लोगों की प्लास्टिक पर बहिष्कार करने की अपील की गई है। यह प्लास्टिक पानी के साथ समुद्र के तल में जाकर बैठ जाता है। इससे जलचरों को धोका पहुँच रहा है। प्लास्टिक के चलते उपजाऊ जमीन बंजर होती जा रही है। इससे मुक्ति पाने अपील करते हुए एक संदेश में लिखा है-

"प्लास्टिक को धरती से दूर भगायें,
धरती को बंजर होने से बचाये"

इस प्रकार प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से प्लास्टिक मुक्ति संदेश दिया है। साथही कुछ संदेशों के माध्यम से स्वास्थ्य संबंधी खतरों से भी अवगत कराया है। प्लास्टिक को शान न समझकर उसका नामो निशान मिटाने की भी अपील छोटे-छोटे सोशल मीडिया संदेशों द्वारा की हुई दिखाई देती है। इसलिए तो कहा है-

"पर्यावरण को बचाना है,
प्लास्टिक को जड़ से मिटाना है"

प्रदूषण कर मनुष्य एक प्रकार से धरती पर अत्याचार कर रहा है। यह अत्याचार अब धरती भी बर्दाश्त नहीं कर पा रही है। इसलिए एक सोशल मीडिया संदेश के माध्यम से धरती की पुकार सामने आती है-

"बंद करो यह अत्याचार
धरती माँ की यही पुकार"

धरती पर प्रदूषण तथा विविध माध्यमों से अत्याचार के कारण ही मौसम चक्र बदल रहा है। कभी बाढ़ तो कभी सूखा, भूचाल आदि चलते मनुष्य का काफी मात्रा में नुकसान हो रहा है। अगर मनुष्य को अपने भविष्य को सुरक्षित करना हो तो पहले पर्यावरण को बचाना होगा। आज के स्वार्थी मनुष्य को न अपनी खुद चिंता है, न अगली पीढ़ी की न पशु-पक्षियों की। इस ओर से कुछ सोशल मीडिया संदेशों के माध्यम से निर्देश किया है। सोशल मीडिया पर प्रसिद्ध एक कविता में पर्यावरण संबंधी चिंता जताते हुए कहा है-

"ये कटते वृक्ष
ये सूखती नदियाँ
ये सिमटते पर्वत
एक रोज
यूंही खत्म हो जाएंगे"

इस प्रकार बड़े पैमाने पेड़ कटाई, कल-कारखानों से बढ़ता हवा और जल प्रदूषण से काफी नुकसान हो रहा है। दूसरी ओर रासायनिक खद के माध्यम से जमीन का भी बड़े पैमाने पर नुकसान हो रहा है। सोशल मीडिया की एक काव्य पंक्ति इस ओर निर्देश करते हुए लिखा है-

"रासायनिक खाद का कम करें छिडकाव
भूमि को प्रदूषित होने से बचाव"

इसप्रकार प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से भूमि को प्रदूषित होने की अपील की गई है। सोशल मीडिया की एक काव्य में प्रकृति की उदारता और मनुष्य की निष्ठुरता की ओर भी निर्देश किया है-

"मानव तूने अपनी जरूरतों के लिए,
वातावरण को कितना दूषित किया है,
फिर भी पर्यावरण ने तुझे सब कुछ दिया है"

इस प्रकार सोशल मीडिया के विविध संदेशों के माध्यम से वर्तमान पर्यावरण की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए पर्यावरण संबंधी जागृत करने का प्रयास किया है। पर्यावरण बचाओ के संदर्भ में कई स्लोगन सोशल मीडिया पर साझा होते दिखाई देते हैं। इनमें 'आओ सभी करें पर्यावरण की रक्षा, तभी होगी इस सारी दुनिया की रक्षा', 'होते हैं हरे भरे पेड़ जहाँ, होता है धरती का स्वर्ग वहाँ', 'कभी भी पेड़ों को करों मत नष्ट, नहीं तो सांस लेने में होगा कष्ट', 'पेड़ पौधे है हम सब लोगों की जान, इसलिए करों इनका ज्यादा सम्मान' जैसे अनेक संदेशों के माध्यम से प्रकृति को बचाने अपील सोशल मीडिया पर की हुई दिखाई देती है।

इस प्रकार आज लोगों में सबसे ज्यादा प्रचलित नव्य जनसंचार माध्यम अर्थात् सोशल मीडिया पर भी पर्यावरण संबंधी चेतना जगी हुई दिखाई देती है।

निष्कर्ष :

अंत में निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में पर्यावरण यह विषय चिंता और चिंतन का बन गया है। इसलिए यह विषय साहित्य की विविध विधाओं के केंद्र में आ गया है और इंटरनेट तथा सोशल मीडिया पर भी छाया हुआ दिखाई देता है। वॉट्स ऐप, फेसबुक, ट्यूटर, इन्स्टाग्राम, ब्लॉग तथा वेब के विविध प्लैटफॉर्मो पर भी पर्यावरण संबंधी चिंता व्यक्त की हुई दिखाई देती है। साथ ही इस धरती को पौधारण कर तथा प्रदूषण कम कर किस प्रकार बचा सकते हैं इस ओर भी निर्देश किया है।

संदर्भ :

1. डॉ. जयसिंह बी. झाला, सोशल मीडिया एवं समाज, रावत प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2014, पृ.127
2. अभिजीत घोरपडे, ग्लोबल वॉर्मिंग, राजहंस प्रकाशन प्रा. लि., पुणे, सं. 2010, पृ. 45
3. https://www.khayalrakhe.com/2018/09/environment-poem-hindi.html
4. https://thesimplehelp.com/poem-on-environment-in-hindi/
5. https://www.thinkdear.com/environment-quotes-in-hindi/
6. https://jantahit.in/world-environment-day-slogan-in-hindi.html
7. https://www.wideangleoflife.com/paryavaran-sanrakshan-ke-kathan-conservation-quotes-in-hindi/
8. https://www.fbstatusquotes.com/environment-quotes-in-hindi/

ग्लोबल गांव के देवता' उपन्यास में आदिवासी समुदाय की समस्याएँ

प्रा. अजय महेंद्र कांबले
कमला कॉलेज, कोल्हापुर
मो. नं. 7038083055
ईमेल- ak6424515@gmail.com

सार:

हर राष्ट्र की अपनी अलग पहचान, संस्कृति और भाषा होती है। हम भी इसमें अपवाद नहीं है। भारत में सबसे अधिक भाषाएं एवं बोलियाँ बोली जाती है। यहाँ पर विभिन्न धर्मों का निर्माण हुआ है। जैसे सनातन धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, सिख धर्म आदि धर्मों के जनक के रूप में भारत को जाना जाता है। लेकिन वर्तमान समय में वैश्वीकरण के कारण आधुनिक सभ्यता को बढ़ावा मिलता जा रहा है और हमारी संस्कृति धीरे धीरे लुप्त होती नजर आ रही है। हमारी संस्कृति को जीवित रखने का कार्य गावों में अभी तक चल रहा है। प्रस्तुत उपन्यास में वैश्वीकरण के बढ़ते प्रभाव के कारण गांवों और आदिवासी समाज का विस्तृत विश्लेषण किया है।

बीज शब्द: आदिवासी, असुर समुदाय, शिक्षा, शासन।

प्रस्तावना :

भारत एक कृषिप्रधान देश है। जहाँ ७० प्रतिशत लोग कृषि व्यवसाय के साथ जुड़े है। इसीलिए ग्रामीण जीवन की आवश्यकता बढ़ जाती है। वर्तमान समय में भी हमे हमारी संस्कृति को देखना है, तो वह ग्रामीण क्षेत्रों में ही मिल सकती है। इसी को ध्यान में रखकर हिंदी साहित्य में भी ग्रामीण जीवन को केंद्र में रखकर साहित्य की शुरुआत हुई । हिंदी साहित्य में इसकी शुरुआत प्रेमचंद युगीन उपन्यासों से शुरू हुई। प्रेमचंद युग में प्रेमचंद के अतिरिक्त जयशंकर प्रसाद, सियाशरण गुप्त, शिवपूजन सहाय, वृंदावनलाल वर्मा आदि लेखकों ने अपने साहित्य के केंद्र में ग्रामीण परिवेश को रखकर साहित्य का सृजन किया।

किंतु "1936 में प्रेमचंद के निधन के बाद हिंदी उपन्यास आश्चर्यजनक रूप से ग्राम विमुख हो गया था। यह स्थिति तब तक बनी रही जब तक नागार्जुन ने 'रतिनाथ की चाची' द्वारा इस गतिरोध को नहीं तोड़ा।"[1] पूंजीवाद और सरकार के के कारण ही असुर गावों में किस तरह का बदलाव होता है। उसी को केंद्र में रखकर यह उपन्यास लिखा गया है। इसमें आदिवासी समुदाय की सामाजिक, सांस्कृतिक अंधविश्वास और वैश्वीकरण के कारण आदिवास समुदाय को कौन कौनसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है उसे चित्रित किया गया है।

आदिवासी समुदाय यहाँ का प्राचीनतम और मूल निवासी है। यह उपन्यास भी आदिवासी समुदाय के असुरों के गाव के ऊपर लिखा गया है। इस उपन्यास के केंद्र में भौरापाट और उसके पास के ही कन्दपाट आंम्बटोली असुर ग्राम है। रामचरण दुबे जी ने आदिवासी समुदाय की कुछ विशेषताएं कही है। "सामाजिक संरचना की मुख्य इकाईयां, जाती - संप्रदाय अथवा धार्मिक संप्रदाय और परिवार तथा नातेदारी समूह अकेले अलग - अलग रहकर काम नहीं करती। सहयोग के साथ साथ ग्राम संघर्ष, समाधान और सामाजिक गुटबंदी उसके अपने परंपरागत तरीके है।"[2] यह सारी विशेषताएं इस उपन्यास में हमे दृष्टिगत होती है। उपन्यास के केंद्र में असुर समुदाय को चित्रित किया गया है। असुर नाम सुनते ही हमारे सामने पहले से सुने आ रही कुछ किवदंतियां सामने आती है। जैसे की उपन्यास में भी उसे प्रस्तुत किया है। एक शिक्षक होने के बावजूद भी उसके मन में असुरों के बारे में अलग धारणा बनी हुई ही है। "खूब लंबे चौड़े, काले - कुलटे भयानक दांत - वात निकले हुए, माथे पर सिंग -विंग लगे हुए लोग होंगे।"[3] लेकिन जब सिर्फ कहावतें सुनकर अपना मत बना लेना और प्रत्यक्ष रूप से देखना उसमे अंतर होता है। यही इसमें दर्शाया गया है। असुर समुदाय भी हम जैसा ही होता है। पर मुख्य धारा से वो समुदाय दूर है। उन्हे मुख्य धारा में लाने के लिए कही न कही हम और शासन भी जिम्मेदार है। सरकार की ओर से उनके लिए अनेक योजनाएं तो घोषित की जाती है, लेकिन आदिवासी समुदाय उससे वंचित ही रहता है। वो योजनाएं उनके पास तक पहुंचती है या नहीं इसकी शाहनीशा नहीं की जाती, इसीलिए शायद आज असुर समुदाय हमसे पिछड़ा हुआ समुदाय रहा है। इसीलिए आदिवासी समुदाय को अनेक समस्याओं का प्रत्यक्ष रूप से सामना करना पड़ता है, उनमें से कुछ समस्या रणेंद्र जी के इस उपन्यास में भी दिखाई देते हैं।

अंधश्रद्धा की समस्याएँ:

आदिवासी समुदाय धार्मिक संप्रदाय या धार्मिक मूल्यों को बहुत ज्यादा महत्व देते हैं, उनके संस्कृति के प्रति वह हमेशा सजग रहते हैं। इसीलिए अनेक प्रचलित कुछ बातें अंधविश्वास के रूप में उनमें मानी जाती हैं। जैसे कि रणेंद्र जी ने इस उपन्यास के माध्यम से भी इसे चित्रित किया हुआ है। "दरसल अभी कुछ लोगों के मन में यह बात बैठी हुई है कि धान को आदमी के खून में सानकर बिछड़ा डालने से फसल बहुत अच्छी होती है।"[4] आदिवासी समुदाय में यह भी मान्यता प्रचलित है, कि देवता या देवी को प्रसन्न करने हेतु नरबलि की आवश्यकता होती है। इसी तरह की अनेक अंधश्रद्धाएँ असुर समुदाय में भी देखने को मिलती है।

भुखमरी की समस्याएँ:

आदिवासी समुदाय का घर जंगल माना जाता है। असुर समुदाय के पास इतनी जमीन भी नहीं है कि वे साल भर खाने के लिए कोई धान उगा सके। और जिनके पास थोड़ी बहुत जमीन थी वह लोग बरसात के ऊपर ही निर्भर रहते थे। "आदिवासी गरीब है, उनकी अर्थव्यवस्था पिछड़ी हुई है, उनकी उत्पादकता कम है क्योंकि उनकी जमीन कम है। उनकी जमीन बहुत उपजाऊ नहीं है, उनके पास सिंचाई के साधन तथा उत्पादन के साधनों का अभाव है। लेकिन यह सही नहीं है कि उनकी संस्कृति घटिया है, इसके उल्टे सच बात तो यह है कि आदिवासियों की संस्कृति, मूल्य तथा बहुत ही सामाजिक परंपराएं तथाकथित सभ्य बाहरी लोगों की संस्कृति मूल्य और सामाजिक परंपराओं से अधिक श्रेष्ठ और मानवीय है।"[5] भूख की समस्याओं के कारण असूर समुदाय के लोग जिनका मूल स्थान जंगल है, वह आज जंगल को छोड़कर आसाम या भूटान चले जाते हैं। ऐसा चित्र स्पष्ट रूप से इस उपन्यास में चित्रित किया गया है।

बीमारी की समस्याएँ:

आज वर्तमान समय में देश आधुनिकता की ओर बढ़ता हुआ दिखाई दे रहा है। लेकिन जो आदिवासी समाज है वह आज भी पिछड़ा हुआ नजर आता है। आदिवासी समुदाय का रहने का मूल स्थान जंगल है, लेकिन वर्तमान समय में शासन विकास के नाम पर उन जंगलों में से कोयला, बॉक्साइट निकाल रहे हैं। अनेक बड़े-बड़े कंपनियों को शासन की ओर से इन संसाधनों को निकालने का कॉन्ट्रैक्ट दिया जा रहा है लेकिन जो भी कंपनियां वहाँ से बॉक्साइट और कोयला तो निकाल रही है, लेकिन उन्हें निकालने के बाद जो गड्ढे बने हैं उन्हें भरने में ना कंपनी आगे आती है ना ही शासन। उन गड्ढों में बारिश का पानी भर जाने से वहां पर डेंगू, मलेरिया ऐसी बहुत सारी बीमारियों का फैलाव होता है। "हमारे होश में चार दर्जन से ज्यादा नई उम्र की लड़की माता बुखार सेरेब्रल से मर गए बूढ़े गुजर की तो उम्र गुजर गई थी तो गिनती ही नहीं हमारे सुख से इनको क्या उनको तो अपने मुनाफे से मतलब।"[6] इन सारी बीमारियों से असुर समुदाय की संख्या कम हो रही है ऐसी धारणा समुदाय के लोगों में बनी हुई है सरकार को हमारे समुदाय को नष्ट करना चाहता है। इसीलिए सरकार की ओर से कोई ठोस निर्णय नहीं लिए जा रहे हैं ऐसा उन्हें लगता है। इन सारी बीमारियों की मुल में वह गड्ढे हैं, पर उन्हें भरने में ना सरकार आगे आती है न हीं वह कंपनियां।

शैक्षिक समस्याएँ:

वर्तमान समय में शिक्षण को बहुत ज्यादा महत्व है लेकिन आज भी आदिवासी समुदाय शिक्षण से वंचित रहा हुआ हमें दिखाई देता है। आदिवासी समुदाय तक शिक्षा का प्रचार और प्रसार मोटे तौर पर ना होने के कारण लड़कों और लड़कियों में शिक्षा के प्रति उदासीनता ही नजर आती है। पर ऐसी बात नहीं है कि उनमें पढ़ने की काबिलियत नहीं है। रणेंद्र जी ने इस उपन्यास के माध्यम से असुर समुदाय के लड़के और लड़कियों को शिक्षा में क्यों आगे न बढ़ने के कारणों को चित्रित किया है। सरकार की माध्यम से आदिवासी समुदाय के लिए बहुत जगह पर स्कूल तो खोले गए हैं, लेकिन उनमें आदिवासी समुदाय के लड़कों का प्रवेश बहुत कम मात्रा में ही दिखाई देता है। "भौरापाट पाठ स्कूल आदिवासियों बालिकाओं के लिए खोला गया था किंतु उनमें पढ़ने वाली असुर बिरजिया बच्चियों की संख्या 10% से ज्यादा नहीं है। ज्यादातर बच्चियां हेडमिस्ट्रेस और टीचर्स की गांव की है और उनकी ही जाति के 'उरांव खड़िया खेरवार' परिवार की थी।"[7] जो भी स्कूल आदिवासी समुदाय के लिए बनवाए गए हैं उनमें वह सुविधा नहीं होती जो अन्य समुदाय के स्कूल में होती हैं। उपन्यास में रणेंद्र जी ने शिक्षा को लेकर यह भी चित्रित किया है, की सबसे प्रचलित स्कूल का निर्माण असुरों के 100 से ज्यादा घरों को उजाड़ कर बनाया था। लेकिन आदिम जाति का एक भी बच्चा यहां पर नहीं पड़ा है इससे आदिवासी समुदाय में यही धारणा बनी थी कि "हमारे बच्चों के लिए अधपढ़ - अनपढ़ शिक्षक होंगे तो हमारे बच्चे ज्यादा से ज्यादा स्किल लेबर, पिऊन, क्लर्क बनेंगे और क्या यही हमारी औकात है? हमारी छाती पर ताजमहल जैसा स्कूल खड़ा कर हमारी हैसियत समझना चाहते हैं लोग।"[8] इनके लिए सरकार और हम भी उतना ही जिम्मेदार हैं। आदिवासी समुदाय के

लिए जो भी सुविधाएं या योजनाएं बनाई हुई है, उन योजनाओं को उन तक पहुंचाना हमारा ही काम है। लेकिन ऐसा दिखाई देता है कि योजनाएं तो उनके लिए बनाए गए हैं उसका लाभ अन्य लोग उठा रहे हैं।

निष्कर्ष:

वर्तमान समय में अगर हमें आदिवासी समुदाय को मुख्यधारा में लाना है तो सरकार की ओर से जो भी योजनाएं बनाई गई है उन्हें अच्छी तरह से आदिवासी समुदाय तक पहुंचाना होगा। उन्हें शिक्षा के माध्यम से की मुख्यधारा में लाया जा सकता है। शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जिससे आदिवासी समुदाय के लोग अपने आप मुख्यधारा में आ सकते हैं। शिक्षा के माध्यम से उन्हें सरकारी नौकरी में आना संभव हो सकता है। जहां पर आदिवासी समुदाय रह रहा है वहां से सरकार और कंपनियां जो संसाधन निकाल रहे हैं उन्हें निकालने के बाद वहां के गड्ढे को भरने की जिम्मेदारी भी लेनी चाहिए। इससे आदिवासी समुदाय में फैली बीमारियों को रोका जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ:

1) 'उपन्यास का इतिहास' गोपाल राय पृष्ठ 216
2) 'भारतीय समाज', श्यामशरण दुबे, अनुवाद-वंदना मिश्र 76
3) 'ग्लोबल गाँव के देवता', रणेंद्र पृष्ठ 11
4) 'ग्लोबल गाँव के देवता', रणेंद्र पृष्ठ 12
5) तलवार वीर भारत,झारखंड के आदिवासियों के बीच (एक ऐक्टिविस्ट के नोट्स), भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली 2008 पृष्ठ 224-225
6) 'ग्लोबल गाँव के देवता', रणेंद्र पृष्ठ 62
7) 'ग्लोबल गाँव के देवता', रणेंद्र पृष्ठ 20
8) 'ग्लोबल गाँव के देवता', रणेंद्र पृष्ठ 19

मधु कांकरिया के कथा साहित्य में चित्रित आदिवासी समाज

आयेशाबेगम अब्दुलबारी रायनी
ईमेल – ayesharayani@gmail.com
मोबाईल - 7620745145

सारांश:

आज इक्कीसवी सदी में आदिवासी विमर्श साहित्य के लिए चिंतन का विषय बना हुआ हैI पुरातन काल से ही आदिवासी समुदाय को एक पिछड़ा समाज मानकर समाज से अलग-थलग रखा गया, उन्हे हमेशा से गौण माना गया, अपमानित किया गया, समाज के विकास एवं प्रगति में उन्हें बाधा माना गया लेकिन आज शिक्षा के प्रसार प्रचार एवं आदिवासियों के लिए लिखा गया साहित्य पढ़कर आदिवासी अपने अधिकारों के प्रति सजग हो रहे हैंI आदिवासियों को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए कदम-कदम पर संघर्ष करना पड़ा हैI अनेक साहित्यकारों ने आज आदिवासी समाज को अपने लेखन में जगह दी हैI आदिवासी विविध समुदाय, उनके रहन-सहन,रीति-रिवाज,पर्व-त्योहार,संस्कृति को आज साहित्य के माध्यम से दर्शाया जा रहा हैIआज आदिवासी साहित्य विविध विधाओं के माध्यम से मुखरित हो रहा हैI वर्षों से आदिवासी समाज को 'जंगली' की संज्ञा देकर उनसे जनवरों जैसा बर्ताव किया गयाI समाज की मुख्यधारा से उन्हे दूर रखा गयाI 'मूर्ख' कह कर उनके आत्मसम्मान को ठेस पहुंचाई गई लेकिन आज आदिवासी साहित्य आदिवासियों को जागृत कर रहा हैI अपने अधिकारों के प्रति सजग कर रहा है और उनमे विद्रोह की आग भड़का रहा हैI आदिवासी साहित्य ने न केवल आदिवासियों के आत्मविश्वास को जगाया है साथ ही उन्हें समाज की मुख्यधारा से भी जोड़ दिया हैI

बीजशब्द- आदिवासी, प्रकृति, संस्कृति, समाज, जंगल, आदि

प्रस्तावना

जो जनजातियां आदिम है और प्राचीन काल से जंगल को ही अपना घर समझकर जंगल में वास करती आ रही है, ऐसी जनजातियों को 'आदिवासी' शब्द से संबोधित किया गया हैI यह युगों-युगों से जंगल की रक्षा करते आ रहे हैंI इस रूप में यह प्रकृति के वारिस भी कहे जा सकते हैंI फिर भी आज उनका अपना अस्तित्व और पहचान नहीं हैI समाज की मुख्यधारा ने इन्हें 'जंगली' कहकर अपने से अलग कर दिया हैI आदिवासी समाज आज भी सब सुख सुविधाओं से दूर जंगलों में,पहाड़ों में अपना जीवन यापन कर रहा हैI आज वह शिक्षा के अभाव में नाना प्रकार के शोषण का शिकार हैI

स्वतंत्रता के पहले से लेकर आज तक आदिवासियों की वही समस्याएं बनी हुई हैं-विकास एवं उन्नति के नाम पर जंगल की कटाई, आदिवासियों का जंगलों से खदेड़ा जाना, जमीदारों द्वारा शोषण,पुलिस प्रशासन द्वारा शोषण, अज्ञान, अशिक्षा, गरीबी, बेरोजगारी इन समस्याओं से हर आदिवासी ग्रस्त है इन समस्याओं से संघर्ष करते-करते वह दम तोड़ देता है लेकिन समस्याएं यथावत हैंI

वर्तमान में देश के विकास के नाम पर आदिवासियों से उनके जल-जमीन-जंगल छीनकर उन्हें बेदखल किया जा रहा हैI इतना ही नहीं प्रकृति को भी हानी पहुंचाई जा रही हैI इस स्थिति में 'विस्थापन' यह उनकी मुख्य समस्या बन गई हैI आदिवासी रोजगार की तलाश में शहरों की तरफ निकल पड़े हैंI आदिवासियों के लिए प्रकृति उनके प्राणों से भी अधिक प्रिय हैI प्रकृति के अपमान को वह अपना अपमान समझते हैंI आदिवासियों की जीवन शैली प्रकृति पर ही टिकी हुई हैI प्रकृति के बिना आदिवासी अपने जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते लेकिन ऐसे प्रकृति रक्षक, प्रकृति प्रेमी आदिवासी समुदाय को हमारा समाज हेय दृष्टि से देखता रहा हैI आदिवासी समाज हर तरह के बनावटीपन, चमक-दमक से दूर साधारण-सा जीवन जीता हैI ऐसे में साहित्यकारों का कर्तव्य बनता है कि वह दूसरे समुदायों की तरह आदिवासी समुदाय को भी अपने साहित्य में न्याय देंI उनके जीवन की सही पड़ताल करेंI आदिवासी समाज का स्वरूप प्रकृति की तरह ही स्वच्छ एवं पारदर्शक हैI आदिवासी प्रकृति प्रेमी, प्रकृति रक्षक, प्रकृति के पूजक होते हैंI इनके देवता भी चंद्र, सूर्य, पहाड़,पेड़ होते हैंI आदिवासी समाज नारी को भी उतना ही महत्व देता है जितना पुरुष कोI आदिवासी धार्मिक कर्मकांडो में विश्वास रखते हैं लेकिन यह पूरी तरह से अंधविश्वासू नहीं होतेI संघर्ष करते हुए जीवन जीते हैं लेकिन जीवन का आदर करते हैंI अभाव में भी सुख ढूंढते हैंI लेकिन यह भी सत्य है कि आदिवासी समाज आर्थिक विपिन्नता से जूझ रहा है अज्ञान,अशिक्षा,गरीबी,बेरोजगारी इनके जीवन के अभिशाप बने हुए हैंI इस अभिशाप से आदिवासियों को मुक्त करना ही साहित्य का उद्देश्य हैI

मधु कांकरिया के कथा साहित्य में चित्रित आदिवासी समाज

मधु कांकरिया वर्तमान काल की सशक्त साहित्यकार के रूप में प्रसिद्ध हैI वह एक निर्भिक एवं बेबाक लेखिका के रूप में जानी जाती हैI उन्हें समाज में जहां भी अन्याय,असमानता,विसंगति दिखाई दी, उन्होंने अत्यंत साहस के साथ उसे अभिव्यक्त कियाI उन्होंने अपना साहित्यिक सफर 'खुले गगन के लाल सितारे' से शुरू किया जो कि नक्सलवाद एवं आदिवासी जीवन पर आधारित उपन्यास थाI इसमें उन्होंने आदिवासी समाज, उनके रहन-सहन, खान-पान,आचार-विचार,संस्कृति,पर्व-त्योहार,प्रकृति प्रेम,उनकी जीवनशैली आदि को पाठकों के सामने रखा हैI साथ ही उन्होंने आदिवासियों की उन समस्याओं को उठाया है, जिससे आज का आदिवासी समाज पीड़ित हैI आदिवासियों की आर्थिक स्थिति आज जर्जर हैI आदिवासियों की अर्थव्यवस्था जंगलों पर टिकी हुई थी, लेकिन आज जंगलों की कटाई तेजी से हो रही हैI और जो आदिवासी जंगल के मालिक थे,आज मजदूर बने हुए हैंI विकास के नाम पर जंगलों की कटाई तो हो रही है लेकिन प्रश्न यह है कि विकास किसका हो रहा है? देश का या आदिवासियो का ? या फिर कुछ चुनिंदा लोगों का? समय-समय पर सरकार के द्वारा अनेक योजनाएं चलाई गई लेकिन वह भी आदिवासियों की जान की कीमत परI जिससे आदिवासी बदहाली, गरीबी, अशिक्षा, अंधविश्वास, बेरोजगारी के शिकार बनते गएI आर्थिक स्थिति के साथ ही आदिवासियों की शिक्षा स्थिति भी बदतर हैI आदिवासियों की शिक्षा आदिवासी भाषा में ही होनी चाहिए इसकी तरफ किसी का ध्यान ही नहीं गयाI आदिवासी समाज अनेकानेक वर्षो से जंगलों तथा पहाड़ों में अपना जीवन यापन करता आया है, इसलिए उन्हें शिक्षा मार्ग पर लाना अधिक कठिन है लेकिन यदि यह शिक्षा उन्हीं की भाषा में हो तो यह कार्य सरल हो जाएगाI आदिवासी अस्मिता पर अपनी चिंता व्यक्त करते हुए मधु कांकरिया लिखती हैं- "आदिवासियों को जंगल, नदी और पहाड़ों से घिरे उनके प्राकृतिक और पारंपरिक परिवेश से बेदखल किया जा रहा है अभी तक वह अपने विश्वासो,रीति-रिवाजों,लोक-नृत्यो और लोक-गीतों के साथ मवेशियों, नदियों, तालाबों और जड़ी-बूटियों से संपन्न एक जनसमाज में रहता आया हैI इसकी एक विशिष्ट संस्कृति रही हैI उसका अपना विकसित अर्थ तंत्र थाI वह अपने पुश्तैनी पारंपारिक और कृषि आधारित कुटीर धंधों से परंपरागत था I बढईगिरी, लोहारगिरी, मधुपालन, दोना पत्तल, मधु उत्पादन, रस्सी, चटाई बुनाई जैसे काम उसे विरासत में मिले थे परंतु आज खुले बाजार की अर्थव्यवस्था ने सदियों से चले आ रहे हैं उनके पुश्तैनी और पारंपरिक धंधों को चौपट कर दिया हैI'"**1** आदिवासियों के प्रति पहले जो गवार,असभ्य की धारणा बनी हुई थी इस धारणा के प्रति विद्रोह साहित्यकारों ने अपने साहित्य में व्यक्त किया हैI आज साहित्यकार कहानी,उपन्यास,नाटक,व्यंग्य,कविता आदि विधाओं के माध्यम से आदिवासियों को केंद्र में रखकर लेखन कार्य कर रहे हैंI अपने साहित्य के माध्यम से उन्होंने आदिवासियों के घर,रीति-रिवाज, संस्कृति, पर्व-त्योहार आदि पर प्रकाश डाला हैI इस संदर्भ में 'करमा' जो कि आदिवासियों का त्यौहार होता है इस दिन आदिवासी लोकगीत गाते हैं-

"करम करम कर लेंगे समारोह,
करम का दिना कैसे आबी,
सावन भादो दिनो भली मेल,
कुंवारे करम गडाएI"**2**

आधुनिक काल में आदिवासी,नारी,दलित,किसान,अल्पसंख्याक जैसे अनेक विमर्श उभर कर सामने आए हैंI जिनके माध्यम से उन सारे प्रश्नों को सुलझाने की कोशिश की जा रही है जिनसे यह वर्ग जूझ रहे हैंI आदिवासी जीवन की गंभीर समस्या है- पानीI "पानी के एक घड़े के लिए हर दिन करीब तीन-चार किलोमीटर की यात्राI सूखे के दिनों में पांच-छह किलोमीटर चलना पड़ता हैI"**3** तमाम सुख-सुविधाओं से वंचित इस समाज को साहित्यकारों ने वाणी दी हैI आदिवासी साहित्य में आदिवासी संस्कृति के साथ आदिवासियों का शोषण और वास्तविक चित्रण मिलता हैI इस संदर्भ में मधु जी के 'हम यहां थे' मे एक आदिवासी का कथन है- "क्या करें हम? हमारा ही घड़ा और हम ही प्यासेI क्या नहीं देते हम लोहा,अल्मुनियम , जड़ी-बूटी, धान, कपास, बॉक्साइट, साग-सब्जी और इसके बदले क्या लेते हैं हम? बस जरा सा खाद्यान्न, थोड़े बर्तन, थोड़े से कपड़े बसI किसी भी प्रकार के प्रदूषण में हमारा हाथ नहीं लेकिन आज हमें क्या मिल रहा है पुरखों की जमीन से बेदखली, गरीबी, भुखमरी, बेबसी और बीमारियांI"**4** आज आदिवासियों को उनके अधिकारों के प्रति जागृत करने में आदिवासी तथा गैर आदिवासी साहित्यकार बढ़ चढ़कर हिस्सा ले रहे हैंI आदिवासी संस्कृति, अस्मिता एवं अस्तित्व की रक्षा यह साहित्यकारों का मुख्य उद्देश्य बन गया हैI

आदिवासी साहित्य वही साहित्यकार लिख सकता है जिसने स्वयं आदिवासी जीवन का प्रत्यक्ष अनुभव किया हो, उनकी पीडाओं को जाना हो I उनके जीवन से प्रत्यक्ष साक्षात्कार किया हो I और जब ऐसा साहित्य लिखा जाता है वह आदिवासी जीवन में बदलाव के लिए कटिबद्ध होता हैI आज गैरआदिवासी समाज भी आदिवासियों का आधार बन कर सामने आया हैI इस संदर्भ में प्रो. व्यंकटेश आजाम का कथन है-" जो आदिवासी जीवन से प्रेरणा लेकर लिखा हुआ है वह आदिवासी साहित्य हैI"**5**

आदिवासियों को प्रकृति से असीम लगाव होता हैI वह धरती को अपनी मां मानते हैंI इस संदर्भ में एक आदिवासी का कथन है "हल चलाने से पहले हम धरती से माफी मांगते हैं कि उसका सीना चीर रहे हैंI पर कुछ आदिम जनजातियां तो खेती तक नहीं करती कि हल चलाने से धरती मां का सीना चाक हो जाएगाI"**6**

इक्कीस्वी सदी में साहित्य में आदिवासी विमर्श केंद्र में हैI साहित्यकारों में दो वर्ग हैI आदिवासी और गैरआदिवासीI आदिवासी साहित्यकारों का साहित्य स्वानुभूति के कारण वास्तविक लागता है जबकि गैरआदिवासीयों का साहित्य अनुभव के अभाव के कारण कच्चा एवं वाचिक लागता है लेकिन दोनों ही वर्गो का उद्देश्य समान है आदिवासी संस्कृति एवं सभ्यता के धरोहर की रक्षा करनाI

आदिवासियो के जीवन को समझने के लिए आदिवासी साहित्य सहायक हैI आदिवासी जीवन किसी भी प्रकार के नियमों, बंधनों से मुक्त हैI आदिवासी साहित्य आदिवासियों के वास्तविक स्थिति एवं उनके संघर्ष को दिखाता हैI आदिवासी साहित्य मे आदिवासी जीवन की मान्यताएं,लोक-कथाएं, लोक-विश्वास,अंधविश्वास,प्रकृति प्रेम, सामूहिकता की भावना, संस्कृति, गीत- संगीत,आदिवासी-स्वतंत्रता, आदिवासी समस्याए एवं प्राणियों से लगाव यह बुनियादी तत्व समाहित है और इन तत्वों को समाहित करने वाला साहित्य आदिवासी साहित्य कहा जा सकता हैI

निष्कर्ष

आदिवासी साहित्य का मूल स्वर विद्रोह का रहा है लेकिन इसके साथ ही आदिवासियों की वेदना, संवेदना, आकांक्षा एवं समस्याओं को साहित्यकार अपने साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करता हैI आदिवासी साहित्य का परिणाम यह हो रहा है कि आज आदिवासी अपने अधिकारों के प्रति, शिक्षा के प्रति जागृत हो रहे हैंI अपने ऊपर हो रहे शोषण का विद्रोह करने लगे हैंI आदिवासी साहित्य के कारण आदिवासियों के प्रति नया दृष्टिकोण निर्माण हो रहा हैI अब पहले की तरह उन्हें भोला, मूर्ख, जंगली ना मानकर एक विकासोन्मुख जनजाति के रूप में देखा जा रहा हैI आदिवासी साहित्य आदिवासी अनेक समस्याएं जैसे आर्थिक समस्या, शिक्षा, शोषण, विस्थापन, आरोग्य को उठाता हैI आदिवासी समाज अनेक वर्षो से अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ता आ रहा है लेकिन इस लड़ाई को वाणी साहित्यकारों ने दी है आज आदिवासी साहित्यकारों में राम दयाल मुंडा, सुशीला सामंत, वाल्टर भेंगरा, महादेव टोप्पो , सुषमा असुर, निर्मल सिंह, निर्मला पुतुल, रमणिका गुप्ता, सुशीला सामंत ,दुलारचंद मुंडा, हरिराम मीणा, शंकर लाल मीणा, दयामणि बरला, सुषमा असुर, लक्ष्मण गायकवाड़ आदि नाम शीर्षस्थ हैI

आदिवासी विमर्श आदिवासी अस्तित्व की रक्षा का पक्षधर हैI आदिवासी समुदाय जो समाज के मुख्यधारा से दूर चला गया हैI उसे समाज से जोड़ना यह आदिवासी साहित्य का प्रयत्न रहा हैI आदिवासी समुदाय भारतीय संस्कृति का परिचायक हैं फिर भी आज उन्हें अपने अस्तित्व एवं अधिकारों की रक्षा के लिए सरकार से संघर्ष करना पड़ रहा है और यही कारण है आदिवासी विमर्श का उदय विद्रोह की इस प्रतिक्रिया के रूप में हुआ हैI आदिवासी सभ्यता कि रक्षा एवं विकास के लिए उन्हें शिक्षित करना, उनके अंधविश्वास एवं जडता को दूर करने की आवश्यकता हैI और यह प्रयत्न साहित्यकार अपने साहित्य द्वारा कर रहे हैंI

आज राष्ट्र निर्माण के नाम पर जो आदिवासियों को उनके जल-जंगल- जमीन से खदेड़ा जा रहा है, सरकार के द्वारा उसे रोका जा सकता हैI आदिवासियों के आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक स्थिति में सुधार किया जा सकता है और यह प्रयत्न सरकार द्वारा किए जाने चाहिएI आदिवासी साहित्य आदिवासियों को सम्मान से जीने का,खुद की लड़ाई खुद लड़ने का,खुद की पहचान बनाने का, शोषण का विरोध करने का, सामूहिक शक्ति बढ़ाने के लिए प्रेरित करता है और उन्हें विकास के मार्ग पर अग्रसर होने का संदेश देता हैI

संदर्भ

1. उषा कीर्ति रावत, सतीश पांडे, शीतला प्रसाद दुबे-आदिवासी केंद्रित हिंदी साहित्य, हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012,पृ -17
2. मधु कांकरिया- हम यहां थे, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2020, पृ-158
3. मधु कांकरिया- हम यहां थे, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2020, पृ 156
4. मधु कांकरिया -हम यहां थे, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2020 पृ- 161
5. खन्ना प्रसाद- अमीन: आदिवासी साहित्य, श्री नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016 पृ- 24
6. मधु कांकरिया-हम यहां थे, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2020 पृ - 157

पर्यावरण विमर्श: चिंतन, सृजन एवं सरोकार

श्री. आनंदराव आप्पासाहेब बेडगे,
शोधार्थी, हिंदी विभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर,
भ्रमणंध्वनी: 9763166895,
मेल- anandbedge@gmail.com

सारांश:

विश्व में तेज गति से बढ़ता हुआ औद्योगीकरण, विकास की उपभोग्यता एवं जनसंख्या विस्फोट आदि घटनाओं से पर्यावरण संतुलन बिगड़ रहा है | कई लोग अपने जीवन को और सुखकर बनाने की कोशिश में हमारे प्रकृति में प्रदूषण का स्तर बढ़ा रहे है | गरीब और पिछड़ेपन के कारण लोग अपने जीवनयापन के लिए और रोज की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए अपने आस पास के जंगल और वन को काट रहे है | जिससे वायु प्रदूषण और उससे संबंधित अन्य प्रदूषणों में काफी मात्र में बढ़ोतरी हुई है | प्रकृति और पर्यावरण को बचाना है तो सभी लोगों को अपनी हवस को मर्यादा में ढालकर पर्यावरण विनाश को रोकना चाहिए| इस बात पर ध्यान देने की आज जरूरत है की प्रकृति की रक्षा करने से हम अपना जीवन सुरक्षित रख सकते है | हमें पर्यावरण संतुलन बनाये रखे की आज जरूरत आन पड़ी है इसको नजर अंदाज नहीं करना चाहिए | इस समस्या का सामना करने और उसकी तीव्रता को कम करने के लिए आज विश्व के कई देश और संस्थाएं प्रयासरत है | उनके सहयोग से हम अपनी अकेंद्रित जीवन शैली को केन्द्रित जीवन शैली में ढालकर पर्यावरण रक्षा के प्रति प्रयास करते रहना चाहिए |

बीज शब्द : पर्यावरण, जनसंख्या विस्फोट, औद्योगीकरण, वायु प्रदूषण, प्रकृति, पर्यावरण रक्षा

प्रस्तावना :

'पर्यावरण' आज देश और दुनिया के लिए एक महत्वपूर्ण विषय है | पर्यावरण के संतुलन पर ही आज मानव जाती का अस्तित्व टिका हुआ है | पर्यावरण दो शब्दों से मिलकर बना हुआ है, परि जिसका अर्थ है चारों तरफ तथा आवरण का अर्थ है घेरा इससे हमारे चारों तरफ फैला हुआ वातावरण अभिप्रेत है, जिसमे जल, थल, वायु, पशु-पक्षी, मानव प्राणी, वनस्पति, जीव-जंतु आदि | वर्तमान में हमारे प्रकृति की स्थिति बहुत ही खौफनाक हो रही है, बढ़ते हुए प्रदूषण की स्थिति और प्राकृतिक आपदाओं से पूर्णता निजात पाने की जरूरत आन पड़ी है| विभिन्न प्रकार का बढ़ता प्रदूषण जैसे वायु, जल, मृदा, ध्वनि, प्लास्टिक, अंतरिक्ष आदि आज विश्व के सामने गंभीर समस्या उत्पन्न कर रहा है | इसका बढ़ता हुआ प्रमाण हमारे अस्तित्व को इस धरातल से नष्ट करने में कारगर साबित हो सकता है | आज तेज गति से कम होते वन, विभिन्न प्रकार के वन्य जीवों की घटती हुई संख्या, प्राकृतिक संपदा का अत्यधिक दोहन, जलवायु परिवर्तन, जनसंख्या की अत्यधिक वृद्धि, ओझोन परत का क्षरण, जल में मिलते मानव और औद्योगिकी अवशिष्ट आदि से पारिस्थितिकी असंतुलन बढ़ा है, इसी के कारण Global warming, सूखा, बाढ़, भू स्खलन, भूमि मरुस्थलिकरण आदि समस्याओं से आज सारा विश्व सामना कर रहा है | आज सारे विश्व की मानव जाती के सामने अपने अस्तित्व के ही विभिन्न प्रश्न खड़े हुए है |

वनों की कटाई के साथ-साथ मानव की अनियंत्रित क्रियाकलापों से भी पर्यावरण को नुकसान पहुंच रहा है, जैसे की लोगों द्वारा जंगलों को जानबूझकर आग लगाई जाने से लाखों की संख्या में नए और पुराने पेड़-पौधे उस आग में जल कर खाक हो जाते है | वर्तमान विश्व के सामने खड़ी यह पारिस्थितिकी विनाश की एक और खौफनाक समस्या है | इस तरह वनों के जल जाने से उसमें रहने वाले जानवर, जीव-जंतु, वनस्पतियों का अस्तित्व ही नष्ट हो जाता है | आज पूरी दुनिया को एक होकर इस गंभीर समस्या से लड़ना होगा, यह समय की पुकार है |

शोध विषय का विश्लेषण :

पर्यावरण को अंग्रेजी में Environment के नाम से जाना जाता है, जो फ्रेंच शब्द Environer से बना हुआ है | जिसका अर्थ है हमारे आस-पास का वातावरण परि और आवरण से मिलकर बना है | पर्यावरण जिसमें परि का अर्थ है चारों तरफ तथा आवरण का अर्थ है घेरा जो प्रकृति वायु, जल, मृदा, पेड़-पौधे, प्राणी, जीव-जंतुओं आदि से संबंधित है | स्टॉकहोम संधि 1972 से प्रति वर्ष 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस मनाया जाता है | पर मानव अपने भौतिक जीवन में इतना व्यस्त हो गया है की वो

पर्यावरण पर ध्यान देने के लिए पर्याप्त समय भी नहीं निकलता है | आज पर्यावरण के बारे में मानव की जो उदासीन सोच है उसे समय रहते बदलना होगा, अन्यथा विनाश दूर नहीं | मानव द्वारा बनाई गयी आर्थिक और सामाजिक नीतियों से पर्यावरण का आये दिन नुकसान हो रहा है | आज पर्यावरण से संबंधित विभिन्न समस्या है जैसे प्रदूषण का बढ़ता स्तर, प्राकृतिक संसाधन का अयोग्य नीति द्वारा अत्यधिक दोहन और उसके लिये वनों की बहुत बढ़ी मात्रा में कटाई, जल में ज्यादा मात्रा में मिले हुए मानवी और रासायनिक, भौतिक अवशिष्ट, प्लास्टिक, अन्तरिक्ष में फैला नाकाम हुआ e-waste, जिससे पृथ्वी के चारों तरफ विषैले गैसों और पदार्थों का फैलाव होता है | उससे वातावरण का ताप बढ़ता है जो प्राकृतिक वर्षा में बाधा उत्पन्न करता है, जिससे पृथ्वी पर सूखे जैसा संकट निर्माण होता है | कहते है की प्रकृति और समाज की आन्तरक्रिया ही पारिस्थितिकी कहलाती है | प्राकृतिक संसाधनों की ओर बढ़ती हुए मानव की उपभोग वृत्ति पर्यावरण का विनाश कर रही है, जिससे हमारी सम्पूर्ण मानव जाती के अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह खड़े कर दिए है | विकास के नाम पर मानव समाज ने प्रकृति को विकृत किया है, क्योंकि वो अपनी भौतिक सुख-सुविधा पाने की हवस से पर्यावरण को आये दिन नुकसान पहुंचा रहा है | जिसके कारण प्रदूषण दिन ब दिन बढ़ता ही जा रहा है, बढ़ते प्रदूषण से कई संक्रामक रोग उत्पन्न हुए है और उसमें वृद्धि होती जा रही है | जो विश्व में एक महामारी की तरह फैल रहे है, यह एक सच है |

किसी मानव जाती समूह के प्रति हम विनाश का रुख अपनाते है तो कुछ समय बाद वह मानव समूह एकजुट होकर उस समस्या और परिस्थिति का सामना करता है, पूरे जोरों से उसका विरोध भी करता है, उनके ऊपर होनेवाले अन्याय को दूर करने का वह प्रयास करता है, इसी बीच यह बात अन्यायी प्रशासन के विरोध में एक क्रांति के रूप में जन्म लेती है | लोगों की जीवनशैली में आये बदलाव के कारण उन्होंने प्रकृति के विनाश का रुख अपनाया है | पर वह दिन भी दूर नहीं जब प्रकृति की सहनशीलता खत्म हो जाएगी तो वह पूरी मानव जाती के सामने विनाश रूपी क्रांति खड़ी करेंगी, जिसका सामना मानव कदापि कर नहीं सकता | प्रकृति में स्थित वनस्पतियाँ, उपयुक्त जीव-जंतु, जंगली प्राणियों से परिस्थितिकी का चक्र अक्षुण रहता है, इस कारण पर्यावरण संतुलन बनाये रहता है, उनकी कोई गलती न होने के कारण भी मानव के दुराचारी स्वभाव और आचरण के कारण वर्तमान में उनका भी विनाश अटल हो गया है| भारतीय संस्कृति में प्रकृति में स्थित जल, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र और वनस्पति आदि को देवताओं का दर्जा दिया गया है | सूर्य से हमें प्रकाश मिलता है, अग्नि से हमें ताप, बादल से जल, पृथ्वी से हमें खाने के लिए अन्न तथा वनस्पतियों से ऑक्सिजन मिलता है और वह कार्बन-डायऑक्साईड ग्रहण कर लेती है ताकि हमें राहत मिल सके | विश्व के कई प्रमुख देशों के राजनेताओं, पर्यावरणविदो और अंतरराष्ट्रीय संस्थानों ने इस समस्या की गंभीरता को देखते हुए इस समस्या से निजात पाने के लिए कई महत्वपूर्ण प्रयास भी किये है | इससे संबंधित पर्यावरण और बिगड़ते हुए हालत को संभालने के लिए विश्व में आज तक कई सम्मेलनों का आयोजन किया गया है, जो प्रकृति और पर्यावरण की रक्षा के लिए काफी अच्छा कारगर साबित हुए है | उन सम्मेलनों में जैसे- स्टॉकहोम सम्मेलन 1972 यह मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण को स्थायी कार्बनिक प्रदूषक (POPs) से बचने के लिये है | हेलसिंकी सम्मेलन 1974 मुख्य विषय समुद्री पर्यावरण की रक्षा करना शामिल है | लंदन सम्मेलन 1975 समुद्री कचरे का निस्तारण करने से संबंधित है | वियना सम्मेलन 1985 इस सम्मेलन में मानव स्वास्थ्य और ओझोन परत में परिवर्तन करने वाली मानवीय गतिविधियों की रोकथाम करने के लिये प्रभावी उपाय अपनाने पर सदस्य देशों ने प्रतिबद्धता व्यक्त की | मोंट्रियल संधि 1987 ओझोन परत को नुकसान पहुँचाने वाले विभिन्न पदार्थों के उत्पादन तथा उपभोग पर नियंत्रण के उद्देश्य रखा है, इसी संधि में 16 सितंबर विश्व ओझोन दिवस मनाना तय हुआ| टोरंटो सम्मेलन 1988 इस सम्मेलन का मुख्य विषय ग्रीन हाउस गैसों के अंतर्गत आनेवाली गैस कार्बन डाई आक्साइड (CO२) रखा गया था | रियो सम्मेलन 1992 इसमें पर्यावरण एवं विकास पर संयुक्त राष्ट्र द्वारा आयोजित इस सम्मेलन को ही 'पृथ्वी सम्मेलन' या 'रियो सम्मेलन' के नाम से जाना गया है | इस सम्मेलन का उद्देश्य इक्कीसवीं सदी के पर्यावरण के महत्वपूर्ण नियमों का एक दस्तावेज तैयार करना था जिसे एजेंडा 21 के नाम से जाना गया है | क्योटो संधि 1997 इसमें ग्लोबल वार्मिंग द्वारा हो रहे जलवायु परिवर्तन को रोकने का उद्देश्य अपनाया गया है | इस सम्मेलन में यह तय किया गया की सभी राष्ट्र कार्बन डाई आक्साइड के उत्सर्जन में कटौती करे | सिएटल सम्मेलन 1999 इस सम्मेलन का मुख्य विषय विश्व व्यापार को पर्यावरण के दायरे में लाने का उद्देश्य है | कानकुन सम्मेलन 2010 इस सम्मेलन का उद्देश्य जलवायु परिवर्तन पर एक नवीन संधि के लिए सर्वसम्मति कायम करना, उत्सर्जन की मात्रा टी करना तथा वातावरण वृद्धि को पूर्व औद्योगिक काल के तापमान से २ डिग्री कम तक बनाये रखना | इससे यही प्रतीत होता है की आज सारा विश्व इस विषय पर जागृत होता दिखाई दे रहा है| हम सब को आगे भी पर्यावरण की रक्षा के लिए प्रयासरत रहना है ताकि हम अपनी वसुंधरा को भविष्य में आने वाले विनाश से बचाए क्योंकि यही हमारा मानव धर्म है |

निष्कर्ष :

पर्यावरण की रक्षा से ही हमारी जीवन की सुरक्षा जूड़ी हुई है | दुनिया आज पर्यावरण सुरक्षा को प्राथमिकता दे रही है, फिर भी हम इसकी रक्षा के लिए खुद अपने आप से जागृत और प्रयासरत होने की जरूरत आन पड़ी है | अगर समय रहते हम इस समस्या पर कोई कारगर कदम नहीं उठाएंगे तो यह प्रकृति और साथ ही साथ पूरी मानव जाती इस विनाश के चक्र में फंस जाएगी | 'जियो और जीने दो' इस उक्ति के तहत हमें अपने आपको ढालना होगा | हमें अपनी ज़रूरतों को कम करके जितने की आवश्यकता है उतना ही प्रकृति का इस्तेमाल करना चाहिए | प्राकृतिक संसाधनों का सही ढंग से और मर्यादा में रहकर उपयोग करना चाहिए ताकि प्रकृति पर बोझ ना बड़े | विज्ञापन के ज़रिये हम लोगों में जनजागृति करके प्रकृति और पर्यावरण के प्रति जागृत करना होगा ताकि आनेवाले पृथ्वी विनाश के संकट को रोका जाये | हम सभी को एकजुट होकर प्रदुषण और हो रहे पर्यावरण के असंतुलन पर कोई कारगर तोड़ निकलने का प्रयास करना चाहिए ताकि इस धरातल पर हमारा अस्तित्व टिका रह सके |

संदर्भ ग्रंथ/ टिप्पणी :

1. योगेन्द्र शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2020, पृ. 1
2. वही पृ. 2
3. वही पृ. 3
4. वही पृ. 4
5. भगवतीशरण मिश्र, लक्ष्मण रेखा उपन्यास, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2008
6. ए.बी. सवदी, भूगोल आणि पर्यावरण (मराठी), निराली प्रकाशन, संस्करण 2013, पृ. 10.1
7. वही पृ. 10.2
8. टिप्पणी: सकाल अख़बार, कोल्हापुर, 2 मार्च 2023
9. टिप्पणी: वेब पृष्ट: theexampiller.com (निरीक्षण 4 मार्च 2023)

हिंदी साहित्य में पर्यावरण विमर्श

सौ. अमिता प्रशांत कारंडे
शोधछात्र- डी. बी.जे महाविद्यालय,
मोबाइल नं - 8888553198
ई - मेल - apkarande 87@ gmail.com

शोध आलेख का सारांश -

साहित्य में भी पर्यावरण से संबंधित बातों का वर्णन हो रहा है। हिंदी साहित्य में तो अनेक प्रकार के विमर्शको वर्णित किया गया है जैसे नारी विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि अनेक विमर्श में से एक विमर्श हैं पर्यावरणीय विमर्श। हिंदी साहित्य अन्य साहित्य के तरह पर्यावरणीय बातों का वर्णन किया है। हिंदी साहित्य में भी पर्यावरणसे संबंधित अनेक उपन्यास, कहानी कविताएँ, यात्रा साहित्य, निबंध आदि अनेक प्रकार का साहित्य लिखा गया है।

हिंदी साहित्य में पर्यावरणसे संबधित साहित्य आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक प्राप्त होता है। हिंदी साहित्य के आदिकाल के कवि विद्यापति की पदावली में प्रकृति का वर्णन आया हुआ है.

बीज शब्द - पर्यावरण, प्रकृति, मनुष्य, साहित्य, कवि आदि।

प्रस्तावना -

पर्यावरण हवा, पानी, पेड़, पौधे, मिट्टी आदि चीजों पर्यावरण बनता है।यह सभी चीजें मनुष्य के लिए उपयोगी है।इन सब चीजों के सिवा मनुष्य का अस्तित्व ही नहीं है लेकिन मनुष्य आजकल अपने स्वार्थ के लिए पर्यावरण या प्रकृति के साथ खिलवाड कर रहा है। जैसे- बड़ी –बड़ी इमारते बनवाने के लिए जंगलोंको काटना, कंपनीयों के धुओं के कारण हवा प्रदूषित कर रहा है।कारखानों का गंधा पानी नदियों में छोड़कर नदी का पानी अशुद्ध करना। आज के इस भू मंडलीकरण के दौर में मानव ने पर्यावरण को कुचल रहा है। विकास के नाम पर वनोंको काटना, नदियों की गति और दिशा में मन चाहा परिवर्तन करना, खनिज उत्खनन करना, औदयोगिकीकरण और शहरीकरण करना, जैव विविधता का –हास करना आदि सभी मनुष्य कर रहा है।

साहित्य में भी पर्यावरण से संबंधित बातों का वर्णन हो रहा है। हिंदी साहित्य में तो अनेक प्रकार के विमर्शको वर्णित किया गया है जैसे नारी विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि अनेक विमर्श में से एक विमर्श हैं पर्यावरणीय विमर्श। हिंदी साहित्य अन्य साहित्य के तरह पर्यावरणीय बातों का वर्णन किया है। हिंदी साहित्य में भी पर्यावरणसे संबंधित अनेक उपन्यास, कहानी कविताएँ, यात्रा साहित्य, निबंध आदि अनेक प्रकार का साहित्य लिखा गया है।

हिंदी साहित्य में पर्यावरणसे संबधित साहित्य आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक प्राप्त होता है। हिंदी साहित्य के आदिकाल के कवि विद्यापति की पदावली में प्रकृति का वर्णन आया हुआ है.

मौलीर साल मुकुल भेल ताब
समुखहिंको किल पंचम गाय।

हिंदी साहित्य के भक्ति कालमें अनेक कवियोंने प्रकृतिसे संबंधित अनेक जग हों पर वर्णन किया हुआ है। इन कवियोंमें प्रमुख रूप से कबीर सूर, तुलसीजी जायसी आदि प्रमुख कवि है। इन में से तुलसीदासने रामचरित मानस में सीता और लक्ष्मण को वृक्षारोपण करते हुए दिखाया है -

तुलसी तरुवर विविध सुहारा
कहुँ कहुँ सियाक हुँल खन लगाएं।

हिंदी साहित्य के भक्ति काल के बाद रीति काल आता है इस रीतिकाल में भी बिहारी, पदमाकर, देव, सेनापतिने प्रकृति का एक मनमोहक चित्रण अपने काव्यों में किया हुआ है।बिहारी जी एक दोहा जिसमें प्रकृतिका चित्रण आया है

चुवत स्वेद मकरंद कनतरु, तर, तरू विस्माय।
आवत दक्षिण देश तेथक्यों बटो ही बाय।

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में अनेक कवियोंने प्रकृतिके अनेक रूपोंका वर्णन किया है । कहीं जगहोंपर प्रकृति की सुंदरता के साथ – साथ कठोर रूपका भी चित्रण किया गया है।

आधुनिक काल के कवि मैथिली शरण गुप्तजीने उनके 'साकेत' उपन्यास में प्रकृतिका मन मुग्ध करनेवाला चित्रण करते हुए कहा है कि–

चारूचंद की चंचल किरणें
खेल रही है जल थल में
स्वच्छा चांदनी बिछी हुई है
अवनि और अंबर तल में

हिंदी साहित्य के छायावादी कवियोंमें प्रमुख कवि सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', महादेवी वर्मा, और जयशंकर प्रसादजीने अपने साहित्य में प्रकृति का चित्रण हर जग हों पर पाया जाता है ।इतना ही नहीं सुमित्रानंदन पंतजी को तो हिंदी साहित्य में प्रकृतिके 'सुकुमार कवि' माना गया है क्योंकि पंतजीने अपने साहित्य में प्रकृतिका वर्णन अत्यंत, सुंदरता से किया है। सुमित्रानंदन पंतजीने अपनी कविताओं के माध्यमसे मानव और प्रकृतिका तादात्म किया है ।पंतजी अपनी "नौका विहार' नामक कविता में गंगा नदी की धारा एक शांत बालिका की लेटी हुई है छबी लगती है इस प्रकार का वर्णन किया है।

सैकत शैय्या पर दुग्धधवल, तन्वंगी,
गंगा, ग्रीष्म, विकल
लेटी है श्रान्त, क्लान्त, निश्चल।
गोरे अंगोंपर सिहर-सिहरलहराता तार
तरल सुन्दर
चंचल अंचल सा निलाम्बर।

छायावाद के चार आधास्तंभों में से जयशंकर प्रसादजीने प्रकृतिके रौद्ररूप का चित्रण अपने 'कामायनी 'उपन्यास में किया है

हिमगिरि के उत्तुंग शिखरपर
एक बैठा शिला की शीतल छाह
एक पुरुष भीगे नयनों से
देख रहा था प्रलय प्रवाह

कामायनी' 'इस उपन्यास में जयशंकर प्रसादजीने प्रकृति में जब जलप्रलय आया था तब प्रकृतिका विनाशकारी रूप यहाँ दिखाया है।

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के कवि केदारनाथ सिंह' जीने अपने साहित्य में मानव के कारण प्रकृति में प्रदूषण बढ़ रहा है। इस बढ़ते प्रदूषण का चित्रण अपनी कविता "पानी की प्रार्थना ' में किया गया है-

पर यहां पृथ्वी पर मैं
यानी अपना मुह लना पानी,
अब दुर्लभ होने के कगार तक पहुँच चुका हूं,
परचिंता की कोई बात नहीं
यह बाज़ारों बाजारों का समय है,
और वहां किसी रहस्यमय
स्त्रोत से मैं हमेशा मौजूद हूं।

इस कविता में केदारनाथ जीने पानी के कारण पूंजीपति लोग और सत्ताधारी लोग पानी के माध्यम से किस प्रकार राजनितिका माध्यम बनाते है इस का वर्णन किया है।

डॉ.रामकुमार वर्माजीने भी अपने काव्योंमें प्रकृतिको विशेष महत्व दिया गया है ।डॉ.रामकुमार वर्माजीने 'रूप, साम्प इस कविता में सागर का वर्णन किया है-

निशि में जब तम काथा प्रसार,
खद्योत उडेथे, तीन चार,
तक-सागर में डूब रहा,
संसार लिए निज नींद-भार।

डॉ.रामकुमार वर्माजी सिर्फ सागर काही वर्णन अपने काव्य नहीं किया तो नदी, पर्वत, तालाब आदि का भी किया है।

जैनेंद्रकुमार जी की 'तत्सत' "यह कहानी एक प्रतीकात्मक कहानी है। इस कहानी में जैनेंद्रकुमार जीने बताया है कि पेड़-पौधे, पशु-पंछी और मनुष्य हर एक का अपने जगह पर अपना-अपना अलग का महत्व होता है यह बताया है। 'महत्वाकांक्षा और लोभ' पुन्नालाल बख्शीजीने इस निबंध में एक मछुवा और का मछुवी का वर्णन किया है। मछली किस प्रकार अपनी मदत के लिए मछुवा को बुलाती है । मछुवा उसकी मदत करता है बदले में मछली उसकी सभी इच्छाओं को पूरा करती है इस निबंध में इस का वर्णन किया है।

'ओजोन विघटन का संकट इस विज्ञान संबंधी लेख में डॉ.कृष्ण कुमार मिश्रजी केने बताया है कि मनुष्य प्रकृति के साथ खिलवाड करने के कारण पृथ्वी के आसपास होनेवाली ओ जोन की परत को धीरे-धीरे छेद हो रहे है यह बताया है।

डॉ.मुकेश गौतम जीने 'पेड़ होने का अर्थ इस कविता में कहा है कि आद मी पेड़ जितना बड़ा कभी नहीं बन सकता क्योंकि पेड़ हमें जितना देता है उतना मनुष्य कभी नहीं दे सकता। पेड़ किस प्रकार हालात से लड़ता है यह बताया है।

जब तक है उसमें सास

एक जगह पर खड़े रहकर

हालात से लड़ता है।

पेड़ किसी से भीडरता नहीं है, किसी के पैर पड़ता नहीं उसके पास बहुत हौसला होता है यह बताया है।

निष्कर्ष –

इस प्रकार हिंदी साहित्य में अनेक साहित्यकारोंने अपने साहित्य के माध्यम से प्रकृतिके अनेक रूपों का वर्णन किया है। इस में मनुष्या ने प्रकृति के साथ जो खिलवाड़ किया है इसका भी वर्णन किया है तथा के सुंदरता का वर्णन भी अनेक साहित्य में प्रकृति मिलता है। प्रकृति के सिवा साहित्य अधुरा होता है इसलिए साहित्य में प्रकृति का होना ज़रूरी होता है।

संदर्भग्रंथ-

1) पर्यावरण संबंधी जानकारी google का संदर्भ.
2) साकेत – मैथिली शरणगुप्त प्रकाशन- साहित्य सदन, चिरगांव झाँसी सितंबर,25, 2005
3) कामायनी – जयशंकर प्रसाद - प्रकाशन-डायमंड पॉकेट बुक्स, प्रस्तुत संस्करण जनवरी 2006 पृष्ठ क्र.2
4) http:|| kavitakosh.org.
5) कक्षा 12 वी का पाठ्य पुस्तक- महाराष्ट्र राज्य पाठ्यपुस्तक निर्मिती
मंडळ आवृत्ति 2020 पृष्ठ क्र. 36,37,51,52
6) कक्षा 11वी का पाठ्य पुस्तक -महाराष्ट्र राज्य पाठ्यपुस्तक निर्मिती मंडळ
आवृति – 2019 पृष्ठ क्र. 40,41

हिंदी उपन्यास साहित्य में आदिवासी विमर्श

सौ. अश्विनी अशोक देशिंगे
पीएच.डी., शोध छात्रा,
शिवाजी विश्वविद्यालय,
कोल्हापूर
दूरभाष - 8793806465

सारांश :

इक्कीसवीं सदी में हिन्दी के उपन्यास विधा में आदिवासी विमर्श उभरकर सामने आया है। 'काला पादरी' उपन्यास तेजिन्दर ने आदिवासी अंचलो में प्रस्थापित अंधविश्वास, जादू –टोना, कर्मकाण्ड, भूखमरी, अकाल, लूट, खसोट, संवेदनशून्य प्रशासन, सामंतवाद, भ्रष्टाचार आदि का अंकन किया है। पॉव तले की दूब नामक उपन्यास के माध्यम से संजीव ने आद्योगिकरण से आदिवासी जनजाति पर लंगडे पड़ा असर दिखाई देता है। ये आदिवासी लोग लूले लगड़ी एवं लकडवे की बीमारी से त्रस्त है। 'जंगल जहाँ शुरू होता है' नामक उपन्यास के माध्यम से संजीव ने आदिवासी लोग गरीबी, अंधविश्वास तथा पूँजीपीत, पुलिस, डाकू और व्यवस्था के शिकार होते दिखाई देते है। रेत इस उपन्यास के माध्यम से भगवानदास मोरवालजी ने 'कंजर' जनजीत का जीवन को उजागर किया है। इसमें नारी के यौन शोषण की सारी सीमाएँ तोड दी है।

बीज शब्द :

अंधविश्वास, पुलिस, नारी, यौन, शोषण, गिरबी, भूखमरी, जनजाति आदिवासी, विमर्श, रूढी-परंपरा

प्रस्तावना :

इक्कीसवीं सदी में हिन्दी उपन्यास साहित्य में भूमंडलीकरण दलित विमर्श, नारी विमर्श और आदिवासी विमर्श का सूत्रपात ज्यादा दर हुआ दिखाई देता है। जिसमें आदिवासी विमर्श उपन्यास साहित्य के माध्यम से उजागर हुआ दिखाई देता है। आदिवासी साहित्य पर जब हम सोच विमर्श करते है तो हमारे सामने आदिवासी जन-जीवन हमारा ध्यान खींचता है। अनेक भारतीय भाषाओं से अलग-अलग साहित्य के माध्यम से आदिवासियों का जीवन, समस्या, संघर्ष, शोषण, परंपरा, रूढी-प्रथा हमारे सामने उजागर होती है।

आदिवासी साहित्य पर बोलने से पहले आदिवासी इस संकल्पना को समझना आवश्यक है। आदिवासी याने, जो पहले से यहाँ रह रहे हो, आदिवासी (आदि+ वासी) रहे हो। इन्हें संविधान की पंचम अनुसूची में 'जनजातियाँ' इस शब्द से परिभाषित किया है। साथ ही इन्हे अलग-अलग नामों से जाना जाता है जैसे कि, वनवासी, गिरिजन आदि।[1] 2001 की जनगणना के अनुसार सम्पूर्ण भारत में 84,326,248 आदिवासी जनसंख्या है जो कि कुल जनसंख्या का 82 प्रतिशत है। भारत में प्रमुख रूप से भील, गोंड, संथाल, मीजी, असुर, न्यीशी, हो, गालो, मोमपा तागीन, खामती, मेमबा, नाक्टे, कंजर, कबूतरा, आपातानी, मुंडा, सांसी, नट, मदारी, सँपेरे, दरवेशी, पासी, बोरी, समोड, कोल, पादाम, मिन्योंग, देववर्मा, रियॉग, नोवतिया, उचई, चाकमा, डोंबारी, कोली, पारधी, मीणा आन्गे, गरसिया, सहरिया, लेपचा, थारू, उरॉव, भवघूरा, बोंडा आदि जनजातियाँ आदिवास करती हैं, जिन्हें आदिवासी कहा जाता है।

हिंदी में हिंदी के अलग-अलग साहित्य विधा के माध्यम से आदिवासियों पर सृजन हुआ है। लेकिन उन विधा में से उपन्यास साहित्य अधिक सशक्त दिखाई देता है।

'काला पादरी' :

तेजिन्दर का 'काला पादरी' मध्यप्रदेश की 'उरॉव' जनजीत की समस्याओं को व्यक्त करनेवाला उपन्यास है। खाखा नामक युवक ही इस उपन्यास का नायक तथा काला पादरी है। जिसे इसाई फादर मैथ्यूज ने रोटी के बदले इसाई धर्म की दीक्षा देकर अलेक्जेंडर खाखा बना दिया। उपन्यासकार तेजिन्दर इसाई धर्म स्वीकार करनेवाले तथा नकारने वाले उराव आदिवासियों के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक जीवन को अपने उपन्यास के माध्यम से उजागर करते है। आदिवासीयों के भूख, अभाव और दारिद्रय को व्यक्त करता हुआ लिखता है, "साहब रात में बच्चा मर गया। उसकी माँ ने कई दिनों से कुछ खाया नहीं था। उसको गोद में लेकर उसकी माँ भी मर गयी। उसने भी कई दिनों से कुछ खाया नहीं था।"[2] भूख मिटाने के लिए जहरीली वनस्पतियाँ, बुटियाँ और बिल्लीयों का मास खाने का वास्तव सामने आता है। भीषण अकाल से लोग भूखे मर रहे है। नई सोच

और दृष्टि से युक्त खाखा अपने समाज के वर्तमान और भविष्य को बदलने के लिए मूल और इसाई बने अपने सभी उरांव समाज को संगठित कर अपने समाज के शोषण चक्र का भेदन करने के लिए रचनात्मक संघर्ष की अगुवाई करता है।

तेजिन्दर ने इस उपन्यास के माध्यम से आदिवासी अंचलों में प्रस्थापित अंधविश्वास, कर्मकाण्ड, जादू-टोना, भूखमरी अकाल, लूट खसोट, संवेदनशून्य प्रशासन सामंतवाद धार्मिक और जातीय राजनीति, भ्रष्टाचार और आदिवासी नेतृत्व की कठपुतली को अंकित किया है।

पाँव तले की दूब :

सजीव का लघु उपन्यास है जो प्रथम पुरुष शैली में लिखा है। उपन्यास में बढते औद्योगिकरण के कारण विस्थापित होते आदिवासी समाज तथा आद्योगिक के प्रदूषण से आदिवासी बस्तियाँ उनके खेत, जंगल और जल पर गंभीर दुष्परिणाम होते हैं। साथ ही झारखंण्ड मुक्ति आंदोलन तथा स्वतंत्र राज्य निर्माण की प्रक्रिया की सुगबुगाहट भी इस उपन्यास में दिखाई देती है।

उपन्यास में डोकरी ताप विद्युत संस्थान का प्रदूषित गंदा पानी मनसा नाले में छोड़ा जाता है, जो वहाँ के आदिवासियों के पीने के पानी का एकमात्र स्त्रोत है। साथ ही जहरीला गैस छोड़ने के वजह से कई आदिवासी लोग लूले लंगड़े एवं लकडवे की बीमारी से ग्रस्त है। उपन्यास का नायक सुदीप्त आदिवासी बस्ती को देखकर कहता है- "कई लड़के लड़कियाँ और बूढ़े लकवे के मारे से ग्रासित है। और उस पर .....चेहरो की भयावनी उजली आँखे भरी दोहरी में मुझे भूत प्रेतों और डायनों का साया मँडराने लगा। इस बीमारी से ग्रस्त आदिवासियों के पास अस्पताल जाने के लिए पैसे नहीं है।

आदिवासी स्त्री जीवन बड़ा अभिशप्त है। उपन्यास में मेझिया गाँव के ओझा गाँव में फैलनेवाली बीमारी और पशुओं को मृत्यूओं के कारण गाँव की बाँझ औरत मंगरी को मानकर उसे डायन घोषित कर पत्थरों से मार कर जान लेते हैं। पंडीत इस घटना की सच्चाई सुदीप्त को बताते हुए कहता है – "ओझा ने ही इस औरत को डायन कहकर उकसाया था तीन सौ रुपये और एक बकरे की बलि मांग रहा था।"[3] इस तरह आदिवासियों में अंधश्रद्धा थी और उनका आर्थिक शोषण भी हो रहा था।

उपन्यास में पुलिस बिना कोई पूछताछ किए किसी भी जुर्म में किसी भी आदिवासी युवक को झूठे इल्जाम लगाकर गिरफ्तार करती है। तिवारी साहब के घर पर हुई चोरी के झूठे इल्जाम में जब से निर्दोष कईना को पकड़कर ले जाने लगती है, तब मझिया के सभी आदिवासी स्त्री पुरुष संतप्त होते है। पुलिस के हर दिन बढ़ते अन्याय और अत्याचार से त्रस्त होकर उनके साथ संघर्ष करने की भावना आदिवासियों में प्रबल होती है।

प्रस्तुत उपन्यास में आदिवासियों को मुलभूत आवश्यकताओं के लिए संघर्ष करना पड़ता है। इन्हें जीते जी तन ढकने के लिए न तो कपड़ा मिलता है और पेट भरने के लिए ना अन्न और ना ही रहने के लिए घर है। मेझिया आदिवासी को देखकर समीर कहता है- "वे इतने गरीब थे कि कपड़ा के नाम पर चिथडे का कच्छा पहने हुए थे, पुट्टे तक खुले हुए, औरतों को जैसे –जैसे बदन ढकने को मिला है कपड़ा। बच्चे कंगाल जैसे।"[4]

इस तरह इस उपन्यास के माध्यम संजीव में आदिवासियों के जीवन के संघर्ष का चित्रण किया है।

जंगल जहाँ शुरू होता है :

प्रस्तुत उपन्यास में संजीव ने बिहार के पश्चिम चंपारण के 'मिनी चंबल के नाम से जाने वाले बीहड़ो में पनपने वाली डाकू समस्या को प्रमुख रूप से चित्रित किया है। संजीव ने इस उपन्यास में यह प्रश्न उठाया है कि डाकू बनते नहीं बनाए जाते हैं। इस उपन्यास में थारू आदिवासी जो गरीबी, दरिद्रता, कुपोषण, अंधविश्वास में अपना जीवन व्यतीत करते हैं तो दूसरी ओर एक साथ पूँजीपीत, पुलिस, डाकू और व्यवस्था के शिकार हैं।

इस उपन्यास के प्रमुख पात्र अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है जैसे-मंत्री दूबेजी जो डाकुओं की सहायता से चुनाव जीतते हैं और फिर उन्हें संरक्षण भी देते हैं। दूसरा पात्र पुलिस अफसर 'कुमार' जो उस पुलिस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जो मिनी चंबल के क्षेत्र में नियुक्त होने के बाद शुरू में पुरे जोश और ईमानदारी के साथ काम करते हैं परंतु हर तरफ से निराशा के चलते वो उस बर्बर...... पुलिस व्यवस्था का हिस्सा बनकर तलाशी के नाम पर जन सामान्य पर अन्याय-अत्याचार करना, एनकाउंटर करना, पूछताछ के नाम पर नारियों का यौन शोषण करना तथा प्रमोशन के लिए नेताओं की चाटुकारिता करते हैं।

उपन्यास में भाषा को अधिक सरस, प्रभावी, सजीव बनाने के लिए विभिन्न शैलियों का प्रयोग संजीव ने किया हैं, जिसमें प्रमुखत: वर्णनात्मक, पूर्वदीप्ति, पत्रात्मक, चित्रात्मक, व्यंग्यात्मक संवाद और कथात्मक शैलियों का प्रयोग किया है। अत: यहाँ व्यंग्यात्मक शैली का उदाहरण दृष्टव्य है। जैसे –"ओ भइया दिल्ली से हियॅा.....तक जो भी कुरसी पे बइठा है सभी तो डाकू है। सब बंद कर दे हम भी कर दे।[5]

प्रस्तुत उपन्यास में संजीव ने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा प्राकृतिक, समस्याओं के कारण आम आदमी को किस प्रकार अपराध के जंगल में प्रवेश करने के लिए मजबूर किया जाता है, इसका संपूर्ण दस्तावेज यहाँ पर प्रस्तुत किया है।

रेत :

भगवानदास मोरवाल ने अपने 'रेत' उपन्यास के माध्यम से हरियाना के 'कंजर' जनजाति के सामाजिक-सांस्कृतिक संरचनाओं को प्रस्तुत करता है। 'कंजर' अर्थात काननचर याने जंगल में घूमनेवाले यह कंजर अपने आप को 'माना गुरु' और माँ नलिन्या की संन्तान मानता है।

प्रस्तुत उपन्यास आदिवासी स्त्री विमर्श की कृति है। सामान्य तौर पर कंजरों को चोरी करनेवाली जनजाति समझा जाता है। अंग्रेज सरकार ने इन पर कई बंधन डाल दिये थे जिसे उपन्यासकार ने थानेदार केसर सिंह के माध्यम से कहलवाया है। केसर सिंह कबीले के मुखिया से कहता है, "यही की बिना इजाजत या इत्तिला दिए कोई कंजर गाँव छोड़कर नहीं जा सकता और जाता है तो मुखिया को इसकी जानकारी होनी चाहिए, जिसकी इतिल्ला मुखिया को थाने में देनी होती है।"[6] इनकी महिलाओं को भी थाने जाकर हजरी देनी पड़ती है। घर के पुरुष जेल में या बाहर होने के कारण इन्हें मजबूरी वश वेश्या-व्यवसाय करना पड़ता है। इन्ही बातों को उपन्यासकार ने बड़ी स्पष्टता से उपन्यास में रखा है।

उपन्यास में कंजरों के पुलिसों, अफसरो, प्रशासको द्वारा हो रहे शोषण को व्यक्त किया है। साथ ही यह उपन्यास यौन शोषण की तो सीमाएँ तोड देता है।

निष्कर्ष :

हिंदी आदिवासी साहित्य पर जब विचार करते हैं तो हमें विशेष रूप से इक्कीसवीं सदी के आदिवासी उपन्यास आकर्षित करते हैं। इसकी खास वजह है कि यह उपन्यास केवल आदिवासियों के सांस्कृतिक, प्राकृतिक जीवन को व्यक्त नहीं करते तो भूमंडलीकरण के युग में आदिवासियों के सामने आ खडी समस्याओं को सामने रखते है।

संदर्भ :

1) हिन्दी साहित्य और साहित्यिक विमर्श – डॉ. सुरैय्या शेख, पृ. 206
2) काला पादरी – तेजिन्दर, पृ. सं. 21
3) पॉव तले की दूब – संजीव, पृ. सं. 33
4) पॉव तले की दूब – संजीव, पृ. सं. पृ. 15
5) जंगल जहाँ शुरू होता है – संजीव, पृ. सं. 151
6) रेत – भगवानदास मोरवाल, पृ. सं. 51